॥ श्री हरिः ॥
॥ श्री गोवर्धननाथो विजयते ॥
॥ श्रीमदाचार्यचरण कमलेभ्यो नमः ॥
॥ श्रीगुसांईजी परमदयालवे नमः ॥

वल्लभीय प्रकाशन

ग्रन्थमाला सप्तम पुष्प

श्रीनामरत्नाख्यस्तोत्र (सटीक) की सचित्र अष्टोत्तरशतनामावली

श्री पंचमकुमार गो. श्री रघुनाथलालजी रचित
तथा
प्रथम श्रीदेवकीनंदनाचार्यजी विरचित

प्रकाशक
वैष्णव मित्र मंडल सार्वजनिक न्यास
श्री गोवर्धननाथजी का मंदिर
1, साऊथ यशवंतगंज, इन्दौर –452 001 (म.प्र.)

अथ नामरत्नाख्यस्तोत्रम्

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

यन्नामार्कोदयात्पापध्वान्तराशिः प्रशाम्यति ।
विकसन्ति हृदब्जानि तन्नामानि सदाश्रये ॥१॥
आनुष्टुभमिहच्छन्द ऋषिरग्निकुमारजः ।
सर्वशक्तिसमायुक्तो देवः श्रीवल्लभात्मजः ॥२॥
विनियोगः समस्तेष्टसिद्धयर्थे विनिरूपितः ।
श्रीविट्ठलः कृपासिन्धुर्भक्तवश्योऽति सुंदरः ॥३॥
कृष्णलीलारसाविष्टः श्रीमान् वल्लभनंदनः ।
दुर्दृश्यो भक्तसंदृश्यो भक्तिगम्यो भयापहः ॥४॥
अनन्यभक्तहृदयो दीनानाथैकसंश्रयः ।
राजीवलोचनो रासलीलारसमहोदधिः ॥५॥
धर्मसेतुर्भक्तिसेतुः सुखसेव्यो ब्रजेश्वरः ।
भक्तशोकापहः शान्तः सर्वज्ञः सर्वकामदः ॥६॥
रुक्मिणीरमणः श्रीशो भक्तरत्नपरीक्षकः ।
भक्तरक्षैकदक्षः श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्त्तकः ॥७॥
महासुरतिरस्कर्ता सर्वशास्त्रविदग्रणीः ।
कर्मजाड्यभिदुष्णांशुर्भक्तनेत्रसुधाकरः ॥८॥
महालक्ष्मीगर्भरत्नं, कृष्णवर्त्मसमुद्भवः ।
भक्तचिन्तामणिर्भक्तिकल्पद्रुमनवांकुरः ॥९॥

श्रीगोकुलकृतावासः कालिन्दीपुलिनप्रियः ।
गोवर्द्धनागमरतः प्रियवृंदावनाचलः ॥१०॥
गोवर्धनाद्रिमखकृन्महेन्द्रमदभित्प्रियः ।
कृष्णलीलैकसर्वस्वः श्रीभागवतभाववित् ॥११॥
पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः ।
व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता तन्निमंत्रणभोजकः ॥१२॥
बाललीलादि सुप्रीतो गोपीसम्बंधिसत्कथः ।
अतिगम्भीरतात्पर्यः कथनीय गुणाकरः ॥१३॥
पितृवंशोदधिविधुः स्वानुरूपसुतप्रसूः ।
दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तिर्महोज्ज्वलचरित्रवान् ॥१४॥
अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्द्धासक्तपदांबुजः ।
विप्रदारिद्र्यदावाग्निर्भूदेवाग्निप्रपूजकः ॥१५॥
गोब्राह्मप्राणरक्षापरः सत्यपरायणः ।
प्रियश्रुतिपथः शश्वन्महामखकरः प्रभुः ॥१६॥
कृष्णानुग्रहसंलभ्यो महापतितपावनः ।
अनेकमार्गसंक्लिष्टःजीवस्वास्थ्यप्रदो महान् ॥१७॥
नानाभ्रमनिराकर्ता भक्ताज्ञानभिदुत्तमः ।
महापुरुषसत्ख्यातिर्महापुरुष विग्रहः ॥१८॥
दर्शनीयतमो वाग्मी मायावादनिरासकृत ।
सदाप्रसन्नवदनो मुग्धस्मितमुखाम्बुजः ॥१९॥
प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः क्षितिमण्डलमण्डनः ।
त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिर्धवलीकृतमेचकः ॥२०॥

वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तःकरणः शत्रुतापनः ।
भक्तसम्प्रार्थितकरो दासदासीप्सितप्रदः ॥२१॥
अचिन्त्यमहिमाऽमेयो विस्मयास्पदविग्रहः ।
भक्तक्लेशासहः सर्वसहो भक्तकृते वशः ॥२२॥
आचार्यरत्नं सर्वानुग्रहकृन्मंत्रवित्तमः ।
सर्वस्वदानकुशलो गीतसङ्गीतसागरः ॥२३॥
गोवर्धनाचलसखो गोपगोगोपिकाप्रियः ।
चिन्तितज्ञो महाबुद्धिर्जगद्वन्द्यपदाम्बुजः ॥२४॥
जगदाश्चर्यरसकृत् सदाकृष्णकथाप्रियः ।
सुखोदर्ककृतिः सर्वसन्देहच्छेददक्षिणः ॥२५॥
स्वपक्षरक्षणे दक्षः प्रतिपक्षक्षयंकरः ।
गोपिकाविरहाविष्टः कृष्णात्मा स्वसमर्पकः ॥२६॥
निवेदिभक्तसर्वस्वः शरणाध्वप्रदर्शकः ।
श्रीकृष्णानुगृहीतैकप्रार्थनीयपदाम्बुजः ॥२७॥
इमानि नामरत्नानि श्रीविट्ठलपदाम्बुजम् ।
ध्यात्वा तदेकशरणो यः पठेत्स हरिं लभेत् ॥२८॥
यद्यन्मनस्यभिध्यायेत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम्
नामरत्नाभिधमिदं स्तोत्रं यः प्रपठेत्सुधीः । ॥२९॥
त्वदीयं तं गृहाणाशु प्रार्थ्यमेतन्मम प्रभो
श्रीविट्ठलपदांभोजमकरंदजुषोऽनिशम् ॥३०॥
इयं श्री रघुनाथस्य कृतिर्विजयतेतराम् ॥३०१॥

इति श्रीरघुनाथ (जी) विरचितं नामरत्नाख्यं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्री नामरत्न विवरण

''निजैकशरणं श्रीमद्गोकुलं सर्वतो भयात्।
रक्षितं येन तं नित्यमाश्रये गिरिधारिणम्॥१॥

अन्वय शब्दार्थ –

येन=जिन्होंने, *निजैकशरणं* = एकमात्र अपनी शरण में आए हुए। *श्रीमद्गोकुलं* = श्रीमद् गोकुल को। *सर्वतो* = सब प्रकार के। *भयात्*=भय में से। *रक्षितं*=बचाया। *तं*=उनको। *गिरिधारिणम्*=गिरि को धारण करने वाले को। *नित्यमाश्रये*=मैं हमेशा आश्रय करता हूँ॥१॥

श्री देवकीनंदनजी ''विवरण'' के प्रारम्भ में दो श्लोकों से मंगलाचरण करते हैं। प्रथम श्लोक में श्रीगिरिराजधरण श्रीगिरिधरजी का स्मरण करते हैं। वे श्रीगोकुल के रक्षक हैं। श्रीगोकुल अर्थात् श्रीगोकुल गांव तथा उसमें रहने वाले सभी जीव। उन पर आए हुए सभी प्रकार के संकटों से प्रभु ने उनकी रक्षा की है, इसलिए प्रभु शरणागत वत्सल हैं। इस प्रकार रक्षा करके सभी ब्रजवासियों का अपने स्वरूप में निरोध सिद्ध किया है।

गो अर्थात् इन्द्रियां एवं कुल अर्थात् समूह इसलिए ''श्रीगोकुल'' का दूसरा अर्थ है इन्द्रियों का समूह।'' अपनी सभी एकादश इन्द्रियों की आसक्ति को छुड़वाकर के प्रभु उनको अपने रूप-गुण और लीला में आसक्त कर दें। इस प्रकार जीवों का निरोध करते हैं। विषय वासनाओं के भयंकर भय में से हमारा रक्षण करने वाले शरणागत वत्सल श्रीगिरिधर का सदा आश्रय रखना चाहिये। ऐसा श्रीदेवकीनंदनजी हमको परोक्ष रीति से सिखाते हैं। श्री दयाराम भाई ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए गाया है :

"एक वर्यो श्रीगोपीजन वल्लभ नहि स्वामी बीजो मारे रे"

यदुदितपथवर्ति देहभाजां
भवति वशो किल नन्दगोपसूनुः ।
अतिकरुणमुपास्यविट्ठलेशात्मज-
रघुनाथमहर्निशं नतोस्मि ॥२॥

अन्वय –शब्दार्थ –

यदुदित=जिन्होंने कहा हुआ (बतलाया हुआ) *पथवर्ति* = मार्ग में (पुष्टिमार्ग में चलने वाले) *देहभाजां*=प्राणियों को, *नंदगोपसूनुः*=श्रीनंदकुमार, *किल*=अवश्य *वशेभवति*=वश होते हैं । *अतिकरुणं*= (ऐसे) अत्यंत दयालु *सेव्य*=सेवा करने योग्य। *विट्ठलेशात्मज*=विट्ठलेश के सुपुत्र, *रघुनाथम्*=रघुनाथजी को। *अहर्निशम्*= रात-दिन (हमेशा), *नतोस्मि*=मैं वंदन करता हूँ॥२॥

दूसरे श्लोक में श्री देवकीनंदनजी स्वयं के तातचरण श्रीगुसांईजी एवं पितृचरण श्री रघुनाथजी का मंगल स्मरण करते हुए उनको वंदन करते हैं । क्योंकि इस स्तोत्र के नायक श्री गुसांईजी हैं और स्तोत्र के कर्ता श्री रघुनाथजी हैं । श्रीदेवकीनंदनजी, श्रीगुसांईजी और श्रीरघुनाथजी ने स्वयं के वडिलों (बुजुर्गो) की तरह से उनको वंदन नहीं किया हैं, परन्तु उनके अलौकिक स्वरूप का चिंतन करके वे उनके अलौकिक स्वरूप का वंदन करते हैं ।

श्री हरिरायजी ने भी श्रीगुसांईजी का एक नाम दिया है । *पुष्टिमार्ग प्रवर्तकाय नमः ।*

महानुभाव, भक्त कवि श्री गोविंदस्वामी भी यही भाव नीचे लिखे कीर्तन में गाते हैं :

"जो पे श्रीविट्ठल रूप न धरते,
तो कैसे घोर कलियुग के महा पतित निस्तरते ? ॥१॥

सेवा रीति प्रीति व्रजजन की श्रीमुखते विस्तरते,
श्रीविट्ठल नाम अमृत जिन लीनो रसना सरस सुफलते ॥२॥
कीरति विशद सुनी जिन श्रवणन विषय विष परिहरते
'गोविंद' बल दरशन जिन पायो उमग उमंग रस भरते ॥३॥

ऐसे श्री विट्ठलेश प्रभु चरण पुष्टिमार्ग में हीन से भी हीन जीवों को अपनी शरण में लेकर उनको श्री नंदनंदन की प्राप्ति करवा देते हैं। ऐसे वे 'अदेय दान दक्ष' होने के कारण श्री देवकीनंदनजी दासभाव से उनको अहर्निश वंदन करते हैं।

श्री रघुनाथजी श्री विट्ठलेश प्रभु के 'आत्मज' हैं। पुत्र-पिता का स्वरूप होता है। इस न्याय से 'आत्मज' शब्द से यहां पर श्रीदेवकीनंदनजी सूचित करते हैं कि श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण की लीला एवं उनके गुण श्रीरघुनाथजी में भी हैं, इसलिए श्रीरघुनाथजी के स्वरूप का अलग से निरूपण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। "श्रीवल्लभ श्रीविट्ठल श्रीगोपीनाथ, श्रीदेवकीनंदन, श्रीरघुनाथ" ये सभी एक ही स्वरूप हैं। 'रूप एक ते भिन्न थई विस्तरे' इस न्याय से ग्रंथनायक और ग्रंथकार वास्तव में दोनों एक ही हैं। इसलिए यहाँ दोनों स्वरूपों को एक ही श्लोक में एक ही विशेषण से वंदन किया गया है।

श्री देवकीनंदन जी ऐसा भी सूचित करते हैं कि इस विवरण की रचना करने में सकाम भाव से मैं उभय स्वरूपों को इस समय वंदन नहीं करता हू, परन्तु दासभाव से 'अहर्निश' हमेशा वंदन करता हूँ ॥२॥

"अथविविधवृजिनतापतप्यमानानेकजन्मपरिभ्रान्ता-
खिलजीवोद्धाराति-सुगमापायरूपं।

श्रीविठ्ठलेशाष्टोत्तरशतनामरत्नस्तोत्रं निरूपयन्त ॥

प्रथमतः तान्येव ही आश्रयमाणा यन्नामेति मंगलमाचरन्ति ॥

शब्दार्थ

अथः =अब, *विविधवृजिनताप* =विविध पाप के ताप से, *तप्यमान*=तपे हुए, *अनेकजन्मपरिभ्रान्ता*=अनेकों जन्मों से भटकते हुए, *अखिलजीवोद्धार*= सब जीवों का उद्धार करने के लिए, *अतिसुगमोपापयरूपं*=अत्यंत सरल उपाय रूप, *श्रीविठ्ठलेशा-ष्टोत्तरशतनामरत्नस्तोत्रं*=श्री विठ्ठलेश के १०८ नाम, रूप रत्नों का स्तोत्र, *निरूपयन्तः*=निरूपण करने वाले, *प्रथमतः*=प्रारंभ में, *तान्येव*= उनका(नाम रत्नों का), *ही आश्रयमाणा*=आश्रय करने वाले (श्री रघुनाथजी), यन्नामेति *'यन्नाम'*=यन्नाम से (शुरू होने वाले श्लोक में), *मंगलमाचरन्ति*= मंगलाचरण करते हैं।

भावार्थ :

अथ पद मंगलवाचक व प्रारंभवाचक है।

श्री देवकीनंदनजी दो श्लोक से मंगलाचरण करने के बाद विवरण का आरंभ अथ पद से करते हैं।

वे श्री *'नामरत्नस्तोत्र'* की रचना का हेतु सबसे पहले समझाते हैं। जीवों ने अनेक जन्मों में अनेक प्रकार के पाप किए हैं। उन पापों के ताप से जीव त्रस्त हैं। उसमें से छूटने के लिए कई प्रकार केप्रयास करते हैं। फिर भी पापों की निवृत्ति नहीं होती है। पाप बढ़ते जाते हैं। उन्हें भोगने के लिए उनको कई योनियों में जन्म लेना पड़ता है। भवसागर में भटकना पड़ता है। ऐसे दुष्ट, हीन और पापी जीवों के उद्धार के लिए जीव से आचरण हो सके ऐसा अत्यन्त सरल मार्ग आज तक किसी को पता नहीं चला। ज्ञान और कर्ममार्ग के द्वारा उत्तम, पवित्र जीवों का उद्धार हुआ। परन्तु ज्ञानी-अज्ञानी, ब्राह्मण-शूद्र, पुरुष-स्त्री, राजा-रंक, पवित्र-

पापी के भेद के बिना सभी जीवों का अत्यन्त सरलता से उद्धार करने का मार्ग कौन सा ?

अवतार दशा में भगवद्दर्शन से ही सभी जीवों का उद्धार हो जाता है ,परन्तु अनवतार दशा में भगवद् नाम से ही सब जीवों का अत्यन्त सरलता से उद्धार होता है। इस समय श्री महाप्रभुजी और श्री गुसांईजी जीवों के उद्धार के लिए भूतल पर प्रत्यक्ष विराजमान नहीं हैं। तब से लगाकर अब तक उनके नामरत्नों से ही जीवों का उद्धार होता है। दूसरे किसी प्रकार से संभव नहीं है, इसलिए जीवों पर कृपा करके श्रीरघुनाथजी, श्रीगुसांईजी के १०८ नामों रूपी रत्नों को इस "श्रीनामरत्नस्तोत्र" में प्रकट करते हैं।

इन नामों के फलात्मक स्वरूप में जीवों का दृढ़ विश्वास करवाने के लिए वे स्वयं भी इन नाम रूपों का ही आश्रय करते हैं। इस भाव के मंगलाचरण से श्रीरघुनाथजी स्तोत्र का प्रारंभ करते हैं।

यन्नामार्कोदयात्पापध्वान्तराशिः प्रशाम्यति ।

विकसन्ति हृदब्जानि तन्नामानि सदाश्रये ॥१॥

अन्वय शब्दार्थ :

यन्नामार्कोदयात् (यद् + नाम + अर्क + उदयात्) = जिनके नामरूपी सूर्य के उदय से, *पापध्वान्तराशिः*=पापध्वान्तराशि (पाप+ध्वान्त+राशि), पाप रूपी अन्धकार का समूह, *प्रशाम्यति* = नष्ट होता है, *हृदब्जानि* = हृदयरूपी कमल, *विकसन्ति*=खिलते हैं (ऐसे) *तन्नामानि*=उनके (श्रीगुसांईजी) के नामों का सदा हमेशा मैं आश्रय करता हूँ ॥१॥

विवरण

श्रीविट्ठल के नाम ही सूर्य है। उसके उदय से अर्थात् मुख से

नामोच्चार मात्र से ही पापरूपी अन्धकार का जो समूह है उसका पूर्णतः नाश हो जाता है।

रवेरुदये बहिस्तमो नश्यति। गृहाद्यन्तःस्थितं तु तिष्ठत्येव, नामार्कोदये तु सर्वमेव नश्यतीति प्रकर्षः।

सूर्य के उदय से बाहर का अंधकार नष्ट होता है, परन्तु घर के अंदर तो अंधकार रहता ही है। नामरूपी सूर्य के उदय से तो सर्व (बाहर का और अन्दर का) अंधकार नष्ट हो जाता है। सूर्य से भी नामरूपी सूर्य का उत्कर्ष (अधिक वैशिष्ट्य) है।

यद्वा, तदुदये निवृत्तमपि तमः पुनर्निशि प्रादुर्भवति। नामार्कोदये तु गतं न पुनस्तथेति प्रकर्षः।

फिर इस सूर्योदय के समय दूर हुआ अंधकार फिर से रात्रि आने पर पुनः आ जाता है, परन्तु नामोच्चाररूपी नामसूर्य के उदय से दूर होने वाला अंधकार-पाप फिर से नहीं आता है। यही भगवत् नाम का माहात्म्य है।

तस्य कालाधीनत्वादेकत्वात्सर्वथा तद्निवृत्तिनामार्कस्य तु काला-नधीनत्वादन्तत्वात्कर्षेण तन्निवृत्तिर्युक्तैवेति भावः। यत्सम्बन्धादन्येषां कालादिभयं निवर्तते, तस्य तदधीनत्वस्य वक्तुमयुक्तत्वात्।

एकाकी सूर्य काल का अनुसरण करके उदय होता है और अस्त होता है, परन्तु नामरूपी सूर्य का उदय उच्चारण काल के अधीन नहीं है (उसका उच्चारण किसी भी समय किया जा सकता है) इसलिए वह अज्ञानरूपी अंधकार को मूल में से दूर कर देता है (इसमें कोई नई नवाई की बात नहीं है) जिस नामरूपी सूर्य के संबंध से दूसरों के काल इत्यादि भय नष्ट हो जाते हैं, वह नामरूपी सूर्य काल के अधीन कैसे

हो सकता है ?

अनेनानिष्टनिवृत्तिमुक्त्वा इष्टप्राप्तिमाहुः विकसन्तीति हृदब्जानि हृदयकमलानि विकसन्ति विकासं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

इससे अनिष्ट दूर करने की बात करके, अब विकसन्ति इस पद से शुरू होने वाली दूसरी पंक्ति में इष्ट प्राप्ति को बतलाते हैं। नामरूपी सूर्य के उदय से-उच्चारण से हृदयरूपी कमल खिलते हैं।

अत्रायं भावः, यथा सूर्योदये जातेन्धाकरनिवृत्तौ विकसिते कमले तदामोदवशीकृता भृंगास्तत्र स्वयमेवायन्ति। तथात्रापि प्रतिबन्धतमोनिवृत्तौ विकसिते हृदयकमले तदामोदः प्रेमरूपस्त-द्वशीकृतोनायासेनैव श्रीकृष्णोपि तत्र स्थितो भवति।

इसमें यह भाव है कि सूर्योदय होने से अंधकार दूर होता है और कमल खिल जाते हैं। उस समय सुगंध के वशीभूत होने वाले भ्रमर अपने आप वहाँ आते हैं। इसी प्रकार से यहाँ भी नामरूपी सूर्य के उदय से सेवा में प्रतिबंधरूपी अंधकार दूर होने से हृदयकमल खिलते हैं एवं प्रेमरूपी सुगंध फैलती है। उसके वश में होने वाले श्रीकृष्ण अपने आप विकसित हृदयकमल में विराजते हैं।

'भक्त्याऽहमेकग्राह्यो' 'वशे कुर्वन्ति मां भक्त्यादि'-वचनात्। न हि भगवान्वशे भवतीत्अतोधिकं भक्तानां फलमस्ति।

'मैं केवल भक्ति से ही वश होता हूँ' 'मुझे भक्ति से वश करते हैं' इत्यादि शास्त्रों के वचन से भी भगवान भक्ति से-प्रेम से वश होने की साक्षी पूरते हैं, परन्तु भगवान बड़ी सरलता

से वश में नहीं होते हैं। वे प्रेम की पराकाष्ठा से ही वशीभूत होते हैं। भगवान को प्रेम से वश करना यह भक्तों का परम फल है।

तस्य नामानि सदा निरन्तरमाश्रये, आश्रितो भवामीत्यर्थः ॥१॥

इसलिए मैं हमेशा उनके नामों का आश्रय करता हूँ ॥१॥

भावार्थ :

श्रीरघुनाथजी को श्रीगुसांईजी के अलौकिक रूप, गुण और लीला के त्रिविध स्वरूपों का उनके हृदय में अनुभव हुआ है। इस अलौकिक स्वरूपानंद के अनुभव के कारण उनके हृदय में भावतरंग उछलते हैं। उनमें से अलौकिक रत्नों के समान श्रीगुसांईजी के १०८ नामों का प्राकट्य होता है। इनके प्रत्येक नाम अलौकिक हैं, रूपात्मक और फलात्मक हैं।

सामान्य रीति से अन्य मंत्रद्रष्टा-ऋषि प्रारंभ में मंत्र में बिराजे हुए भगवद स्वरूप का वंदन करते हैं। तब श्रीरघुनाथजी को तो रूप और नाम में कोई भेद ही नहीं प्रतीत हुआ है। उनको तो हमेशा रूप और नाम की अभेदता के ही दर्शन होते हैं। इसलिए वे उन नामों का ही आश्रय करते हैं। मंगलाचरण में भी नाम का ही निरूपण किया है।

नाम में ऐसी दृढ़ श्रद्धा श्रीगुसांईजी के सेवक अन्योर के ब्रजवासी को हुई थी। श्रीगुसांईजी ने उसको दूर रहने के लिए "परे" ऐसा कहा। "परे" शब्द को उसने खुद के प्रभु का नाम और रूप यह मान लिया तो श्रीनाथजी को "परे" स्वरूप से पधराना पड़ा। इस प्रकार यदि भगवद् नाम का दृढ़ आश्रय किया जाए तो वह नाम भी स्वरूपात्मक बन जाता है।

श्री छीतस्वामी गाते हैं :

श्रीविट्ठलनाथ नाम रस अमृत पान सदा तू कर रे रसना,
जो तू अपनो भलो चाहि तो यह व्रत जिय धर रे रसना (१)
या रसके प्रतिबंधक जेते तिनतें तू अति डरे रसना,
हरिको विमल यश गावत निरंतर जात विघ्न सब टरे रे रसना (२)
वारंवार कहत हौं यह मारग अनुसर रे रसना,
'छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल आनंद उरमें भर रे रसना (३)

श्री रघुनाथजी इन नामों का आश्रय हमेशा करने के दो कारण इस श्लोक की दो पंक्तियों में बतलाते हैं (१) जीव के अनिष्टो का निवारण (२) जीव को इष्ट की प्राप्ति । श्री सूरदासजी ने भी भगवन्नामोच्चारण के यही दो कारण नीचे की पंक्ति में बतलाएँ हैं ।

"दुःखहरनी सुखकरनी श्री यमुनाजी,
जो जन प्रातः उठ गावै"

इस श्लोक में रूपक अलंकार है । नामों को सूर्य का रूपक दिया गया है । परन्तु विवरणकार ने सूर्य से भी नामों की श्रेष्ठता बतलाते हुए व्यतिरेक अलंकार का निरूपण किया है ।

(१) सूर्य रात्रि का अंधकार दूर करता है और यह नाम हमारे पाप-प्रतिबंध रूपी अंधकार को दूर करते हैं ।

(२) सूर्य बाहर खुले में व्याप्त अंधकार को ही दूर करता है, घर की चार दीवारी में बंद अंधकार दूर नहीं कर सकता है । नाम हमारे अंदर-बाहर रहने वाले (मन, वाणी और कर्म में) सभी प्रकार के पापों को नाश करता है ।

(३) सूर्य अस्त हो जाने पर फिर अंधकार व्याप्त हो जाता है। परन्तु नामोच्चार से दूर होने वाला अंधकार समूल नष्ट हो जाता है उसके फिर से होने की कोई संभावना नहीं रहती है।

(४) सूर्य का उदय और अस्त दोनों होता है और वह काल का अधीन है, परन्तु नामों का कभी अस्त नहीं होता है। वह काल के अधीन भी नहीं है। वह तो काल का भय दूर करने वाले हैं।

इस प्रकार इन नामों को रटने से पापरूपी प्रतिबंध, अज्ञानरूपी अंधकार दूर होता है और हमारा अनिष्ट भी निवृत्त होता है। जिस प्रकार सोने को अग्नि में तपाकर शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार नामोच्चारण से हमारे अंदर और बाहर सर्वत्र शुद्धिकरण हो जाता है।

श्रीगुसांईजी ने अपने एक सेवक को आज्ञा की कि तुम श्रीगिरिराजजी की दंडवती शिला के सामने बैठकर छः महीनों तक अष्टाक्षर मंत्र का और उसके बाद दूसरे छः महीनों तक पंचाक्षर मंत्र का जप करो। ऐसा करने से वैष्णव का हृदय शुद्ध हो गया और उन्हें प्रभु के साक्षात् दर्शन होने लगे। इसीलिए श्रीकृष्णदासजी गाते हैं :

कृष्ण श्रीकृष्णः शरणं मम उच्चरे,
रैन दिन नित्य प्रति सदा पल छिन घड़ी,
करत विध्वंस जन अखिल अघ परिहरे (१)

श्रीरघुनाथजी नामोच्चारण का अधिक सामर्थ्य व फल बतलाते हैं कि जिस प्रकार सूर्योदय होने से कमल खिल जाते हैं, ऐसे ही नामोच्चारण से हमारे हृदयकमल खिल जाते हैं। कमल

की सुगंध से भ्रमर खिंचकर आते हैं। उसी प्रकार हृदयकमल की प्रेमरूपी सुगंध से श्यामसुंदर स्वयं खिंचकर आते हैं। अपने उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति रूप में होने वाला नामोच्चारण प्रभु को भी हमारे वश में कर लेता है जो अन्यथा किसी प्रकार से वश नहीं होते हैं। विवरणकार के मत से यही भक्तों का परम फल है-इष्टप्राप्ति है।

श्रीगुसांईजी के सेवक गुलाबदास थे। शरण में आने के बाद वे भोगविलास में जीवन बिताते हुए गुलाबखान बन गए, परन्तु श्रीगुसांईजी का नामस्मरण उनको चालू ही रहा। परिणामस्वरूप उनके अंतिम समय में श्रीगुसांईजी ने एक वैष्णव को उनके पास भेजा। उस वैष्णव ने कहा "गुलाबदासजी श्रीगुसांईजी आपको याद करते हैं।" यह सुनते ही उनके प्राण छूट गए और वे नित्यलीला को प्राप्त हो गये।

श्रीगोपालदासभाई पांचवे वल्लभाख्यान में गाते हैं -

"श्री विठ्ठल सुखकारी, तामे निष्पाप थाय नरनारी,
दुर्गति सकल निवारी, प्रगट्या श्रीव्रजपति रासबिहारी" (१)

श्रीहरिरायजी गाते हैं :

"अरे मन श्रीवल्लभगुण गाय,
वृथा काल काहेको खोवत वेदपुराण पढ़ाय (२)
'रसिक' सदा अनन्य होय के चित इत उत न डुलाय (२)
"मन रे तुं श्रीवल्लभ कहि रे,
जो करत कामना जियमें सो ततक्षण तू लहि रे (१)

सकल सुकृतको यह फल और कछु नहि रुचि चहि रे,
'रसिक' प्रीतम ऐसे प्रभुको चरणशरण नित गहि रे (२)

विवरण :

अतः नामाष्टोत्तरशतस्य मन्त्ररूपत्वाच्छन्द-आदिकमाहुः सार्धेन श्लोकेन ।

यह १०८ नाम मंत्ररूप हैं। इसलिए उनका छंद इत्यादि डेढ़ श्लोक से कहते हैं :

आनुष्टुभमिहच्छन्द ऋषिरग्निकुमारजः ।
सर्वशक्तिसमायुक्तो देवः श्रीवल्लभात्मजः ॥२॥
विनियोगः समस्तेष्टसिद्धयर्थे विनिरूपितः ।

अन्वय शब्दार्थ :

आनुष्टुभमिहच्छन्दः (अनुष्टुभं+इह+छंद) = यह अनुष्टुप छन्द है, *ऋषिरग्निकुमारजः* (ऋषिः+अग्निकुमारजः) =ऋषि श्री अग्निकुमार (श्रीगुसांईजी)के पुत्र (श्रीरघुनाथजी)हैं, *देवः* =(इस मंत्र के अधिष्ठाता) देव, *सर्वशक्तिसमायुक्तो*=सभी लीला और भक्तों सहित, *श्रीवल्लभात्मजः* = श्रीवल्लभनंदन श्रीगुसांईजी हैं, *समस्तेष्टसिद्धयर्थे* (समस्त+इष्टसिद्धि+अर्थे)=सभी भक्तों के मनोरथों की सिद्धि के लिए, *विनियोगः*=(इन मंत्रों का) उपयोग, *विनिरूपितः*= निरूपण किया गया है। (२½)

विवरण

इहास्मिन्मंत्रे आनुष्टुभंच्छंदः । अग्निकुमारजः स्वयमेव ऋषिर्वक्तुरेव तथात्वात् ।

इस मंत्र में अनुष्टुप छंद है। इस मंत्र के वक्ता श्री अग्निकुमार श्रीगुसांईजी के पुत्र श्रीरघुनाथजी स्वयं ऋषि हैं।

सर्वशक्तिसमायुक्तः श्रीवल्लभात्मजो देवोधिष्ठाता फलरूपो वा। शक्तयो लीलाः समाः स्वतुल्याः सख्यं प्राप्ता भक्ता; ताश्च ते च शक्तिसमाः। सर्वे च ते सर्वशक्तिसमास्तैरासमन्ताद्युक्तः सहितः स तथा। नाम्नां स्वरूपं लीला भक्ताश्चेति त्रितथानुरुपमिदं विशेषणमिति ज्ञेयम् अन्यथा श्रीवल्लभात्मजो देव इत्येव वदेयुः।

शक्तियाँ अर्थात् लीलाएं है। समान अर्थात् खुद के समान सख्यभक्ति प्राप्त करने वाले भक्त रासादि सभी लीलाओं में युक्त सभी भक्तों के सहित श्रीवल्लभनंदन इस मंत्र के देव-अधिष्ठाता अथवा फलात्मक हैं। नामों के स्वरूप, लीला और भक्त इस प्रकार त्रिविध रूप हैं। ऐसा सूचित करने के लिए यह विशेषण सर्वशक्ति-समायुक्तः है। अन्यथा श्रीवल्लभनंदन देवता स्वरूप हैं ऐसा कहना ही काफी था।

समस्तानां भक्तानामिष्टं भगवत्प्राप्तिलक्षणम्, समस्त मोक्षपर्यन्तं, ततोपमिष्टमिति वा, तस्य सिद्धिः प्राप्तिस्तदर्थे तत्कृते विनियोग उद्देशो विशेषण निरुपितः कृतः इत्यर्थः।

समस्त भक्तों को इष्ट भगवत्प्राप्ति है। समस्त का दूसरा अर्थ है मोक्ष पर्यन्त और उससे भी विशेष इष्ट लीलाप्राप्ति है। यह सिद्ध करने वाला यह नाममंत्र उसका हेतु है। ऐसा विशेष रूप से निरूपित किया गया है। (२३)

भावार्थ:

जो आर्ष दर्शन करता है 'ऋषि', अष्टांगयोग समाधि में ऐसे ज्ञानी भक्तों को उनके हृदय में अलौकिक प्रकाश में ध्यानस्थ स्वरूप का अनुभव होता है। हृदयचक्षु द्वारा होने वाले इस

अलौकिक अनुभव को बिना प्रयास के स्वयं उनके मुख में से शब्दात्मक स्वरूप से प्रकट होता है। वे विशेष ध्यान द्वारा इस शब्दात्मक अनुभव का मन में मनन करते थे इसलिए वे 'मुनि' भी कहलाए। "दिवसे सर्वे श्यामा मली, रसरूप तव जश गायेजी"

खुद को समाधि के द्वारा होने वाले इस रूपात्मक और नामात्मक अनुभव को वे किन्हीं योग्य अधिकारी शिष्यों को विशेष उत्तराधिकारी के रूप में कान में कहते। इसका कारण था कि वह मंत्र इत्यादि गुप्त रहे। उसकी गुप्तता और रहस्यात्मकता के कारण ही वे 'मंत्र' कहलाते थे। 'मननात् त्रायते रक्ष्यते इति मंत्रः'।

ऐसा नाममंत्र शब्द-ब्रह्म है। उसमें वह रूप छिपा हुआ है। ऐसे महानुभावों के द्वारा सिद्ध होने से वह फलात्मक भी है।

अपनी वेदकालीन परम्परा के अनुसार मंत्रद्रष्टा ऋषि मंत्र का छंद, मंत्र के ऋषि का नाम, मंत्र के अधिष्ठाता देव, मंत्र से होने वाली फल प्राप्ति इत्यादि सारे विवरण वे मंत्रसाधकों को देते हैं। इन सब का चिंतन करके उस मंत्र का अनुष्ठान करना चाहिए। जिस प्रकार गायत्री छंद है, विश्वामित्र उसके ऋषि हैं, परमात्मा उसके अधिष्ठाता देव हैं। 'श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र' में श्री अग्निकुमार ऋषि हैं। जगति छंद है, श्रीवल्लभ उसके अधिष्ठाता देव हैं अर्थात् प्रभु उसके बीजरूप हैं।

स्तुति करने के लिए ग्रंथ अथवा 'स्तोत्र' कितने ही मंत्र सकाम सिद्धि के लिए भी होते हैं। कितने ही मंत्र निष्काम जप के लिए होते हैं तो कई मंत्र प्रभु की प्रसन्नता के लिए होते हैं, प्रभु की प्रसन्नता के लिए जो मंत्र होते हैं उसको 'स्तोत्र' कहते हैं। निष्काम भाव से जपे जाने वाले स्तोत्र ही प्रभु के प्रसन्न होने से

अलौकिक फल प्रदान करते ही हैं।

इस प्रकार यह 'श्रीनामरत्नस्तोत्र' भी स्तोत्ररूप में नाममंत्रात्मक है और इसीलिए स्वरूपात्मक तथा फलात्मक भी है। ऐसा सूचित करने के लिए डेढ़ श्लोक में श्रीरघुनाथजी इस स्तोत्र में मंत्रस्वरूप प्रकट करते हैं।

इस मंत्र का छंद अनुष्टुप है। महर्षि वाल्मीकि ने कौंचवध एवं मादा कौंचवध के विलाप के अनुभव से होने वाले विषाद के भाव में से इस छंद को प्रकट किया है। वह लौकिक विरह का जनक था। यहां अलौकिक विरह भावना के निरूपण में उसका विनियोग है। १६ अक्षर के दो चरण वाले यह रूपमेल छंद श्रीयुगल स्वरूप के षोडश शृंगाररूपी षोडश वर्णों का है और सरलता से गान किया जाने लायक है।

इस मंत्र के ऋषि-वक्ता श्रीरघुनाथजी हैं। जिनकी मति, गति और रति के सर्वदा श्रीविट्ठलेश प्रभु ही हैं। जिस प्रकार श्रीगुसांईजी के अलौकिक स्वरूप का सविशेष अनुभव है इसलिए उन्होंने श्रीगुसांईजी के कई स्तोत्रों की रचना की है। इस प्रकार-विट्ठलेशस्तवः, श्रीविट्ठलेशाष्टकम्, वह्निसूनुस्तवः, नामचिंतामणि-स्तोत्रम्, नाम-कौस्तुभाख्यं स्तोत्रम्, इनमें श्रीगुसांईजी के १०८ नाम हैं। श्रीरघुनाथजी खुद के लिए "अग्निकुमारजः" प्रयोग करते हैं। वे अपनी अलौकिक परम्परा को सूचित करते हैं। अलौकिक वैश्वानर-अग्निस्वरूप के आप सीधे वंशज हैं। इसलिए आप 'ऋषि' पद के उत्तम अधिकारी हैं।

गो. श्रीद्वारकेशजी महाराज 'मूलपुरुष' में गाते हैं :

"महाअलौकिक अग्निकुल सब, अलौकिक अष्टछाप है,
अलौकिक सब भक्तजन, जो शरण लीने आप है"

इस मंत्र के देवता-अधिष्ठाता श्रीवल्लभनंदन-श्रीगुसांईजी हैं। विवरणकार के अभिप्राय से इन नामों में आप तीन स्वरूपों से विलसित होते हैं (१) श्रीवल्लभ (श्रीस्वामिनीजी)को आनंद देने वाले स्वरूप से, (२) रासादि सभी आनंदमयी लीलाओं के स्वरूप से, (३) इन लीलाओं में सम्मिलित भक्तों के स्वरूप से। ऐसा आपका भक्तरूप लीलात्मक, विशिष्ट, त्रितयात्मक स्वरूप इसमें बिराजित है। आपकी भोज्य व भोक्ता स्वरूप से रसप्रचुर लीलाओं का यह विलास है। पुष्टिमार्ग में शक्ति स्वरूप श्रीस्वामिनियों एवं उनके साथ में की हुई सभी लीलाएं हैं। यहाँ पर आधिभौतिक और आध्यात्मिक शक्ति स्वरूपों का विचार-उपासना नहीं है। इसकी तुलना इन पंक्तियों के साथ की है। "लक्ष्मीसहस्त्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्।"

श्रीगुसांईजी ने अपनी सेवक मुग्ध बाई को आज्ञा की थी "तुम्हें अष्टाक्षर मंत्र बोलना नहीं जमता है तो तुझे मेरा नाम तो आता है ना? उसका उच्चारण करना वह तेरे लिए फलात्मक हो जाएगा। "इस प्रकार श्रीगुसांईजी स्वयं इस नाममंत्र के ऋषि भी हैं तथा अधिष्ठाता देव भी हैं।"

इस श्लोक के अंतिम चरण में फलप्राप्ति बतलाते हैं। समस्त भक्तों को मोक्ष इष्ट नहीं हैं।"मुक्ति लोन सी खारी"

श्रीदयाराम भाई गाते हैं :

"व्रज व्हालुं रे, बैकुंठ नहि आवुं,
त्यां श्रीनंदनंदन क्यांथी लावुं"

"अमे तो राजना खासा खवास रे, मुक्ति मन न आवे रे,
रीझे राबड़ी थकी गरीब लोक रे, भोगीने न भावे रे"

भक्तों को इष्ट तो है, नित्यलीला प्राप्ति और नित्यलीला का प्रतिक्षण अनुभव

"सेवा मदनगोपालकी मुक्ति हुं ते मीठी
जाने रसिक उपासक जिन शुकमुख तें दीठी।"
"यशुमति सुत मोहि दीजे दरशन,
तनमनप्राण तपत है निशदिन, छिन एक होत बराबर।"

इस इष्ट प्राप्ति के लिए ही नाममंत्र हैं वे पारसमणि हैं। उनको लौकिक कामनाओं में व्यर्थ नष्ट नहीं कर देना चाहिये।

इसीलिए श्रीगोपालदासभाई छटे वल्लभाख्यान में गाते हैं-

"सगुण स्नेही शामला व्हाला, अहर्निश दर्शन आपो जी,
परम मुख देवाने काजे व्रजमंडल स्थिर करी स्थापो जी. ॥१॥
श्रीवल्लभकुंवर कोडामणा, तमारुं नाम निरंतर लीजे जी,
रूपसुधारसमाधुरी ते, लोचन भरी पीजे जी"

श्रीविट्ठलः कृपासिन्धुर्भक्तवश्योति सुंदरः ॥३॥

अन्वय शब्दार्थ :

(१) *श्रीविट्ठलः* = श्रीविट्ठल, *कृपासिन्धु*=कृपा का सागर, *भक्तवश्यः*= जो भक्त के वश में है, *अतिसुंदरः*=अतिशय सुंदर (है) (३)

विवरण :

अतः परमादौ मूलभूतं नामाहुः- श्रीविट्ठल इति॥१॥ श्रीविट्ठलाय नमः।

अब सबसे पहले मूल-मुख्य नाम कहते हैं

श्रीविट्ठलाय नमः

(१) श्रीविट्ठल विदा भगवत्स्वरूपतद्-भक्तज्ञानेन ठं शून्यं तत्सम्बन्धरहितं

कर्मज्ञानोपासनादिकं ततः सर्वान् लाति आदत्ते, स्वमार्गेऽनुगृह्यतीत्यर्थः।

भगवद्स्वरूप एवं उनकी भक्ति के ज्ञान से शून्य तथा उनके संबंध से रहित ऐसे सभी जीवों का कर्म, ज्ञान, उपासना इत्यादि में से स्वमार्ग में पुष्टिमार्ग स्वीकार करता है (शरण में लेता है) इसलिए *श्रीविट्ठल* कहे जाते हैं।

अत एव भक्तिहंसादौतैरप्युक्तं 'मन्त्रोपासनादिविधिभिरस्पृष्टो रमते निजभक्तेष्विति।'

'भक्तिहंस' ग्रंथ में श्रीगुसांईजी ने स्वयं ही कहा है कि "कर्म, मंत्र, उपासना" इत्यादि विधि से जिनको स्पर्श भी नहीं किया जा सकता है ऐसे भगवान भक्तों में रमण करते हैं।

सर्वेषां नाम्नां शुभरूपत्वसूचनायादौ श्रीपदम्।

श्रीगुसांईजी के सभी नाम शुभ स्वरूप हैं। ऐसा सूचित करने के लिए प्रारम्भ में 'श्री' पद है।

अंगैश्वार्यादि गुणत्रयं निरूप्यते। तथा हि, सर्वेषामितरसाधनासाध्य-भगवत्प्राप्तिसम्पादनमैश्वर्यम्। कर्मज्ञानोपासनादिजनितदेहादिक्लेशाभावसम्पादनं वीर्यम्। न हीश्वरमन्तरेणान्य एवं कर्तुं शक्नुयात्। एवं पूर्वोक्तं सर्वमनेनैव नाम्ना सर्वत्र प्रसिद्धमिति यशोपि निरूपितम्। यद्वा, यश, सोऽसाधारणकार्यकारणसापेक्षत्वात्तन्नि रूपणेन तदपि निरूपितं भवति।

(भगवान में ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य यह छः अलौकिक धर्म हैं। श्रीगुसांईजी में भी यह छः अलौकिक धर्म हैं) यहां पर प्रथम तीन धर्म, ऐश्वर्य, वीर्य और यश का विचार करते हैं। अन्य किसी भी साधन से प्राप्त नहीं हो ऐसी भगवद्प्राप्ति

करवाते हैं। वे *ऐश्वर्य* गुण, कर्म, ज्ञान, उपासना इत्यादि करने से देह इत्यादि को होने वाले क्लेश से दूर करते हैं वे *वीर्य* गुण हैं। ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी इसको करने में शक्तिमान नहीं है। पहले कहे अनुसार किसी भी साधन के बिना भगवद्प्राप्ति करने वाले तथा देहादि के क्लेश दूर करने वाले *श्रीविट्ठल* का यश सर्वत्र प्रसिद्ध है। असाधारण कार्य करने से ही यशविस्तार होता है इसलिए पूर्वोक्त गुण उनके यश को विस्तार करने वाले ही हैं।

प्रकारान्तरेणाग्रिमगुणत्रयमपि। श्रीः, विद् ज्ञानं, ठं शून्यं वैराग्यं, रागाभाव इति यावत्, तनि लाव्य दत्ते स्वीकरोतीत्यर्थः। एवं षड्गुणा अप्युक्ताः।

अब शेष तीन गुणों श्री, ज्ञान, वैराग्य का विचार करते हैं। 'श्रीविट्ठल' नाम के 'श्री' वर्ण में *श्री* गुण है। 'विद्' अर्थात् जानना, उसमें *ज्ञान* गुण है। 'ठ' अर्थात् शून्य। उसका दूसरा अर्थ है राग का अभाव। इसमें *वैराग्य* गुण है। इन गुणों को 'ल' अर्थात् जो स्वीकार करते हैं वे 'श्रीविट्ठल' इस प्रकार भगवान के छः गुण यहाँ भी बतलाए गए हैं।

धर्मनिरूपणेन धर्मित्वमपि निरूपिमतः श्रीकृष्णमेवायं इत्युक्तं भवति।

(धर्म का स्थान धर्मी है। धर्म एवं धर्मी में अभेद है) इसलिए धर्मों का निरूपण करने से धर्मी का निरूपण भी हो गया। भगवान श्रीकृष्ण षड्गुण सम्पन्न हैं। इसी प्रकार श्रीविट्ठल भी षड्गुण सम्पन्न हैं, इसलिए श्रीविट्ठल श्रीकृष्ण ही हैं। (दोनों एक ही स्वरूप हैं)

यद्यप्येवमैश्वर्याद्यन्यथानुपपत्त्या भगवत्त्वं प्रतिपादितम्, तथापि नारदादीनां जीवत्वेपि भगवत्त्ववदत्रापि भवेदिति शंकानिरासाय पुनः प्रकारान्तरेण सच्चिदानंदरूपत्वोक्त्या

साक्षाच्छीकृष्णत्वं ज्ञाप्यते।

यह ऐश्वर्य इत्यादि गुण भगवान के बिना किसी और में संभव ही नहीं है। इसलिए श्रीविठ्ठल ही भगवान श्रीकृष्ण हैं। यह बात सिद्ध हो गई। नारदजी जीवकोटि के होने पर भी भगवान कहलाते हैं। ऐसी शंका यहां होती तो उस शंका को दूर करने के लिए दूसरे प्रकार से सच्चिदानंदस्वरूप में वो साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। ऐसा विचार करें। (जिस प्रकार भगवान सच्चिदानंद हैं, उसी प्रकार श्री विठ्ठल भी सच्चिदानंद हैं)

तद्यथा, श्रीयते सर्गैरिति श्रीरानन्दः सर्वाश्रयत्वात्। यः कोपि यं कमप्याश्रयते स भगवदानन्दांशमेव, यथा राजानम्। अन्यथा "ममैवांशो जीवलोक" इति वचनाद् भगवदंशत्वेपि तदंशरहितं भिक्षुकमपि कोप्याश्रयेत। अतो यद्यद्विभूतिमत्सत्वमि" तिव-चनात्सर्वाश्रयत्व-मानन्दस्यैवेति तन्निरूपणेन स एव निरूपितो भवति। एवं श्रीपदेनानन्दरूपत्वमुक्तम्।

जिनका सभी आश्रय करते हैं वे श्री आनंद कहलाते हैं। जिस प्रकार राजा में भगवान के आनंद का अंश रहता है, इसलिए उनका आश्रय करते हैं। इसी प्रकार से जो भी जिस जिस का आश्रय करे वे सभी भगवान के आनंद अंश का ही आश्रय करते हैं। "जिस प्रकार जीव लोक में सभी जीव मेरे अंश हैं।" ऐसी गीताजी की आज्ञा के अनुसार सभी जीव भगवान के अंश तो है ही, परन्तु जिस जीव में श्री आनंदरूपी भगवान का अंश नहीं है उसका आश्रय नहीं करना चाहिये। भिखारी भी भगवद् अंश तो है ही परन्तु उसमें भगवान का श्री आनंद अंश न होने से कोई उसका आश्रय नहीं करता है। भगवान कहते हैं, "जो जो विभूतियाँ और प्राणी श्री अंश वाले होते हैं वे सभी मेरे तेज के अंशरूप हैं ऐसा जानो।" इस

प्रकार आनंद अंश वाले का सभी आश्रय करते हैं इसलिए आनंद के सभी आश्रय रूप हैं यह सिद्ध होता है। इस प्रकार "श्री" वर्ण श्रीविट्ठल में आनंद तत्व का निरूपण करता है।

विदिति चिद्रूपत्वं स्पष्टमेव, ठे शून्ये लाति स्वस्वरूपे गृह्णातीति यावत्। स्वयं सद्रूपो भूत्वा शून्यं नाशयति। घटेन तदभावमिव अनेन सद्भावत्वमुक्तं, भावस्यैव सत्पदवाच्यत्वात्। एवं स्फुटमेव साक्षाच्छ्रीकृष्णत्वं निरूपितमतोत्र न किंचिद-नुपपन्नम्। भक्तार्थमेव प्रकट इत्यवतारप्रयोजनमप्यजनेनैवोक्तम्।

'विद्' वर्ण चित् तत्व स्पष्ट करता है।'ठ' अर्थात् शून्य और 'ल' अर्थात् स्वीकार करना। जिस प्रकार घड़ा तैयार हो जाने पर घड़े का अभाव नहीं रहता, ऐसे ही आप सद्रूप होकर के शून्यता को दूर करते हैं। ऐसे ही श्रीविट्ठल में सत्, चित् और आनंद तत्व विद्यमान हैं। इसलिए उनका सच्चिदानंदत्व-श्रीकृष्णत्व सिद्ध हुआ। भक्तों के लिए ही उनका प्राकट्य है। ऐसा प्रयोजन बतलाया गया है।

भावार्थ :

श्री रघुनाथजी ने सबसे पहले नाम प्रकट किया "*श्रीविट्ठल*"

यह नाम जगतप्रसिद्ध है, परन्तु उसका रहस्य अज्ञात है। जैसे छोटे से बीज में से विशाल वट वृक्ष का विस्तार प्रकट होता है इसी प्रकार यह नाम सभी नामों का बीज रूप है। उसमें से सभी नाम प्रकट हुए हैं। इसीलिए यह नाम बीज रूप में सर्वप्रथम कहा गया है।

बीज अत्यंत सूक्ष्म होता है, परन्तु उसमें सम्पूर्ण वृक्ष छिपा हुआ होता है। बीज की शक्ति अकल्पनीय होती है। ऐसा ही इस

नाम का भी है।

सबसे पहले इस नाम का और प्राकट्य का स्मरण करें।

पंढरपुर में चंद्रभागा नदी की बैठक में बिराजने वाले श्रीमहाप्रभुजी के पास श्रीविठोबाजी पधारे और यह पुरुषोत्तम की आज्ञा श्री महाप्रभुजी को निवेदन करी : "आप अब गृहस्थाश्रम का स्वीकार करिये। आपके वंश रूप में साक्षात् प्रभु को प्रकट होना है।

श्री महाप्रभुजी ने इस आज्ञा को स्वीकार किया तथा उनके यहां संवत् १५७२ में श्रीविट्ठल का प्राकट्य हुआ। श्री विट्ठलनाथजी का भगवद् स्वरूप भी उसी समय श्रीमहाप्रभुजी के यहाँ पधारे। इसलिए आपने बालक का नाम श्री विट्ठल रखा।

इस प्रकार चरणाट की बैठक में श्रीविट्ठल का रूप और नाम प्रगट हुआ। इस महा अलौकिक अवसर का दर्शन करके श्री गोपालदासभाई गाते हैं-

आ धवल धन्याश्री गान जे करे, उच्चरे श्री विट्ठलजी अवतार।

आ सारस्वत लीला ते जन लहे ए।

आ दासनो दास जाय वारणे, रह्यो रे उत्सव जुए।

को 'एक भगवदी' ते समे ए।

अब हम 'श्रीविट्ठल' रूप की संगति का चिंतन करें।

गो. श्रीद्वारकेशजी, 'भावभावना' में श्रीविट्ठलनाथजी ठाकोरजी की स्वरूपभावना समझाते हैं। शरद की रात्रि को भगवान ने वेणुनाद करके व्रजांगनाओं को अपने पास वृंदावन में बुलवाया। सब कुछ छोड़कर आने वाली व्रजांगनाओं से भगवान ने वापस जाने की आज्ञा करी। तब व्रजांगनाओं ने भगवान के

पास सवाल-जवाब किए। उस समय प्रभु ने अपने दोनों श्रीहस्त कमर पर टिकाये तथा बंक भ्रकुटी करके ठाड़े थे।वे व्रजांगनाओं की सर्वात्मभाव की कसौटी कर रहे थे। इस लीला का जो स्वरूप है वे ही श्रीविठ्ठलनाथजी हैं। इस प्रकार श्रीगुसांईजी श्रीविठ्ठलनाथजी भी शरण में आने के लिए उत्सुक जीव की पात्रता की कसौटी करते हैं तथा उसकी तत्परता की परीक्षा करते हैं। शरण में लेने के बाद उसकी कृति देखे बिना ही उसे भगवत् प्राप्ति करवा देते हैं। इस प्रकार भगवान एवं आचार्य इन उभय रूपों से आपके रूप की संगति के दर्शन होते हैं।

अब हम 'श्रीविठ्ठल' नाम के स्वारस्य का चिंतन करें।

'श्रीविठ्ठल' शब्द चार वर्ण-अक्षरों से बना हुआ है। श्री+विद्+ठ+ल 'श्री' पद ऐश्वर्य-सुंदरता-आनंदवाचक है। विद्=ज्ञान, ठ=शून्य (रागरहित), ल = स्वीकारते हैं। जो शरण में आए हुए ज्ञानशून्य जीवों को संसार में से रागरहित करके सेवकरूप में स्वीकारते हैं। ऐसे षटविद् ऐश्वर्यादि धर्मों से युक्त श्री विठ्ठल। 'श्री विठ्ठल' शब्द के ये चारों वर्ण चार स्वामिनी स्वरूप हैं श्री=लक्ष्मीरूपा श्री राधिकाजी, विद्=ज्ञान सर्वोत्म ज्ञानस्वरूप वेद की श्रुतियां। श्रुतिरूपा गोपीजनों के स्वामिनी श्री चंद्रावलीजी ठ=शून्य (रागरहित) संसार ने जिनको स्पर्श नहीं किया है ऐसी कुमारिकाएं ऋषिरूपा गोपीजनों के स्वामिनी श्री राधा सहचरीजी ल=स्वीकार करते हैं। इन सभी यूथों को रासरमण के लिए खुद के पुलिन पर प्रसन्नता से स्वीकार करने वाली चतुर्थ प्रिया श्रीयमुनाजी। इस प्रकार अपने भावात्मक स्वरूप में चारों स्वामिनियों सहित चारों प्रकार के भक्तों के यूथ में विलास करने वाले वे श्रीविठ्ठल -

आपका दूसरा स्वरूप है श्री चंद्रावलीजी का। वे श्रुतिरूपा गोपीजनों के यूथ के स्वामिनी। अज्ञान दूर करके ज्ञान प्रकट करने का धर्म वेद की श्रुतियों रूपी ज्ञान के आप स्वामी हैं।

इस प्रकार नाम संगति से भी स्पष्ट हुआ कि श्रीविट्ठल वही परब्रह्म पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं।

'विवरणकार' दोनों स्वरूपों में बिराजने वाले अलौकिक षड्गुण धर्मों का निरूपण करते हैं उसे हम समझें।

भगवान में छह अलौकिक धर्म श्री, ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य हैं। यह धर्म जीवात्मा में नहीं हैं। यह धर्म जिनमें होते हैं उसे 'धर्मी' कहते हैं। जिस प्रकार सूर्य और सूर्य की किरण अलग न होकर एक ही है। उसी प्रकार धर्म और धर्मी भी एक ही हैं। बिना धर्म के धर्मी नहीं होता और बिना धर्मी के धर्म भी नहीं होता।

श्रीगुसांईजी में भी इन छह अलौकिक धर्मों का नीचे लिखे अनुसार दर्शन होता है, इसलिए वे भी 'धर्मी' स्वरूप हैं।

(१) *ऐश्वर्य* - जब भगवत्प्राप्ति के सभी मार्ग नष्ट हो जाते हैं, तब किसी भी साधन की अपेक्षा के बिना वे दीन, हीन जीव को भी भगवत्प्राप्ति करवा देते हैं। यह उनका ऐश्वर्य धर्म है।

"कहो के देह दमन साधन करि मूरख जन,
विद्यमान आनंद तज चलत क्यों अपाथे?"

(२) *वीर्य* -ज्ञान, कर्म, उपासना इत्यादि मार्गों में कठिन देहदमन करके त्रस्त होने वाले जीवों को देह, इन्द्रियों इत्यादि को होने वाले क्लेश भी वे दूर करते हैं। अतः यह राग, भोग, शृंगारयुक्त रसमय सेवा-मार्ग प्रवृत्त हुआ है यह उनका वीर्य धर्म है।

(३) *यश*- हीन जीवों को भी रसमय सेवा मार्ग द्वारा भगवत्प्राप्ति करवाने के कारण उनका यश धर्म सर्वत्र फैल गया है।

"एक ब्रह्मांडे जेना यश न माया, तेना हुआ कोटि अनंत,
तोय त्यां थकी वाधियो, जई वस्यो मुख धीमंत"

(४) *श्री*-आपके नाम के आरंभ में लगने वाला श्रीपद आनंदवाचक है। आनंद की समृद्धि केवल प्रभु के पास में ही है। अतः वह आपका श्रीधर्म है।

(५) *ज्ञान*-आपके नाम में 'विद्' वर्ण ज्ञानवाची है। इसीलिए वह चिद्रूप है। आपके प्रथम दर्शन से ही अनेक जीवों को आपमें पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूप की झांकी हुई है। श्री छीतस्वामी शरण में आते ही गाते हैं :"भई अब गिरिधरसों पहेचान"

(६) *वैराग्य*-आप के नाम में रहने वाला 'ठ' वर्ण शून्यता-राग के अभाव का द्योतक है। सद्रूप प्रकट होते ही शून्यता नहीं रहती। आपके दर्शन से ही जीव का संसार के प्रति राग भगवद् अनुराग में परिणत हो जाता है। यह आपका 'वैराग्य' धर्म है।

कई बार जीवकोटि के भक्तों के अलौकिक चरित्रों को देखकर उनको भी 'भगवान' विशेषण से अलंकृत किया जाता है। जिस प्रकार भगवान नारद श्रीगुसांईजी के लिए ऐसा विचार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऊपर कहे अनुसार केवल भगवान में ही जो संभव हो ऐसे छः अलौकिक धर्म उनमें विद्यमान हैं। इसलिए आप "वस्तुतः कृष्ण एव" ही हैं।

इस नाम और रूप में प्रथम दर्शन में ही महानुभाव श्री नंददासजी ने गाया -

"प्रात समै श्री वल्लभ सुत को उत्त ही रसना लीजै नाम,
आनंदकारी प्रभु महामंगलकारी, अशुभहरण जनपूरनकाम ॥१॥

येही लोक परलोक के बधुं, को कहि सकै तिहारो गुनग्राम,
'नंददास' प्रभु रसिकशिरोमणि, राज करो श्री गोकुल सुखधाम" ॥२॥

वार्ता–चरित्र–संगति :

२५२ वैष्णवन की आगरा के क्षत्राणी की वार्ता है।

यह क्षत्राणी स्वभाव से अत्यंत मूढ थी। एक दिन वे लोग श्रीगुसांईजी के पास नाम लेने के लिए आए। आपने श्रीमुख से "श्रीकृष्णः शरणं मम" ऐसा कहा और उस क्षत्राणी को इसी प्रकार बोलने की आज्ञा करी, परन्तु प्रयास करने के बाद भी वह क्षत्राणी अष्टाक्षर मंत्र बोल ही नहीं सकी। उसको बोलते जमता ही नहीं था।

श्रीगुसांईजी ने पूछा : "आपको मेरा नाम तो आता है ?" क्षत्राणी ने "हाँ" कहा। तब आपने आज्ञा की। "तू मेरा नाम लिया करना" क्षत्राणी श्रीगुसांईजी के सिवाय और कुछ भी नहीं जानती थी। उसकी ऐसी अनन्यता देखकर श्री गुसांईजी भी प्रसन्न हुए। इसलिए श्रीगोवर्द्धननाथजी भी उसे दर्शन देते थे।

बैठक–चरित्र–संगति :

चरणाट में बैठकजी के स्थान में आप प्रकट हुए। आपके नाम के संस्कार भी वहीं हुए। "श्रीविट्ठल" नाम और रूप से आप सदैव वहां बिराजते हैं। वहाँ हम आपश्री को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हैं।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठलेश विट्ठलेश रसना रट मेरी,
ग्रंथन को यह सार, याहि ते होत पार,
तोसों कहुं तुव हित केरी॥ १॥
चाहे जो भलो तेरो, कह्यो बेग मान मेरो,
भजी लें श्री घोषनाथ धन्य जीवन तेरी,
जगना जनको सहाय, प्रेमपुंज सुयश गाय,
असत बात दूर करो विषया अरुझेरी॥ २॥

▲ ▲ ▲

ब्रह्मकुल हरि अवतर्या ते, टालवा भूमिभार,
श्रीनाथ विट्ठल नाम निरूपम, वृंदावन शृंगार,
एक रसना केम कहुं गुण प्रकट विविध विहार,
नित्यलीला नित्य नौतम श्रुति न पामे पार।

▲ ▲ ▲

श्री विट्ठल सुखकारी नामे निष्पाप थाय नरनारी,
दुर्गति सकल निवारी, प्रगट्या श्रीव्रजपति रासविहारी।

ऐसा आपका प्रमेयात्मक स्वरूप एवं नाम का अलौकिक स्वारस्य है।

कृपासिन्धवे नमः (२) कृपासिन्धुः कृपा के सागर = कृपा-सिन्धवे नमः।

विवरण :

ननु परार्थे स्वयमाविरभूदत्र को हेतुरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

भक्त के लिए ही आप स्वयं प्रकट हुए उसमें क्या कारण है। इस प्रश्न के जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

कृपा दया तस्य सिन्धुः समुद्र इत्यर्थः। भक्तिरत्नाकरत्वा-गाधत्वादिगुणत्वात् अत्रायं भावः, यथा समुद्रः स्वमर्यादामुल्लंघ्य नान्यत्र गच्छति, तथातत्कृपापि स्वमर्यादोल्लंघनं न करोतीति ज्ञापनाय तत्सिंधुत्व कथनम्।

आप कृपा के सागर हैं। आप भक्ति रत्नाकर हैं। जिस प्रकार समुद्र अगाध है। उसी प्रकार से आप में भी अगाधता का गुण है। जैसे समुद्र स्वयं की मर्यादा को लांघता नहीं है, उसी प्रकार से आपकी कृपा भी स्वमर्यादा का उल्लंघन नहीं करती है। ऐसा सूचित करने के लिए आपको कृपासिंधु कहा।

किंच, यथा नद्यादीनामतिवृष्ट्या पूर्णत्वं, तदभावे वाऽपूर्णत्वं, न तथात्वं कदाचिदपि समुद्रस्येति। कृपायाः सदैकरसत्वसूचनाय सिन्धुत्वकथनम्। अन्यथा कृपालुरित्येवोक्तं स्यात्। कृपैव हेतुरिति न पूर्वोक्तशंका।

जैसे अतिवृष्टि होने से नदी, जलाशय इत्यादि पूरे-पूरे भर जाते हैं तथा वृष्टि के अभाव में सूख जाते हैं। ऐसा समुद्र के साथ कभी नहीं होता है। वह हमेशा एक ही अवस्था में रहता है। ऐसे ही श्रीविट्ठल की कृपा भी सदा एक रस एक सरीखी ही होती है। ऐसा सूचित करने के लिए उनको "कृपासिंधु" कहा गया है। बाकी उन्हें कृपालु भी कह सकते थे। क्योंकि आपके प्राकट्य में कृपा ही कारण है अतः प्रारंभ में की हुई शंका नहीं रहती है।

भावार्थ:

श्री महाप्रभुजी दामोदर लीला के प्रसंग में श्रीसुबोधिनीजी में भगवद्कृपा का स्वरूप समझाते हैं। भगवान के अलौकिक

धर्म एवं धर्मी स्वरूप से भी विशेष बलवत्तर आपकी कृपा है, जिसका कोई आदि नहीं है, तथा जिसका कोई अन्त भी नहीं है, जो सर्वत्र व्यापक और सर्वसामर्थ्ययुक्त है, उनको एक मुग्ध गोपी यशोदाजी डोरी से बांधती है और भगवान उसमें बंध जाते हैं। उसमें भगवान की केवल कृपा ही कारण है। "कृपासीत् स्वधर्मभक्तवश्यता।"

श्रीविट्ठलेश भी भगवद्स्वरूप हैं। "छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल निगम एक करि गावे हो" इसलिए आप भी कृपास्वरूप हैं। आपकी कृपारूपी निधि की तुलना सागर के साथ की गई है।

समुद्र के तीन धर्म हैं (१) उसकी अगाधता (२) उसकी सदैव पूर्णता (३) स्वमर्यादा का हमेशा पालन करने की तत्परता।

श्रीगुसांईजी की कृपाशक्ति के भी ये दिव्य गुण हैं। इसलिए आप केवल कृपालु नहीं हैं, परन्तु *'कृपासिंधु'* - कृपा के सागर हैं। कृपा करना यह आपका सहज स्वभाव है। जीव की योग्यता, जीव का अधिकार, जीव की साधन करने की क्षमता इत्यादि का विचार किए बिना केवल कृपावश होकर के जीवों को भगवद् स्वरूपानुभव करवाने का आपका सामर्थ्य आप प्रकट करते हैं।

आपके इस नाम का स्वारस्य वार्ता साहित्य, बैठकचरित्र और कीर्तनसाहित्य से हमें नीचे लिखे अनुसार प्राप्त होता है।

वार्ता–चरित्र–संगति

एक दिन श्रीगुसांईजी गोकुल से गिरिराज पधार रहे थे। रास्ते में आपने एक अंधे ब्राह्मण को भीख मांगते देखा। आपको दया आ गई और आपने विचारा - 'बिना आँखों के दुःखी है।' मात्र कृपादृष्टि करके देखते ही उसे दिखाई देने लगा।

आप को उस पर अधिक कृपा करने की इच्छा हुई। उसे अपने पास बुलवाया और उसे आज्ञा की 'तुम हमारे साथ रहेगो?'

''कृपानाथ, मुझे और क्या चाहिए ?''

आप ब्राह्मण को लेकर श्री गिरिराज पधारे। परस्पर कुशल समाचार पूछे। श्रीनाथजी ने प्रसन्न होकर आज्ञा करी ''अब वाको सेवक करो।''

श्रीगुसांईजी ने उसे ब्रह्मसंबंध करवाया। आप श्री ने उसे 'वल्लभाष्टक' सिखाया।

आपकी कृपा से उसे सारी लीलाओं की स्फूर्ति हुई। वे नित्य श्रीगुसांईजी की चरण सेवा करने लगे। वे अडिंग के रहवासी थे। और उनका नाम धर्मदास था।

ऐसे दीन-हीन और पामर जीवों को भगवद् प्राप्ति करवाने वाले श्रीगुसांईजी सचमुच ही कृपासिंधु-कृपासागर हैं।

इसलिए आपकी स्तुति करते हुए कहा है कि -

यदनुग्रहतो जंतुः सर्वदुःखातिगो भवेत्।
तमहं सर्वदा वंदे श्रीमद्वल्लभनंदनम्॥

भावार्थ :

जिनकी कृपा से जीव सभी दुःखों को पार कर जाता है ऐसे श्री वल्लभनंदन श्रीगुसांईजी को मैं वंदना करता हूँ।

बैठक–चरित्र–संगति :

असारवा (अहमदाबाद) में श्रीभाईलाल कोठारी के नौ वर्ष के बाल दामाद गोपालदास जी जन्म से ही गूंगे थे। उन पर कृपा करके आपने अपना चर्वित ताम्बूल उनको दिया। अधरामृत के

स्पर्श से उनके हृदयचक्षु और वाणी दोनों खुल गए । तथा उन्होंने "श्रीवल्लभाख्यान" गाया :

कीर्तन–संगति :

परम कृपाल श्रीवल्लभनंदन, करता कृपा निज हस्त दे माथे,
जे जन शरण जात अनुसरही, ग्रहि सौंपत श्री गोवर्धननाथे (१)
परम उदार चतुर चिंतामनि, राखत भवधारा बहु जाते,
भज 'कृष्णदास' काज सब सरही, जो जाने श्री विठ्ठलनाथे (२)
वंदु श्रीविठ्ठलवर सुंदर नवघनश्यामतमालजी,
जगतितल पर कृपा करेवा, प्रगट्या परमदयालजी. १ (श्रीवल्लभाख्यान)

भक्तवश्याय नमः

(३) *भक्तवश्यः* = आप भक्तों के वशीभूत हैं = भक्त वश्याय नमः ।

विवरण :

भक्तैर्वश्यो वशीकर्तुं योग्य इत्यर्थः । अत एव तद्रूपा इति भावः।

आप भक्त के वशीभूत होकर रहते हैं। आप भक्तों को वश करने योग्य हैं। आप कृपा के सागर है, परन्तु भक्त के वशीभूत हैं। इसलिए आप भक्त के सामने मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। आपकी कृपा की यही उत्तमता है। ऐसा भाव इस नाम में है।

ननु समुद्रस्य नदीसंगमे तदाभिमुख्येन कियद्दूरं वेगिर्दृश्यते तथा सति तदुल्लंघनमेवैवमत्रापि क्वचिदल्लंघनं भविष्यतीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

समुद्र में जहां नदी का संगम होता है उसमें बहुत दूर तक समुद्र का वेग दिखाई देता है। इस वेग के ही कारण समुद्र उसकी मर्यादा का उल्लंघन करता हुआ दिखाई देता है।

आप स्वयं कृपा के सागर हैं। भक्त नदी के समान है। भक्त को वश में करने के लिए अथवा भक्त द्वारा वश होने के लिए क्या आप भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन करेंगे ? इसका स्पष्ट यही जवाब है कि "नहीं" क्योंकि कृपासागर हैं ऐसे आप भक्त के लिए कृपा करके ही प्रकट होते हैं।

भावार्थ :

श्री विट्ठल साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम का ही प्राकट्य है। इसीलिए श्रीपूर्णपुरुषोत्तम की सर्वगुण लीला भी आपने प्रकट की है।

सर्वतंत्रस्वतंत्र ऐसे प्रभु केवल भक्त के वशीभूत हैं। प्रभु ज्ञानी के वशीभूत नहीं हैं। वे कर्ममार्ग या उपासना मार्ग के वशीभूत नहीं हैं। देव, दानव या मानव के वश में भी वे नहीं हैं, परन्तु भक्त के पास प्रभु को वशीभूत करने का उपाय सहज रूप में प्राप्त है। "प्रीतम प्रीत ही सो पैये" भक्त का हृदय तो तत्सुख की भावना के रस से ही भरा हुआ है। इसलिए भगवान भक्त की भक्ति के आधीन हो गए हैं। गोपीजन के समक्ष थोड़ी सी छाछ के लिए भी नाचे हैं। वामन के द्वारपाल बनके बिराजे हैं। इसीलिए तो दुर्वासा ऋषि को भी भगवान ने आज्ञा की थी कि भाई "मैं तो भक्त के पराधीन और परतंत्र हूं। भक्त के पास मेरा कुछ भी नहीं चलता है।" चतुरशिरोमणि भगवान भक्त के पास मुग्ध बन जाते हैं।

भगवान भक्त के वश होकर भक्त को भी सदा अपने वशीभूत कर देते हैं। इस प्रकार उभय का परस्पर निरोध होता है। भगवान को भक्त के बिना नहीं चलता है और भक्त को भगवान के बिना भी नहीं चलता है। दोनों एक-दूसरे के वशीभूत हो जाते हैं।

भक्ति की ऐसी परवशता के दर्शन हमको श्रीगुसांईजी में एवं उनके सेवकों में भी होते हैं। श्रीगुसांईजी भी भक्तों के वशीभूत होकर विराजते हैं। अनेक दैवी जीव तो आपके प्रथम दर्शन में ही आपके वशीभूत हो गए हैं।

भक्ति की इस परवशता का एकमात्र कारण है आपकी कृपा। आप कृपासागर हैं। जब सागर को याद करें तभी नदी-सागर संगम यह सब याद आते हैं। वह दृश्य अद्‌भुत होता है। जब नदी सागर को मिलने आती है। तभी सागर भी नदी को भेंटने के लिए उसे अपने में समाविष्ट कर लेने के लिए पूरे जोश के साथ अपनी मर्यादा को छोड़कर दौड़ लगाता हुआ उसकी तरफ आता है।

लौकिक सागर से भी आप अलौकिक कृपासागर विलक्षण हैं। भक्त के लिए मर्यादा छोड़ने पर भी अन्य लोगों की दृष्टि में मर्यादा का पूर्णतः पालन करने वाले हैं। आपकी यह विलक्षणता आपके इस भक्तवश्य स्वरूप में प्रकट होती है।

आपकी यह 'भक्तवश्यता' जरूरत पड़ने पर लोकवेद का भी उल्लंघन करती है। आप अपने इस भक्तवश्य स्वरूप के दर्शन अंगीकार किए हुए निज भक्तों को करवाते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

असारवा (अहमदाबाद) में आपके कृपापात्र सेवक श्रीभाईलाल कोठारी रहते थे। कोठारीजी को आपके दर्शन की अत्यंत आर्ति थी और आपको भी कोठारीजी को दर्शन देने की बहुत उत्कंठा थी। कोठारीजी को मिलने को कई वर्ष भी हो गए थे। इसलिए आप अचानक द्वारका यात्रा के निमित्त से परदेश पधारे। उनके साथ में चांपाभाई भंडारी एवं शंकरभाई भंडारी भी

थे। मार्ग में आपने फतेहपुर सीकरी में बीरबल के यहाँ मुकाम किया था। बीरबल ने आपश्री के मुकाम की सारी व्यवस्था की। बीरबल ने चांपाभाई से पूछा "आप अचानक क्यों परदेश पधार रहे हैं।" चांपाभाई ने जवाब दिया "भंडार में कर्ज खूब हो गया था। इसलिए आप गुजरात पधार रहे हैं।" यह सुनकर बीरबल ने कहा "यदि ऐसी हकीकत हो तो, भंडार का जो भी खर्च होगा वह मैं देता रहूंगा।"

बीरबल के ऐसे अहंकार के और अवैष्णवी वचन आपने सुने। इसीलिए किसी को कुछ भी कहे बिना जल्दी भोर में ही उठकर आप अकेले घोड़े पर सवार होकर गुजरात की ओर पधारे। आपने आज्ञा की "बीरबल अब हमारे काम सों गयो।"

बीरबल के त्याग एवं द्वारका के बहाने से भक्तों के मिलन के लिए पधारे हुए आप भक्तवश्य हैं।

कीर्तन–संगति

प्रात समै समरु श्रीविठ्ठलनाथ परम सुखकारी
भवदुःखहरन भजनफलपावन कलिमलहरन प्रतापमहारी (१)
शरण आये छांडत नहि कबहुँ बांह गहेकी लाज विचारी
तज अन्याश्रय भज पदपंकज द्वारकेश प्रभुकी बलिहारी (२)

अतिसुन्दराय नमः

(४) *अतिसुन्दर* = आप अति सुंदर हैं = *अतिसुन्दराय नमः।*

अतिक्रान्तानि सुन्दराणि मनोहराणि यावन्ति वस्तूनि तावन्ति येनेति स तथा अतिशयेन सुन्दरो मनोहरो इति वा।

जितनी वस्तुएं सुन्दर व मनोहर हैं। उन सभी वस्तुओं की सुंदरता को आप पार कर गये हैं। इसलिए आप अत्यंत सुंदर

और मनोहर हैं। आप से अधिक सुंदर कोई भी वस्तु नहीं है।

अत्रायमाशयः समुद्रस्य क्षीरनीरभयत्वान्न तन्मर्यादया वशीकरणम्, अस्य त्वानन्दमयत्वात्तथाकरणं युक्तमेव। आनंदमयत्वं तु मनोहरत्वादेव, नहि तद्रहितं मनोहरं भवति दारिद्र्यमिव ! यत्किंच्चिदानंदांशत्वव्यावृत्यर्थमतिशयोप्युक्तः।

खारे पानी वाले समुद्र को मर्यादा से बांध कर वश करने से क्या लाभ ? मर्यादा से वश करने पर भी खारे जल में से आनंद मिल ही नहीं सकता, जबकि श्रीगुसांईजी तो आनंदमय हैं। इसलिए अतिसुंदर-मनोहर हैं। इसलिए वश करने के योग्य हैं। उनको वश में करने से आनंद मिलता है। जो आनंदरहित होता है वह मनोहर भी नहीं होता है। गरीबी कहां मनोहर है ? श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण निरतिशय आनंद स्वरूप हैं। इसलिए ही अतिसुंदर हैं।

ननु किमानंदमयत्वमलौकिकं लौकिकं वेत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

यह आनंदमयता सचमुच में अलौकिक है। अथवा लौकिक है। ऐसी शंका के प्रत्युत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण के इस अलौकिक नाम रत्नों की माला में आपके नामरत्न परस्पर गूंथे हुए हैं। ये नाम रत्न बिखरे हुए नहीं हैं। इसलिए प्रत्येक नामरत्न आगे आने वाले नामरत्न में वर्णन किये हुए आपके दिव्य स्वरूप का विशेष प्रकटीकरण करते हैं।

'भक्तवश्यः' नामरत्न को स्पष्ट करने के लिये टीकाकार ने

सागर-नदी संगम का दृष्टान्त दिया। उसी दृष्टान्त की सहायता से "अतिसुंदर" नामरत्न को प्रकाशित किया है।

नदी सागर में मिलती है, परन्तु उसमें नदी को क्या लाभ ? नदी अपना मीठा जल सागर में उंडेलकर वह स्वयं भी सागरमय खारी बन जाती है। नदी ने हिलोरें मारते हुए सागर को वश में किया। मर्यादा में बांधा, परन्तु उसको स्वयं को सागर के खारे जल में से क्या आनंद मिला ?

जबकि श्रीगुसांईजी के स्वरूप में उससे उलटा ही है। आप पूर्ण पुरुषोत्तम हैं, इसलिए पूर्णानंद हैं। अतः आप "रसो वै सः" हैं। आप आनंदमय हैं, इसलिए अतिसुंदर मनोहर हैं। कोटि कंदर्पलावण्य हैं, रसघन हैं।

जीव चिदंश हैं, इसलिए आनन्दशून्य है। आनंदस्वरूप को वश करके जीव आनंद की प्राप्ति के लिए तड़पता है। उसे श्रद्धा है कि आपका स्वरूप लौकिक नहीं है, अलौकिक है। इसीलिए आप आनंद विग्रह हैं। इसलिए आनंदमय प्रभु को वश में करने से अवश्यमेव आनंद की प्राप्ति होगी ही।

जगत के लौकिक पदार्थों में भी जो पदार्थ सुंदर-मनोहर होते हैं वे ही आनंद का आभास करवाते हैं। असुंदर पदार्थ आनंद का आभास नहीं करवा सकते हैं। दरिद्रता दुनिया के लोगों के लिए असुंदर है। इसलिए आनंददायक नहीं है। आनंदतत्व ही सौंदर्य स्वरूप में प्रकट होता है।

संसारी सौंदर्य नाशवान होते हैं। जो मोह को उत्पन्न करने वाला है वह आनंददायक नहीं हो सकता है। संसारी सौंदर्य यदि इतना सुंदर हो तो उस सौंदर्य को प्रकट करने वाले प्रभु स्वयं

कितने सुंदर होंगे ! जब तक जीव को भगवद् सौंदर्य का अनुभव नहीं हुआ है, तब तक खारे समुद्र जैसे दुनिया के सौंदर्य के मोह में वह आसक्त रहता है, परन्तु एक बार भगवद् सौंदर्य का दर्शन हो जाने के बाद उसे संसारी आसक्ति उसी क्षण नष्ट हो जाती है। भक्त कवि नंददासजी एवं रसखानजी के चरित्र इस सिद्धांत को बहुत अच्छी तरह से समझाते हैं। बाद में तो भक्त की एक ही अभिलाषा रहती है *" प्रिय तोहि नैनन हि में राखौं"*

ऐसा ही अनुभव भक्तों को श्रीगुसांईजी के स्वरूप में भी हुआ है।

श्रीमहाप्रभुजी इस प्रमेय स्वरूप को सिद्धात-प्रमाण रूप में "श्रीभागवतार्थनिबंध" के मंगलाचरण में नीचे लिखे अनुसार समझाते हैं :

'श्रीकृष्ण' पदमें 'श्री' अर्थात् अनवतार दशा में आपके श्री अंग में बिराजने वाली सम्पूर्ण आत्मसृष्टि *"सहमेव लब्ध्वा आनंदी भवति।"* इस न्याय से नित्यलीला में से अवतार दशा में साकार स्वरूप में बाहर पधराकर वे भक्तों के साथ अनेकों भावों से संश्लिष्ट अनेक प्रकार से आपने आनंदात्मक-रसात्मक क्रीड़ा करी। इसलिए भक्तों ने गाया हैं कि :

"व्रज, वृंदावन, गिरि, नदी, पशु, पंछी, सब संग॥"
"यामें कहा दुरावनो प्यारी, यह अब मेरो अंग॥"

श्री गुसांईजी श्री पुरुषोत्तम स्वरूप से अपने निज जनों को अतिसुंदरता के दर्शन करवाते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी ने श्रीगिरराजी से अड़ेल पधारते हुए

मार्ग में आगरा में एक वैष्णव के वहाँ मुकाम किया।

उष्णकाल के दिन थे। आप शाम के समय झरोखे में बिराजते थे। उनके सामने माणकचंदजी रहते थे। उस समय माणकचंदजी की पत्नी उनके घर की अटारी पर चढ़ी थी। वहां से उनको श्रीगुसांईजी के दर्शन हुए। आपश्री ने कृपा करके उनको साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूप में- *'आनंद मात्र करपादमुखोदरादि'*- रूप में दर्शन दिए।

दर्शन होते ही वह आश्चर्यचकित हो गई। अपने देहानुसंधान को भूल गई और रात्रि को जब माणकचंदजी घर आये तब उनकी पत्नी ने उन्हें सारी हकीकत कह सुनाई। माणकचंदजी को भी ऐसे ही अलौकिक दर्शन हुए थे।

श्रीगुसांईजी ने देर रात तक वहां बिराजकर अत्यंत सुंदर स्वरूप में इन दोनों को दर्शन दिए। उसके बाद आप पोढने को पधारे।

दोनों पति-पत्नी तो पूरी रात आपके इस अलौकिक स्वरूप से मुग्ध होकर वहीं बैठे रहे। दूसरे दिन दोनों आपश्री की शरण में आए और श्रीगुसांईजी को सर्व समर्पण किया।

शरण में आने से पहले ऐसी सुंदरता के दर्शन करावे, वे प्रभु शरणस्थ जीवों को अति सुंदर स्वरूप में दर्शन दें इसमें क्या आश्चर्य की बात है ?

कीर्तन–संगति :

हेलि रसमय श्रीवल्लभसुत प्रकट भये आज,

अंग अंग द्युतिसंग मधुरावलि केलि प्रसंग दृग

विसाल भ्रोंह भालकमनीय साज ॥१॥

लीला अमृत रसाल प्रेमभक्ति सुमरन करे

निहाल भावन बांधे पाज,

पद्मनाभ वागधीश कुंवर केलि कल अखिल

अवगाहत प्रेमसिंधु व्रजजन सिरताज ॥२॥

✶

सुखद स्वरूप श्रविट्ठलेशराय,

वेदविहित पूरन पुरुषोत्तम श्रीवल्लभगृह प्रगटे आय ॥१॥

लटपटी पात्र महारस भीने अति सुंदर वर सहज सुभाय,

'छीतस्वामी, गिरिधरन श्रीविट्ठल अगनित महिमा बरनी न जाय ॥२॥

कृष्णलीलारसाविष्टः श्रीमान् वल्लभनंदनः ।

दुर्दृश्यो भक्तसंदृश्यो भक्तिगम्यो भयापहः ॥४॥

अन्वय शब्दार्थ :

कृष्णलीलारसाविष्टः=कृष्ण लीला के रस से भरपूर, *श्रीमान्*= शोभायुक्त, *वल्लभनंदन*= श्रीवल्लभ के पुत्र, *दुर्दृश्यः*= (इतरजनों को) दुःख से भी दर्शन न देने वाले, *भक्तसंदृश्यः*=भक्तों को बिना प्रयास के दर्शन देने वाले, *भक्तिगम्यः*=भक्ति से गम्य (जान सके, प्राप्त कर सके) ऐसे, *भयापहः*=भक्तों के भय को दूर करने वाले हैं।

कृष्णलीलारसाविष्टाय नमः

(५) श्रीकृष्णलीलारसाविष्टः = आप कृष्ण लीला के रस से भरपूर हैं= *कृष्णलीलारसाविष्टाय नमः कृष्णस्य पूर्णानंदस्य विग्रहस्य लीलास्तथाविधास्तद्रसेनाविष्ट आसमन्ताद् व्याप्त इत्यर्थः ।*

पूर्णानंद विग्रह (स्वरूप) कृष्ण की लीलाओं से आप पूर्णतः

भरे हुए हैं-व्याप्त हैं। 'योयच्छ्रद्ध स ऐव सः।' इति वचनाद्यत्र श्रद्धामात्रेपि तद्रूपत्वं सम्पद्यते, तत्र साक्षात्स्वरूपलीलावेशे किं वक्तव्यमिति भावः।

'जो जिसमें श्रद्धावान है वह उसमें तद्रूप है।' इस वचन के अनुसार जहां अपने श्रद्धा हो वहां श्रद्धा मात्र से ही तद्रूप हुआ जाता है। तब जहां साक्षात् स्वरूप और उनकी लीलाओं का ही आवेश हो, वहां तो कहना ही क्या ? अर्थात् श्रीगुसांईजी साक्षात् लीलारस से भरपूर हैं।

अनेनालौकिकत्वमेवेति पूर्वोक्ता शंकापास्ता।

इसके पहले के नाम के विवरण के अंत में यह शंका की गई थी कि श्रीगुसांईजी की आनंदमयता अलौकिक है या लौकिक ? यह शंका यहां दूर होती है। कृष्णलीला अलौकिक है, इसलिए उसी लीलारस से भरपूर है। श्रीविट्ठलेशप्रभु चरण की आनंदमयता भी अलौकिक है।

ननु तद्रसावेशस्य स्वान्तरेवानुभूयमानत्वात्कथं ज्ञायत इत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

वास्तव में उस रसावेश का अनुभव तो अंतकरण में ही होता है वह बाहर किस प्रकार समझा जा सकता है ? इस शंका के जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

'कृष्ण' पद अमूर्त सुधास्वरूप-विप्रयोगधर्मी स्वरूप को सूचित करता है। *'एकोऽहम्'* यह विप्रयोगधर्मी स्वरूप की मूल लीला है। वही स्वरूप *'बहु स्याम्'* हो गया। तब नित्यलीला प्रकट हुई। भक्तों के मनोरथ पूरने के लिए उसी स्वरूप से

सारस्वत कल्प में ब्रज में प्रकट होकर भूमिलीला करी।

इन सम्पूर्ण अलौकिक लीलारस का सागर श्रीमहाप्रभुजी के हृदय में एवं रोम-रोम में सदाकाल में प्रकट रूप में विलसित होता है। इसीलिए आप *"परमानंद"* हैं। *"रासलीलैकतात्पर्यः"* हैं, *"रासस्त्रीभावपूरितविग्रहः"* हैं, *"प्रतिक्षणनिकुंजस्थ-लीलारस-पूरित"* हैं और *"स्वानंदतुंदिलः"* हैं।

आपने स्वयं का अशेष स्वमाहात्म्य श्रीगुसांईजी के द्वारा स्ववंश में स्थापित किया है। आप का लीलासामर्थ्य श्रीगुसांईजी में भी बिराजमान है। श्रीगुसांईजी संयोगधर्मी स्वरूप होने पर भी श्रीमहाप्रभुजी के संबंध से आप 'कृष्णलीलारस' से रोम-रोम पूरित हैं। इसीलिए 'श्रीवल्लभाख्यान' में श्रीगोपालदासभाई गाते हैं - *"अंगोअंग रसभर्यां लोचन चार"*

जो पूर्ण हो वह दूसरे को पूर्ण कर सकता है। श्रीगुसांईजी साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूप हैं। इसीलिए अपनी अलौकिक लीलाओं से आप परिपूर्ण हैं। इसीलिए आप निज भक्तों को भी उस लीलारस का गान करने में समर्थ हैं। आपके स्वरूप में 'कीटभ्रमरन्याय' नहीं है। आप सदैव लीलासागर में मग्न हैं, इसीलिए आपकी आनंदमयता भी अलौकिक है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी अपने श्रीमुख से आत्मनिवेदन का प्रसंग वैष्णवों को समझा रहे थे। तब आपश्री ने आज्ञा करी कि "आत्मनिवेदन से प्रभु में श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी की कृपा से दृढ़ आश्रय तत्काल हो जाता है और उसके द्वारा अलौकिक वस्तु दृढ़ हो जाती है। पुष्टिमार्ग की दिव्य लीला का दान हो

जाता है। पुष्टिमार्ग का पूर्णतः अनुभव भी हो जाता है और उस भक्त को अलौकिक दृष्टि भी प्राप्त हो जाती है।''

यह सुनकर एक क्षत्रिय वैष्णव ने श्रीगुसांईजी से विनती करी ''कृपानाथ ! मुझे पुष्टिमार्ग की लीला संबंधी दान करिये। उसके लिये कृपा करके मुझे आप आत्मनिवेदन करवाइये।

श्रीगुसांईजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी को बुलाकर के आज्ञा करी, ''गोवर्धन ! या क्षत्रिय वैष्णव को आत्मनिवेदन कराओ।'' श्रीगिरिधरजी द्वारा आत्मनिवेदन होने पर उस क्षत्रिय वैष्णव को पुष्टिमार्ग की लीला संबंधी ब्रजभक्तों सहित श्रीठाकुरजी के साक्षात् दर्शन हुए। इसलिए यह वैष्णव देहानुसंधान भूल गये और तीन दिनों तक लीला के आवेश में मग्न रहे। इसके बाद श्रीगुसांईजी ने उनको अष्टाक्षर सुनाकर सावधान किया। क्षत्रिय वैष्णव को श्रीगुसांईजी की कृपा से लीला ज्ञान संपादन हो गया। वे सदा ही भगवद् रस में छके रहते थे।

श्रीगुसांईजी का ऐसा कृष्णलीला रसाविष्ट स्वरूप होने से वही रस अपने स्ववंश में आज तक व्याप्त है और दैवी जीव उस लीला रस का आज भी अनुभव करते हैं।

बैठक–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी श्रीवृंदावन में बंसीबट में श्रीमहाप्रभुजी की बैठक के पास बिराज रहे थे। तब वृंदावन के महंत श्रीहरिवंशजी आदि आपके पास आये। उस समय एक व्यापारी भगवद्स्वरूप लेकर श्रीगुसांईजी के पास आया। आपने स्वरूप के सामने दृष्टि की और दृष्टि करते ही वे सभी स्वरूप प्रत्यक्ष

रूप में विविध लीलाएं करने लगे।

श्रीहरिरायजी इस चरित्र के भावप्रकाश में आज्ञा करते हैं कि "अन्य संत-महंत स्वरूप में प्राण-प्रतिष्ठा करें, तब उसमें पुरुषोत्तमत्व प्रकट होता है और श्रीगुसांईजी तो केवल दृष्टि करें, तब ही पुरुषोत्तमत्व प्रकट हो जाता है। कारण कि आप सदा कृष्णलीला रसावेश में मग्न हैं।"

कीर्तन–संगति :

श्री वल्लभ गृह सदा बधाई,
जबतें प्रगट भये श्रीविठ्ठलदास परमनिधि पाई॥१॥
भक्ति भागवत कथा कीर्तन महा महोत्सव प्रकट गुसांई,
कल्पवृक्ष प्रफुलित सुखदाई नंदसुवन वृंदावनराई॥२॥
परमभजन पुरुषोत्तम लीला प्रमुदित देव मुनिजन गाई,
लाल गोवर्धनधारी पदरज लालदास बलि जाई॥३॥

श्रीमते नमः

(६) *श्रीमान्* =आप शोभायुक्त हैं =*श्रीमते नमः ।*

विवरण :

श्रीस्तद्ररसावेशजनिता बहिः पुलकादिरूपा, सा विद्यते यस्मिन्निति स तथा ।

श्रीकृष्णचंद्र के लीलारस से आप संपूर्ण आवेशयुक्त हैं। इस कारण से आप के श्रीअंग में रोमावलि पुलकित हो गई है। ऐसी शोभा को आप धारण करने वाले हैं। इसीलिए आपका नाम 'श्रीमान्' है।

यथा पूर्णे घटेन्तःस्थितं वस्तु बहिर्निस्सरति, न त्वपूर्णे ।

जिस प्रकार से पूरे भरे हुए घड़े के अंदर गिरी हुई कोई भी

वस्तु तिरकर ऊपर आने पर बाहर निकल सकती है, परन्तु अधूरे घड़े में गिरी हुई वस्तु किस प्रकार बाहर निकल सकती है?

तथा पूर्णानन्देन्तःप्रविष्टे बहिस्तत्प्राकट्यं युक्तमेवेति भावः।

इस प्रकार से पूर्णानंद का अनुभव अंतःकरण में होने पर शरीर पर रोमांच प्रगट हो जाता है और इसीलिए पूर्णानंद का बाहर भी अनुभव अच्छी तरह से हो जाता है।

नन्वेवंविधस्य तस्य कुत्राविर्भाव इत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

यदि ऐसा हो तो पूर्णानंद आपका बाह्य रीति से प्रकट कहा हुआ, ऐसी शंका यदि की जावे तो अब आपका दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

भगवद्लीलारस का अनुभव जब अंतःकरण में होता है तब पूर्णानंद स्वरूप के द्वारा जीव को पूर्णानंद की प्राप्ति हो जाती है। पूर्णानंद प्राप्त होने पर जीव केवल हृदय के द्वारा ही उसका आस्वाद नहीं लेता है, परन्तु देह और इंद्रियां भी इस अलौकिक आनंदरस में डूब जाते हैं और इसका अनुभव करते हैं। इसके परिणामस्वरूप शरीर पर बाहर से प्रकट होने वाली रोमावली उत्तेजित होकर खड़ी हो जाती है। पूर्णानंद के अनुभव की प्रसन्नता बाह्य रूप से भी दृश्यमान होती है।

श्रीगुसांईजी अपने हृदय में अहर्निश भगवद्लीला रस का अनुभव कर रहे हैं। श्रीमहाप्रभुजी ने भी दशम स्कंध के 'सुबोधिनीजी' के प्रारंभ में मंगलाचरण करते हुए कहा है कि 'मेरे हृदयरूपी क्षीरसागर में सहस्र आधिदैविक लक्ष्मीरूप व्रजभक्तों के साथ प्रभु लीलाविहार कर रहे हैं और उनकी इस लीला विहार

का में आस्वाद ग्रहण कर रहा हूं।' प्रभु के इस आनंद स्वरूप का आनंद लेते हुए श्रीगुसांईजी अत्यंत शोभायुक्त दर्शन दे रहे हैं।

प्रभु की सभी लीलासामग्री भी प्रभु के समान परिपूर्ण और पूर्ण आनंदमयी है। इस लीला सामग्री से श्रीगुसांईजी भी परिपूर्ण हैं, इसलिए 'श्रीवल्लभाख्यान' में श्रीगोपालदासजी गाते हैं कि *"पोष मध्यान्हे नवमी श्रीनाथजी, आ चंद श्रीवृंदावन तणो प्रकटियो'।*

इसमें श्रीठाकुरजी को श्री वृंदावनचंद्र कहा गया है। श्री अर्थात् श्री स्वामिनीजी, वृंद अर्थात् सम्पूर्ण वृंजागनाओं का यूथ और अवन अर्थात् रक्षण। श्री स्वामिनीजी सहित सकल व्रजांगनाओं के यूथ का रक्षण करने वाले आधिदैविक चंद्र वे श्री ठाकुरजी हैं।

व्रज भक्तों का निरूपण करते हुए कहा है कि *"श्यामाशतदल नयनसुंदरी यूथ तणो नहीं पार"* व्रज भक्तों के यूथ के विविध भावों को प्रतिक्षण बढ़ाकर, रक्षण करने वाले वे आधिदैविक चंद्र हैं। जिस प्रकार चंद्र अपनी किरणों से सकल वन का पोषण करता है। इसी प्रकार प्रभु भी अपने भक्तों के भाव का पोषण करते हैं। इसीलिए व्रजभक्तों सहित श्रीनाथजी स्वयं श्रीगुसांई जी के रूप में प्रकट हुए हैं, इसलिए आपकी शोभा का कोई पार नहीं है। अतः आप 'श्रीमान्' हैं।

इसमें श्रीगुसांईजी का 'ईश्वर' धर्म प्रकट हुआ है। प्रभु के 'श्री' धर्म की व्याख्या करते हुए श्री महाप्रभुजी 'वेणुगीत' की कारिका में आज्ञा करते हैं कि 'स्वयं के सेवक में भी वे भगवद् सामर्थ्य के बल का धर्मप्रवेश करवाकर सेवकों को अपने जैसे बनाते हैं। वह भगवान का 'श्री' धर्म है।' उसी प्रकार से श्रीगुसांईजी

भी स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम होने से अपना स्वसामर्थ्य भक्तों में प्रवेश करवा कर अपने भक्तों को खुद के जैसे ही बना लेते हैं। यह श्रीगुसांईजी का 'श्री' धर्म है, इसलिए आप 'श्रीमान्' हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के कृपापात्र सेवक चाचा हरिवंशजी गुजरात का प्रदेश करते हुए एक बार रास्ता भूल गये। तीन दिन के बाद उनको एक गांव दिखाई दिया। वह गांव भील लोगों का था। उस गांव की एक भील बाई ने चाचाजी और उनके साथ के चार वैष्णवों को खुद के घर ले जाकर वहां मुकाम करवाया। भिलड़ी ने भोजन के लिए पूछा, तब चाचाजी ने कहा : 'आप वैष्णव नहीं है, इसलिए आपकी कोई भी वस्तु हमारे काम में नहीं आ सकती है।' उस भील बाई ने अपने आप को वैष्णव बनाने के लिए निवेदन किया। उसकी अत्यंत आतुरता देखकर चाचाजी ने उसे अपरस में स्नान करवाकर श्रीगुसांईजी की तरफ से श्रीअष्टाक्षर महामंत्र उसे दिया एवं वैष्णवी जीवन जीने की रीति सिखाई, तथा उसे श्री अष्टाक्षर महामंत्र को नित्य बोलने को कहा। उस भील बाई के घर के भी सभी लोग वैष्णव बन गए।

यह भील बाई प्रतिदिन प्रभु को भोग धरके ही लेती थी, परन्तु उसे आचार-विचार का ध्यान नहीं रहता था, इसलिए श्रीनाथजी ने श्रीगुसांईजी को शिकायत की 'चाचाजी ने एक भील बाई को शरण में लिया है, वह अपना जूठन मुझे भोग धरती है।'

जब चाचाजी वापस गोकुल पधारे तब श्रीगुसांईजी ने यह हकीकत उन्हें कही। चाचाजी फिर से उस भील बाई के गांव में गए। बाई को आचार-विचार समझाया तथा उसी प्रकार से वह

बाई अब रसोई करके भोग धरने लगी, इसलिये श्रीनाथजी प्रसन्नता से आरोगने लगे।

इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने अपने सेवकों को भी खुद के सर्वसामर्थ्य का दान किया है। अतः आप में *'श्री'* धर्म प्रत्यक्ष दर्शनीय है।

कीर्तन–संगति :

(राग-टोडी)

चतुराई ताकी सांची जो श्रीवल्लभनंदन को स्मरन करे।
सो जन निकट के दूर रहे पर रसना श्रीविट्ठलेश धरे।
सेवा करे न करे, पर मनसा इन हीके चरनकमल अनुसरे।
चतुरविहारी गिरिधारी ऐसो कहे मेरे हृदयतें कबहुंक न टरे॥

श्रीवल्लभनंदनाय नमः

(७) *श्रीवल्लभनंदन* = आप श्रीवल्लभ के पुत्र हैं, श्रीवल्लभनंदनाय नमः।

विवरण :

वल्लभं पुत्रत्वेनाविर्भूय नन्दयत्यानन्दयति सकलमनोरथैः समर्द्धयतीति वा। तस्य गृहे प्रादुर्भूत इति भावः।

श्री महाप्रभुजी के यहाँ आप पुत्र रूप में प्रकट होकर आनंद करवाते हैं। सभी मनोरथों को सिद्ध करके आनंद देते हैं। श्रीमहाप्रभुजी के घर प्रकट हुए हैं। इसलिए श्रीवल्लभनंदन हैं।

नन्वेवं सति सर्वैरेव कथं न तद्भजनं क्रियत इत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

अगर ऐसा ही हो तो सब लोग उनका स्वरूप जानकर उनकी

सेवा (भजन) क्यों नहीं करते, ऐसी शंका यदि हो तो यहां दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

संस्कृत में नंदन शब्द का अर्थ है आनंद देने वाला। माता-पिता को पुत्र आनंद प्रदान करता है। इसीलिए संस्कृत में पुत्र को 'नंदन' कहते हैं। श्रीगुसांईजी श्रीमहाप्रभुजी के घर पुत्र रूप में प्रकट होकर, श्रीमहाप्रभुजी को आनंद प्रदान करते हैं, इसलिए आपका नाम "श्रीवल्लभनंदन" है।

श्रीवल्लभ स्वयं पूर्णानंद स्वरूप हैं। इसलिए "श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र" में आपका नाम *'आनंदः, परमानंदः, पूर्णानंद'* एवं *'स्वानंदतुंदिलः'* है।

श्रीवल्लभ के स्वरूप का निरूपण करते हुए श्री हरिरायजी आज्ञा करते हैं कि :

स्वामिनीभावसंयुक्त-भगवद्भावभावितः।
अतिअलौकिका मूर्तिः श्रीवल्लभः शरणं मम॥

इस प्रकार से श्रीवल्लभ युगलस्वरूप के भावात्मा निरपेक्ष स्वरूप से बिराजमान हैं। उन्हें भी श्रीगुसांईजी आनंद देते हैं। इसलिए आपका नाम श्रीवल्लभनंदन है।

श्रीगुसांईजी श्रीमहाप्रभुजी के प्राकट्य का कारण समझाते हुए आज्ञा करते हैं कि :

तस्यैवात्मानुभावप्रकटन् हृदयस्याज्ञया प्रादुरासीद् भूमौ।

भगवान के अंतर हृदय में बिराजमान व्रजांगनाओं की निर्गुण प्रेमलक्षणा भक्ति श्रीवल्लभ ने भूतल पर प्रगट की है। दैवी जीवों को स्वरूपानंद का दान करने के लिए आपने कृपा की है। पुष्टिमार्ग

के प्रकाशन के अभाव में यह महादान संभव नहीं हो सकता है। इसलिए आप आपके नित्य लीला के स्वरूप में ही भूतल पर पधारे और आपके निर्गुण स्वरूप के द्वारा निर्गुण भक्तों को यह रसदान करवाया।

इस प्रकार आपने पुष्टिमार्ग प्रकट किया, परन्तु इसका विशेष प्रचार एवं प्रसार करने के लिए अपने ही अप्राकृत सगुण स्वरूप से अपने पुत्र रूप में पुनः प्राकट्य धारण किया। इसका सुंदर निरूपण मूल पुरुष नामक ग्रंथ में किया गया है।

आनंद बाढ्यो चहुंदिश, छबि देख श्रीवल्लभ हंसे,
वे हु कछु मुसकाय चित में, दोउ हंसे मेरे मन बसे।

इस प्रकार श्रीगुसांईजी के प्राकट्य में आपका ही नित्यविग्रहात्मक निजरस प्रकट उच्छलित स्वरूप में आविर्भाव प्राप्त करते हुए उसके दर्शन करके श्रीवल्लभ को अत्यन्त आनंद हुआ। इसीलिए आप *'श्रीवल्लभनंदन'* हैं।

आत्मा वै जायते पुत्रः इस न्याय से श्रीगुसांईजी श्रीमहाप्रभुजी को आनंद प्रदान करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी श्रीदामोदरदास हरसानीजी को दंडवत् नहीं करने देते थे तथा अपने चरणस्पर्श भी नहीं करने देते थे, क्योंकि आपको ऐसा दृढ़ विश्वास था कि श्रीदामोदरदासजी के हृदय में श्रीमहाप्रभुजी साक्षात् बिराजते हैं।

श्रीमहाप्रभुजी ने आसुरव्यामोह लीला करी तब से श्रीदामोदरदासजी को हर तीसरे दिन आप अपने अलौकिक

स्वरूप के साक्षात् दर्शन देते थे। उस समय आपने दामोदरदासजी को आज्ञा की- 'दमला ! तू श्रीगुसांईजी ने शुं करीने जाणे छे ?' तब श्री दामोदरदासजी ने कहा -'मैं उनको आपका पुत्र करके मानता हूँ।' तब आपने आज्ञा की 'नहीं, वह मेरा ही स्वरूप है, उसे मेरा ही स्वरूप जानो तथा आज से तुम उनको दंडवत् करना तथा उनके चरणस्पर्श भी करना।'

श्रीदामोदरदासी ने श्रीमहाप्रभुजी की इस आज्ञा का श्रीगुसांईजी को निवेदन किया। दंडवत् किये और चरणस्पर्श किये तब श्रीगुसांईजी भी अत्यन्त प्रसन्न हुए।

कीर्तन–संगति

(राग-सारंग)

श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नहि जाई।
प्रकट परमानंद गोकुल बसत हे सब जगतको जो सुखदाई॥
भक्ति मुक्ति देत सबनको निजजनको कृपा प्रेम बरखत अधिकाई।
सुखमय सुखरूप सुखद एक रसना कहलौं बरनों गोविंद बलि जाई॥

दुर्दृश्याय नमः

(८) *दुर्दृश्यः* = भक्त के बिना इतर जन को आप दुःख से भी दर्शन देने वाले नहीं हैं।

दुर्दृश्याय नमः।

विवरणः

दुःखेनातिकष्टेनापि न दृश्यत इत्यर्थः भक्तेतरैरिति शेषः।
नहि तदिच्छामन्तरेण कोपि तं पश्यतीन्द्रियाद्यविषयत्वात्।

आपकी इच्छा के बिना आपके दर्शन करने में कोई भी समर्थ नहीं है, क्योंकि आप इंद्रियों से अतीत हैं। जो इंद्रियों से

पर हो वह इंद्रियों के विषयरूप कैसे बन सकता है।

सा तु, भक्ता एव मां पश्यन्तु नासुरा इत्येवंरूपा, तद्भावापन्ना न पश्यन्तीति युक्तमेवेति भावः।

अगर आपकी इच्छा हो कि भक्त मेरा भी दर्शन करे तो ही भक्तों को आपका दर्शन हो सकता है। आसुरी जीव मेरा दर्शन न करें। ऐसा सोचने पर आसुरी भाव वालों को आपके दर्शन नहीं होते हैं। इस नाम का यह भाव है।

नन्वेन्द्रियाद्यविषयत्वे भक्ताः कथं पश्यन्तीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

यहां ऐसी शंका होती है कि आप इन्द्रियों से पर हैं, इसीलिए इन्द्रियां आपको नहीं देख सकती है। तो फिर भक्तों की इंद्रियां आपको कैसे देख सकती है ? यहां आपका दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

भगवान किसे प्राप्त होते हैं इस संबंध में उपनिषद कहते हैं कि 'परमात्मा प्रवचनों के द्वारा, ध्यान के द्वारा अथवा किसी अन्य साधन के द्वारा मिल नहीं सकता है, परन्तु परमात्मा स्वयं ही जीव को मिलने की इच्छा करे तो ही उसे मिल सकते हैं। श्रीगुसांईजी भी पूर्णपुरुषोत्तम होने से यह सिद्धांत आपके लिए भी इतना ही सत्य है। भक्त के बिना अन्य लोगों को अत्यन्त कष्ट करने से भी आपके दर्शन नहीं हो सकते हैं। आपकी इच्छा के बिना आपके दर्शन करने में कोई समर्थ नहीं होता। अनेक साधन करने पर भी साधनबल से आपके दर्शन नहीं हो सकते। आपके दर्शन तो केवल कृपाबल से ही हो सकते हैं।

श्रीगुसांईजी ने यह सिद्धांत राजा अकबर को समझाया था। अकबर का प्रश्न था कि 'भगवान किस प्रकार से मिलते हैं?' तब श्रीगुसांईजी ने आज्ञा की कि : 'इस प्रश्न का उत्तर चाहिये तो अकबर एक बार गोकुल आए, वहीं उसे जवाब मिलेगा।' नियत समय पर अकबर गोकुल आये। तब श्रीगुसांईजी ने अकबर के प्रश्न का जवाब देते हुए कहा, 'जिस प्रकार से आप मुझे मिले, उसी प्रकार से भगवान से मिला जा सकता है।'

अकबर को कुछ समझ में नहीं आया, तब स्पष्टता करते हुए उन्होंने कहा, 'राजा जब प्रजाजन को मिलने की इच्छा करे तो दोनों की मुलाकात तुरंत ही शक्य होती है, परन्तु यदि कोई प्रजाजन राजा से मिलने की इच्छा करे तो अनेक बार अनेक प्रयत्न करने पर भी यह मुलाकात संभव नहीं है। इस प्रकार भगवान जिस जीव को मिलने की इच्छा करते हैं उसे तुरंत ही दर्शन दे देते हैं, परन्तु यदि कोई जीव भगवान को मिलने की इच्छा करे तो चाहे कितने भी साधन करे तो भी उसे इष्ट परिणाम प्राप्त नहीं होता है।'

इस प्रकार से श्रीगुसांईजी के दर्शन भी कृपासाध्य हैं, साधनसाध्य नहीं हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी दक्षिण के प्रदेश में पधारे थे। वहां एक बार आप भगवद् वार्ता कर रहे थे। उसे किसी लड़के ने सुना आपने आज्ञा की कि, 'श्रीठाकुरजी ब्रज में नित्य लीला करते हैं। आप श्री नटवरभेख धारण करके ग्वाल बालों के साथ गऊचारण करने पधारते हैं एवं वहां मुरली भी बजाते हैं।'

यह सुनकर उस लड़के ने पूछा, 'कृपानाथ ! क्या यह लीला आज भी प्रभु करते हैं ?'

आपने आज्ञा की, 'हाँ, प्रभु की लीला नित्य है।'

आपके वचन सुनकर उस लड़के को प्रभु की लीला के दर्शन करने की उत्कंठा जगी। वह अपने माता-पिता को बिना कहे ही ब्रज में आया। वह श्रीगिरिराजजी की दंडवती शिला के पास आया एवं दर्शन की आतुरता से वहीं बैठा। संध्या का समय था। गौचारण करके प्रभु को वन में से व्रज में पधारने का समय था।

परन्तु उसे दर्शन नहीं हुए। तापक्लेश के विरह के बिना नित्य लीला के दर्शन होते नहीं हैं, क्योंकि श्रीठाकोरजी और श्रीगुसांईजी का दुर्दश्य है। उसने तीन दिन और तीन रात खान-पान कुछ नहीं किया और वहीं बैठा रहा।

श्रीगुसांईजी पुरुषोत्तम हैं, इसीलिए वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। उनके वचन सदा सत्य हैं। इसलिए उस लड़के ने आपके वचनों में अचल श्रद्धा रखी थी। उसने विचार किया, 'मेरा यह देह और किसी कार्य के लिए नहीं है, यदि नित्यलीला के दर्शन न हों तो देह का त्याग करना चाहिए।' उसका महान विरह क्लेश श्रीनाथजी सहन नहीं कर सके और आपने कृपा करके गौचारणलीला के दर्शन उस लड़के को करवाए। श्रीगुसांईजी ने श्रीमुख से जैसी कथा कही थी, वैसे ही उसे दर्शन हुए। सोने व चांदी के सींग वाली, बड़े-बड़े नेत्रों वाली, मनोहर गायों के दर्शन उसे हुए। गायों के यूथ के यूथ आ रहे हैं। वे रंभाती-रंभाती ब्रज तरफ जा रही हैं। उनके खुर की रेणु से सारा आकाश छा गया है। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल चल रहे हैं। उनके साथ में श्रीबलदेवजी हैं। श्रीठाकोरजी श्रीदामा सखा के कंधे पर श्रीहस्त रखकर पधार

रहे हैं। मस्तक पर मोरमुकुट धारण किए हैं। कान में अनेक प्रकार के फूलों के गुच्छ हैं। पीताम्बर धारण किया है। वनमाला का श्रृंगार किया है। अलकावली पर गौरज छा गई है। उनके श्रीहस्त में मुरली है एवं वे मंद-मंद हास्य कर रहे हैं।

उस लड़के को इस प्रकार के दर्शन हुए। श्रीठाकुरजी ने उस लड़के को श्रीहस्त से खींचकर अपनी मंडली में लिया तथा नंदालय की तरफ चले। अपने साथ उसे तीन दिन तक रखा एवं उसे अनेक प्रकार का अलौकिक सुख दिया। इस प्रकार श्रीगुसांईजी की कृपा से ही प्रभु जीव को दुर्दृश्य हैं। वे इस लड़के को संदृश्य हो गए।

बैठक–चरित्र–संगति :

कामवन में श्रीकुंड पर श्रीमहाप्रभुजी के एक सेवक मधुसूदनदास रहते थे। उनके मन में ऐसा मनोरथ था कि जब मुझे श्रीमहाप्रभुजी साक्षात् दर्शन देंगे, तब ही मैं यहां से उठूंगा। वे प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुजी की सेवा करते तथा श्री सर्वोत्तमजी का जप करते। ऐसा करते-करते एक मास व्यतीत हो गया।

एक बार श्रीगुसांईजी वहां पधारे एवं वहीं पर तीन दिनों तक बिराजे। उसके बाद आप श्रीगोकुल पधारे। उसके बाद दूसरे छह महीने व्यतीत हो गये। तब एक दिन श्रीमहाप्रभुजी ने अपने अलौकिक स्वरूप में मधुसूदनदास को दर्शन देकर आज्ञा की, 'मधुसूदनदास! श्रीगुसांईजी ने यहां पधारकर तुझे दर्शन दिए, परन्तु तेने मुझमें एवं श्रीगुसांईजी में भेदबुद्धि रखी, यह अच्छा नहीं किया। इसीलिए तुझे इतना विलंब हुआ है। तुझे जब भी विरह हो तब मेरे वंश के बालक जहां कहीं बिराजते हों वहीं जाकर उनके दर्शन करना।'

इस चरित्र के द्वारा हमको यही सीखने को मिलता है कि श्रीमधुसूदनदास जैसे श्रीमहाप्रभुजी के कृपापात्र सेवक को भी श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी के अलौकिक स्वरूप के दर्शन नहीं हुए । इसलिए श्रीवल्लभ-वंश में कभी भी भेदबुद्धि नहीं रखनी चाहिये।

कीर्तन--संगति :

(राग-केदारो)

फिर व्रज बसो श्रीविट्ठलेश

कृपा कर दरसन दिखावो वह लीला वह वेश ॥१॥

गाय बछरा लाय गोकुल गाम करो प्रवेश ।

नंदनंदन आय प्रकटे अति उदार नरेश ॥२॥

भक्तिमारग को प्रकट करि जु कियो जनन उपदेश ।

रच्यो रासविलास सुखनिधि गिरि गोवरधनेश ॥३॥

भक्तसंदृश्याय नमः

(९) भक्तसंदृश्यः = भक्तों को आपके दर्शन सरलता से होते हैं = *भक्तसंदृश्याय नमः ।*

विवरण :

भक्तैः सम्यगनायासेनैव द्रष्टुं योग्य इत्यर्थः ।

भक्त बिना किसी प्रयास के आपके दर्शन कर सकते हैं।

दर्शनस्य स्वेच्छाधीनत्वात्तेषां तदानुकूल्यादुचितमेव तदिति भावः ।

आपके दर्शन भक्तों की इच्छा के आधीन है, क्योंकि भक्तों के लिए आपकी इच्छा हमेशा अनुकूल ही होती है । इसलिए उनको आपके दर्शन सरलता से होते हैं ।

ननु दर्शनस्य करणसापेक्षत्वादिन्द्रियाणां तथात्वाभावात्कथं तदित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

दर्शन इन्द्रियों से होते हैं, परन्तु इन्द्रियां अलौकिक स्वरूप का दर्शन करने में असमर्थ है तो लौकिक इन्द्रियों से अलौकिक स्वरूप का दर्शन कैसे हो सकता है ? ऐसी शंका के जवाब में वे दूसरा नाम कहते हैं कि :

भावार्थ :

२५२ वैष्णवों की सभी वार्ताएं हमको एक बात बहुत स्पष्ट रूप से समझाती है कि जो-जो दैवी जीव किसी भी प्रसंग पर सबसे पहले आपके सम्मुख आए उन सभी को आपने अपने अलौकिक कोटिकंदर्पलावण्य स्वरूप के दर्शन करवाए हैं। उन सभी जीवों को खात्री हो गई है कि आप साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम हैं। आप आनंद मात्र करपादमुखोदरादि हैं। आप ही श्रीगोवर्धनधर हैं। ऐसे दर्शन करके उन जीवों ने तुरंत आपकी शरण का स्वीकार किया है।

आप भक्त पक्षपाती हैं। भक्तों का मन खुद में लगा रहे इसलिए आप हमेशा भक्तों की इच्छा के आधीन बनकर के, खुद के अलौकिक स्वरूप में भक्तों को दर्शन देते हैं। इसलिए दूसरों के लिए जब आपके दर्शन दुर्लभ हैं, तब भक्तों के लिए आपके दर्शन अत्यंत सुलभ हैं।

आपने श्री चाचा हरिवंशजी को भी आज्ञा की थी कि, 'चाचाजी, हम आपके यहां आने के लिए ही भूतल पर आए हैं। इसलिए आप किसी प्रकार की चिंता मत कीजियेगा। इस प्रकार आप भक्तों को दर्शन देकर उनका उद्धार करने के लिए ही प्रकट हुए हैं।' इसीलिए भक्त संदृश्य हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के सेवक लक्ष्मीदास श्रीगुसांईजी के दर्शन करने आए थे। तब श्रीगुसांईजी ने उन्हें साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूप में दर्शन दिए थे।

एक बार चाचा हरिवंशजी मथुरा से आगरा गये। देर रात हो जाने के कारण एक चौंतरे पर चार वैष्णवों के साथ आपने मुकाम किया। गर्मी के दिन थे। साथ के चारों वैष्णव सो गए, परन्तु चाचाजी जगते रहे। उस चौंतरे पर देवी का मंदिर था। देवी ने अपना भाग्य मानकर अपने दूसरे चार शक्ति-स्वरूप प्रकट किए। पांचों स्वरूपों ने पांचों वैष्णवों को पंखा किया। चाचाजी ने देवी से पूछा, 'तुम कौन हो ?' देवी ने कहा, 'मैं एक देवी हूं। बहुत समय से मेरे मन में एक मनोरथ था कि एक बार मुझे श्रीगुसांईजी के सेवक मिलें, परन्तु श्रीगुसांईजी की सेवा में मेरा अधिकार नहीं है, तथापि आज श्रीगुसांईजी के अनन्य भक्तों की सेवा मिलने से मेरा जन्म सफल हो गया।'

'श्रीवल्लभाख्यान' में श्रीगोपालदासभाई गाते हैं कि ''विबुध वाञ्छे वास वसुमति ऊपरे श्रीवल्लभकुंवरनी टहेल करवा''

आगरा के एक ब्राह्मण को इन देवी का साक्षात्कार था। देवी ने यह हकीकत उन ब्राह्मण को कही। देवी ने कहा, 'इस युग में श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी ने प्रकट होकर पुष्टिमार्ग प्रकट किया है। दोनों ही साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम हैं। मैं उनके दास की भी दासी बनूं ऐसी अभिलाषा रखती हूं। इसलिए तुम दोनों पति-पत्नी श्रीगुसांईजी की शरण में जाओ।

वह ब्राह्मण एवं ब्राह्मणी अपने पास की श्रीशालिगराम एवं

देवी की मूर्ति लेकर श्रीगुसांईजी के पास आए। सारी हकीकत उनसे कही एवं सेवक करने के लिए उन्हें निवेदन किया। श्रीगुसांईजी ने उन्हें ब्रह्मसंबंध करवाया। श्रीगुसांईजी ने शालिगरामजी को स्पर्श किया और स्पर्श करते ही वे श्रीमदनमोहनजी बन गये एवं देवी को स्पर्श करते ही वे श्रीस्वामिनीजी का स्वरूप बन गई।

ऐसे अलौकिक स्वरूप के दर्शन करके चाचाजी ने पूछा 'ऐसा कैसे हुआ ?' आपने आज्ञा की, 'श्रीशालिगरामजी' अक्षरब्रह्म का स्वरूप हैं। अक्षरब्रह्म लोक-वेद प्रसिद्ध पुरुषोत्तम है। लोक-वेद पुरुषोत्तम में ही लोकवेदातीत पुष्टि पुरुषोत्तम बिराजते हैं। श्रीगुसांईजी के संबंध से वह स्वरूप बाहर प्रकट हुआ। शक्तिस्वरूपा देवी श्रीस्वामिनीजी का अंश है। इसीलिए श्रीगुसांईजी के स्पर्श से देवी की मूर्ति में से श्रीस्वामिनीजी प्रकट हुए। इस प्रकार श्रीगुसांईजी भक्तसंदृश्य स्वइच्छा से निज भक्तों को ऐसे अलौकिक स्वरूप के दर्शन देते हैं।

बैठक–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी व्रज में प्रेमसरोवर पधारे थे। आपने श्री गोविंदस्वामी को यहीं पर युगल स्वरूप के साक्षात् दर्शन करवाए थे।

इसी प्रकार से श्रीसंकेतवन में अपने कृपापात्र सेवक, कपडवंज के गुजराती ब्रह्मण रेंडा को दिव्यचक्षु देकर, युगल स्वरूप के विवाहखेल के अलौकिक दर्शन करवाए थे।

कोटवन में श्रीगुसांईजी ने श्रीगोविंदस्वामी को युगलस्वरूप की विरहलीला के दर्शन करवाये थे।

बेलवन में भगवानदास नाम के सेवक को अलौकिक रास के दर्शन करवाए थे।

इस प्रकार आपने अनेक भक्तों को कृपा करके अलौकिक लीला के दर्शन करवाए थे।

कीर्तन–संगति :

(राग-कान्हरो)

श्रीविट्ठलको जनम भयो सुन व्रज जन अति सुख पाये री।
नानाविध सिंगार साजके अति सुखमें उठ धाये री॥१॥
निरख मुखारविन्दकी शोभा कोटिक काम लजायेरी।
नयन चकोर पीवत रस अमृत तनकी तपन मिटाये री॥२॥
सुरनर-मुनिजन थके विमानन कुसुमन वृष्टि कराये री।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्तन हित भुवि आये री॥३॥

भक्तिगम्याय नमः

(१०) भक्तिगम्यः=आप भक्ति से गम्य हैं = भक्तिगम्याय नमः।

विवरण :

भक्त्यैव गम्यो ज्ञातुं दृष्टुं च योग्य इत्यर्थः।

आप भक्ति से गम्य हैं। भक्ति के द्वारा ही आपको देखा जा सकता है और जाना जा सकता है।

"न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषे' तिवचनादिन्द्रियावेद्यत्वम्। "भक्त्या मामभिजानाति" "यावन्यश्चास्मि तत्त्वतः" इति वचनाद् भक्त्यैकसमधिगम्यत्वं युक्तमेवेति भावः।

भगवान ने आज्ञा की कि, 'तू मुझे इन चक्षुओं से नहीं देख सकता है। भगवान के दर्शन दिव्य दृष्टि से ही हो सकते हैं। भक्ति

के द्वारा आप दिव्य दृष्टि का दान करें तो ही आप को देखा जा सकता है और जाना जा सकता है। भक्ति के द्वारा मुझे लोग जान सकते हैं। मैं जैसा ओर जितना हूं, वैसा और उतना मुझे यथार्थ रीति से भक्ति के द्वारा जानते हैं, इसीलिए आप भक्तिगम्य हैं।

ननु यथा चक्षुरादीनां कालवशात्तिमिरादिकृनप्रतिबन्धेनाकारणत्वं तथा भक्तेरपिकालादिकृतप्रतिबन्धेन तथात्वमस्तित्वमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आंख कालाधीन होने से दर्शन में आंख को अंधकार इत्यादि का प्रतिबंध बाधक होता है। उसी प्रकार भक्त को कालादि का प्रतिबंध यदि बाधक बने तो भक्त किस प्रकार दर्शन करे ? इस शंका के समाधान में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

भगवान स्वतंत्र हैं। वे सर्वतंत्र स्वतंत्र भी हैं। समग्र जगत के कर्ता एवं कारयिता होने पर भी भगवान भक्ति के अधीन हैं एवं भक्तों के भी अधीन हैं। भक्त के अनेक प्रकार शास्त्रों में बतलाये गये हैं। उनमें सर्वश्रेठ प्रकार है निर्गुण भक्ति का। निर्गुण भक्ति को स्वतंत्र भक्ति अथवा अहैतुक भक्ति, निष्काम भक्ति या प्रेमलक्षणा भक्ति भी कहा जाता है। निर्गुण भक्ति शुद्ध भक्ति है। उसमें केवल भगवद् सुख का ही विचार समाया हुआ होता है। जीव का खुद का कोई भी हेतु नहीं होता है। उसमें संपूर्ण रीति से निरपेक्ष भाव होता है। सारस्वत कल्प में व्रज के गोपीजनों ने भगवान की ऐसी ही शुद्ध भक्ति की थी। इसलिए भगवान उनकी शुद्ध भक्ति के अधीन होकर महारास में उनको आज्ञा करते हैं कि :

नवास्येहं निरवद्य समुजां स्वासाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।

भगवान ने ब्रजभक्तों के पास अपनी अनीश्वरता छुपाई है।

ऐसी शुद्ध भक्ति से अभी भी भक्तों को प्रभु दर्शन देते हैं एवं उन्हें प्राप्त होते हैं। इसलिए श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी ने भगवद् प्राप्ति के लिये अन्य सभी साधनों को छोड़कर केवल निर्गुण भक्ति करने की ही आज्ञा की है।

जिस प्रकार प्रभु भक्ति द्वारा प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी जीवों को भक्ति द्वारा ही अपने अलौकिक स्वरूप के दर्शन करवाते हैं। स्वरूपानंद का आनंद देते हैं, इसीलिए गोविंदस्वामी ने गाया है किः

प्रीतम प्रीत ही ते जाय पैये,
यद्यपि रूप गुण शील सुघरता इन बातन न रीझैये।
सतकुल जन्म शुभ लच्छन वेद पुराण पढ़ैये,
गोविन्द प्रभु बिना स्नेह सुवालो रसना कहा जु नचैये।

वार्ता–चरित्र–संगतिः

एक बार श्रीगुसांईजी सहजादपुर नाम के गांव में पधारे थे। वहां पर वेणीदास नाम के एक छीपा रहते थे। वेणीदास श्रीगुसांईजी की शरण में आये थे। उन्होंने अपने पास से उत्तम वस्त्रों के दो थान श्रीगुसांईजी को भेंट किये। तब श्रीगुसांईजी ने उन वस्त्रों की तथा वेणीदास के सरल स्वभाव की अत्यंत प्रशंसा की, जिससे वेणीदास बहुत रोमांचित हो गये। उनके सरल हृदय की ऐसी प्रेमार्द्र दशा को देखकर श्रीगुसांईजी बहुत दिनों तक सहजादपुर में ही बिराजे।

श्रीगुसांईजी के साथ वेणीदास गोकुल आये। वे श्री गिरिराज गए, वहां श्री गोवर्धननाथजी के दर्शन किये। दर्शन करते ही वे देहानुसंधान भूल गये और मंदिर में मूच्छविश हो गये। श्रीगुसांईजी ने उनका नाम लिया। नाम लेते ही वे सचेत हो गये एवं विनती करी, 'मुझे इस आनंदमय स्थिति से बाहर क्यों निकाला ?' आपने आज्ञा की, 'अभी तुमको कई कार्य करने हैं।'

वेणीदास ने अपने देश में वापस जाने की आज्ञा मांगी। वेणीदास ने विनती करी, ''मेरे घर में श्रीठाकुरजी विराजते हैं। वे मुझे श्रीनाथजी के स्वरूप में दर्शन दें। ऐसी कृपा करो।' तब आपने आज्ञा की, 'श्रीठाकोरजी पुष्टिमार्गीय जीवों के सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं, तुम्हारा मनोरथ भी पूर्ण करेंगे।'

सहजादपुर में वेणीदास के माथे बिराजने वाले श्रीठाकोरजी उन्हें श्रीनाथजी के रूप में दर्शन देते थे, वे जैसा मनोरथ करते थे वैसे ही उनको दर्शन होते थे। इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने कृपा करी, वेणीदास को भक्ति का दान किया, इसलिए आप भक्तिगम्य हैं।

२५२ वैष्णवन की वार्ता में वेश्या की लड़की की वार्ता आती है। उसमें भी श्रीगुसांईजी के अलौकिक प्रेमबल के प्रताप का ही निरूपण है। इसीलिए कहा गया है कि, *'पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।'*

बैठक–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी जतिपुरा में, श्रीमथुरेशजी के मंदिर में अपनी बैठक में बिराज रहे थे। तब श्रीगोकुलनाथजी ने विनती करी, 'काकाजी! श्रीमहाप्रभुजी ने सवा सेर सखड़ी का अन्नकूट

किया था, यह बात सच्ची है ?' आपने आज्ञा की, 'हाँ, श्रीमहाप्रभुजी की लीला नित्य और अखंड है।' ऐसा कहकर आपने श्रीगोकुलजी एवं श्रीशोभाबेटीजी को श्रीमहाप्रभुजी ने आरोगाये हुए सवा सेर सखड़ी के अन्नकूट के अलौकिक दर्शन वहीं करवाये थे।

इस प्रकार आपने अपना भक्तिगम्य स्वरूप बैठक चरित्र में प्रकट किया है।

कीर्तन–संगति :

(राग-सारंग)

श्रीविठ्ठल चरणकमल पावन त्रैलोककरन दरस
परस सुन्दरवर वार वार वंदे,
समरथ गिरिराजधरन लीला निज प्रकटकरन
संतन हित मनुष्य तनु-वृन्दावन चंदे ॥१॥
चरनोदक लेत प्रेत तत छिनतें मुक्त भये
करुनामय नाथ सदा आनंदनिधि कंदे,
वारने भगवानदास विहरतहूं रास जस
जय जय बोल बोल गावत श्रुति-छंदे ॥२॥

भयापहाय नमः

(११) भयापहः =आप भक्तों के कालादिक सभी भयों को दूर करते हैं। भयापहाय नमः।

विवरण :

भयं कालादिकृतं सर्वमेवापहरन्ति दूरीकरोतीत्यर्थः भक्ता-नामिति शेषः।

भक्तों के कालादि सभी भयों को आप दूर करते हैं।

चक्षुरादीनां कालाद्यधीनत्वात् तत्कृतः प्रतिबन्धः सम्भवति। भक्तेस्तु 'मर्त्योर्मृत्युव्यालभीत' (१०-३-२७) इत्यादि वाक्यै-स्तदनधीनत्वात् । तत्कृतभयाभावो युक्त ऐवेति भावः ।

यद्यपि चक्षु इत्यादि काल के अधीन हैं। इसलिए काल उसे प्रतिबंधित कर सकता है, परन्तु 'मृत्युरूपी सर्प से जिसने भय पाया है वह यदि भगवान की शरण में जाए तो उस भय को पार कर जाए' इत्यादि वाक्यों से काल भगवान के आधीन है, इसलिए काल भक्त को भयभीत नहीं कर सकता है। भक्त को तो यथार्थ दर्शन होते हैं।

ननु बहिर्भयं ज्ञात्वा दूरीकरोति युक्तं, परमन्तर्भयं ज्ञातुम-शक्यमिति कथं तन्निवृत्तिरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

बाहर का भय तो दूर किया जा सकता है, क्योंकि जो भय हुआ है उसे जाना जा सकता है, परन्तु अंदर का भय दूसरे से कैसे समझा जा सकता है ? उस भय को इस रीति से दूर किया जा सकता है, किस रीति से दूर किया जा सकता है। इसके जवाब में दूसरा नाम कहते हैं कि :

भावार्थ :

श्रीमद् भागवत के एकादश स्कंध में भगवान उद्धवजी को आज्ञा करते हैं कि :

मामेकं शरणमात्मानं सर्वदेहिनां याहि।
सर्वात्मभावेन यास्त्यस्य ह्यकुतो भयम्॥

सर्वात्मभाव से एकमात्र भगवान का ही शरण स्वीकार करके भक्त भगवान की कृपा से अभय बन जाता है। भगवान उसे अभय बनाते हैं। सामान्य रीति से मनुष्य को काल का भय

विशेष लगता है। काल अत्यन्त शक्तिशाली है, क्योंकि ब्रह्माजी, शिवजी इत्यादि सभी काल के अधीन हैं, जबकि पुष्टिभक्त काल से डरते नहीं है, वे काल के अधीन नहीं हैं। क्योंकि वे काल के भी काल ऐसे भगवान के चरणारविंद में दृढ़ और अनन्य आश्रय रखकर रहते हैं।

'श्रीवल्लभाख्यान' में श्रीगोपालदासभाई गाते हैं कि :

तेने काल कर्म नव बांधे रे,
यम ते शिर धनुष न सांधे रे।
एवो मारग श्रीवल्लभवरनो रे,
ज्यां नहीं प्रवेश विधिहरनो रे।

इस प्रकार अनन्य शरणागत भक्तों को किसी का डर नहीं होता है। भगवान उनके भय को दूर कर देते हैं, इसलिए श्रीगुसांईजी को 'भयापहः' कहा है। श्रीगुसांईजी की शरण में जाने वाले सभी जीव भय से मुक्त होते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक छोटे से गाँव में एक पटेल वैष्णव रहते थे। उस गाँव में कोई अन्य वैष्णव नहीं था। इसलिए यह पटेल वैष्णव शाम को अपने घर की सेवा पहुंचकर निकट के दूसरे गाँव में सत्संग के लिए जाते थे।

एक बार एकादशी का दिन था। अंधेरी रात थी। बरसात और तूफान भी था। ऐसे में वे रास्ता भूल गए और किसी दूसरे रास्ते पर चले गए। वहाँ रास्ते में तालाब के पास एक वृक्ष पर एक ब्रह्म राक्षस रहता था। उसने नीचे आकर इन वैष्णव से कहा, "मैं

बहुत दिनों से भूखा हूँ, आज मैं तुझे खा जाऊँगा।'' वैष्णव ने कहा, 'आज एकादशी का जागरण है, वहां कथा-कीर्तन करके मैं इसी रास्ते से वापस लौटूंगा तब मुझे खा जाना।' प्रेत ने कहा, 'एक बार काल के मुँह में से छूटने के बाद फिर तुम वापस आओगे इसका मुझे क्या विश्वास ?' वैष्णव ने कहा, 'मैं तुझे वचन देता हूँ मेरे शब्दों पर विश्वास रख।'

भगवद् भक्त सत्यप्रतिज्ञ होते हैं। प्रेत को वैष्णव के वचन का विश्वास हुआ।

दूसरे दिन यह वैष्णव पूरी रात कथा-कीर्तन करके घर जाने के लिए वापस लौटते हुए उसी तालाब के पास आए। उन्होंने ब्रह्म राक्षस को जोर से चिल्लाकर बुलाया, 'मैं आया हूँ, तुम मुझे खा लो।' उन्होंने ऐसा पाँच बार कहा, तब ब्रह्म राक्षस ने विचार किया, 'यह भगवान का सच्चा भक्त है, उसे काल का भी डर नहीं है, इसलिए मैं उसे खाऊंगा नहीं।' ब्रह्म राक्षस ने वैष्णव से कहा, ' वैष्णव ! मेरा उद्धार हो इसके लिए तुम मुझे तुम्हारे सत्संग का एक रात का फल दे दो।' वैष्णव ने यह देने के लिए मना किया। ब्रह्म राक्षस की बहुत विनती के बाद वैष्णव को दया आ गई। स्वयं कीर्तन करते हुए जो ताल दिए थे उनमें से पांच ताल का फल उन्होंने उसे दे दिया। इससे ब्रह्म राक्षस प्रेत योनी से मुक्त हुआ और दिव्य देह धारण करके स्वर्ग में चला गया।

श्रीगुसांईजी ने अपने भक्तों में ऐसा सामर्थ्य रखा है, जिससे भक्तों को काल इत्यादि किसी का भी भय नहीं लगता है। इसलिए आपका नाम है 'भयापहः'।

कीर्तन–संगति :

(राग-पूर्वी)

तमारे चरनकमलके सरने।

राखो सदा सर्वदा जनको विट्ठलेश गिरिधरन॥१॥

तुम बिन और नहीं अवलंबन भवसागर दुस्तरन।

भगवानदास जाय बलिहारी त्रिविध ताप उर हरन॥२॥

अनन्यभक्तहृदयो दीनानाथैकसंश्रयः।

राजीवलोचनो रासलीलारसमहोदधिः॥५॥

शब्दार्थ : अनन्यभक्तहृदयः =अनन्य भक्त आपका हृदय हैं, *दीनानाथैकसंश्रयः*=दीनों के नाथ (दीनानाथ) ही, अनन्य भक्तों के एक मात्र आश्रय दाता हैं, *राजीवलोचनः*=कमल जैसे नेत्रों वाले, *रासलीलारसमहोदधिः*= लीलारस के महासमुद्र रूप में हैं।

अनन्यभक्तहृदयाय नमः *(१२) अनन्यभक्तहृदयः* = अनन्य भक्त ही आपका हृदय हैं = *अनन्य भक्तहृदयाय नमः।*

विवरण :

न विद्यते तस्मादन्यो येषां तादृशा भक्तास्त एव हृदयं यस्य सः तथा।

भगवान के बिना अन्य किसी का भी भजन न करने वाले ऐसे अनन्य भक्त ही आपका हृदय हैं। आपका अभिप्राय भक्त ही समझते हैं।

न हि स्वहृदयगतमभिप्रायं कोपि न जानातीति वक्तुं शक्यमतः 'साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्'मिति वचनात्तेषां हृदयरूपत्वात्तद्गतं सर्वमेव ज्ञायत इति भावः।

'साधुपुरुष ही मेरा हृदय हैं और साधुपुरुषों का हृदय मैं हूँ।' भगवान की यह आज्ञा सूचित करती है कि, आपके हृदयरूपी भगवदीय आपके आशय को समझते हैं।

ननु स्वयमीश्वरः कथं जीवैः सह समत्वमंगीकरोतीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

आप तो ईश्वर हैं, फिर भी जीवों के साथ में ऐसी समानता कैसे रखते होंगे ? ऐसी शंका होने पर आपका दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

भगवान ने आज्ञा की है कि, 'भक्त मेरा हृदय है और मैं भक्तों का हृदय हूँ। हृदय ही अंतर की बात को समझ सकता है एवं अनुभव कर सकता है।' इसलिए भगवान के हृदय का आशय भगवान के भक्त ही समझ सकते हैं, अन्य कोई नहीं समझ सकता है। इसी प्रकार भक्तों के हृदय के मनोरथ प्रभु जानते हैं एवं प्रभु उन मनोरथों को पूर्ण भी करते हैं। हृदय के ऐक्य के द्वारा भगवान एवं भक्त की आत्मीयता के हमको दर्शन होते हैं, इसलिए वह प्रभु पूरे समय प्रत्येक भक्त के हृदय में बिराजते हैं तथा लीलाविहार करते हैं। प्रत्येक भक्त का हृदय आपकी बैठक स्वरूप है। इसलिए श्री महाप्रभुजी के ८४ वैष्णव एवं ८४ बैठक के रूप में विराजमान है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के कृपापात्र सेवक श्री नागजीभाई भट्ट हो गए। उन्हें श्रीनाथजी की सेवा प्राप्त होने पर भी श्रीगुसांईजी के दर्शन की तीव्र इच्छा थी, इसलिए उन्होंने श्रीगुसांईजी को अड़ेल में

एक विनती पत्र लिखकर भेजा। उसमें लिखा, 'जल कमल का स्वाद लेने के लिए मैं भ्रमर रूप में आता था, परन्तु बाद में कनककमल मिलने से उसमें उलझ गया हूँ, परन्तु कनककमल में जल कमल का स्वाद नहीं आता है।' श्रीगुसांईजी नागजी भट्ट के हृदय की भावना को भली-भांति समझते थे, इसलिए इस पत्र को पढ़कर आप बहुत प्रसन्न हुए।

एक बार नागजी भट्ट गोकुल के लिए निकले। वे गोकुल पहुंचे उससे पहले श्रीगुसांईजी ने वैष्णवों को आज्ञा करी, 'मेरा नागजी अभी आना ही चाहिए।' इतने में नागजी भट्ट वहाँ पहुंचे और उन्होंने श्रीगुसांईजी को दंडवत् किया।

एक बार नागजी भट्ट अहमदाबाद से दो सौ रुपये के वस्त्र लेकर गोकुल आने के लिए निकले। तब भी आपश्री ने इसी प्रकार से आज्ञा की थी। आप स्नान करके तिलकमुद्रा धारण कर रहे थे, उसी समय नागजी भट्ट वहाँ आ पहुंचे।

ऐसे आप भक्तों के हृदय हैं एवं भक्त आपका हृदय है। इसलिए भक्त एवं भगवान परस्पर के भाव से भावित हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-सारंग)

जयति रुक्मिनीनाथ पद्मावती प्राणपति विप्रकुलछत्र आनंदकारी।
दीप वल्लभवंश जगत निस्तारकरन कोटि उडुराज सम तापहारी॥१॥
जयति भक्तजन पति पतित पावनकरन कामीजन कामना पूरन चारी।
मुक्तिकांक्षीय जन भक्तिदायक प्रभु सकल सामर्थ्य गुनगनन भारी॥२॥
जयति तीरथ सकल फलित नामस्मरन मात्र वास व्रज नित्य गोकुलविहारी।
नंददासनि नाथ पिता गिरिधर आदि प्रकट अवतार गिरिराजधारी॥३॥

दीनानाथैकसंश्रयाय नमः (१३) *दीनानाथैकसंश्रयः*= दीनता वाले और अनन्य भक्तों के आप आश्रय भूत हैं = *दीनानाथैकसंश्रयाय नमः।*

विवरण :

दीना दैन्यं प्राप्त अनाथा इतराश्रयरहितास्तेषामेक एव संश्रय आश्रयभूत इत्यर्थः !

आप तो दीनता वाले और अन्याश्रय न करने वाले भक्तों के आश्रयभूत हैं। शरण में लेने के बाद आप अपने जीवों का त्याग नहीं ही करेंगे।

सम्यकत्वं पुनस्त्यागाकर्तृत्वम् । य आश्रयो भवति स आश्रित सह कृतोपि भवत्येव अन्यथाऽऽश्रयत्वमेव न स्यादिति भावः।

जो आश्रयरूप बने तथा उसे आश्रित के साथ रहना ही पड़े अन्यथा वह आश्रय हो ही नहीं सकता है। इसलिए आप आश्रय रूप बनकर आश्रित जीवों के साथ सहवास करते हैं, तथा उनके समान बनकर रहते हैं।

ननु तेषां भक्तत्वेपि संसारमध्यपातित्वात्तत्कृततापो दुर्निवार इत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

भक्त संसारी होने से उसके ताप को किस प्रकार दूर किया जाए? इस प्रश्न के प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी अपने शरणस्थ जीव के पास दो प्रकार की अपेक्षा रखते हैं। १. दीनता, २. अनन्याश्रय। आप जीव को शरण में लेते हैं, उसे अपना बनाते हैं तब आप प्रतिज्ञा करते हैं कि

'मैं तेरा त्याग कदापि नहीं करूंगा।'

लौकिक में भी जो आश्रय रूप बने उस आश्रित के साथ रहकर आश्रित के समस्त योगक्षेम का आश्रय वहन करता है और इसीलिए आश्रित को खुद के आश्रयदाता में अनन्यता एवं दृढ़ विश्वास प्रकट होता है एवं टिकता भी है। श्रीगुसांईजी भी अपने सेवकों के आश्रयदाता हैं। इसलिए अनन्यता और दृढ़ विश्वास के कारण आप हमेशा सेवकों के साथ बिराजते हैं एवं सेवकों के आश्रय रूप बनकर सेवकों को सर्व सुख का दान करते हैं। इसलिए श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं, 'अन्य संबंध की गंध भी भक्तिमार्ग में गला कटने के समान है।' जहाँ भक्ति हो वहां अन्याश्रय टिक ही नहीं सकता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के सेवक बलाई स्त्री पुरुष थे। वे अशुद्ध जाति के थे, परन्तु श्रीगुसांईजी ने उन पर कृपा की और उनको शरण में लिया तथा सेवा के लिए आपने अपने खुद के पादुकाजी उनके पास पधरा दिये। श्रीगुसांईजी ने उन को आज्ञा करी कि, 'जब भी तुम्हें मेरा विरह ताप हो तब तुम इस पादुकाजी का दर्शन करना, इससे तुम्हें मेरे दर्शन होंगे और मैं प्रतिदिन तुम्हें दर्शन दूंगा।'

इन दोनों स्त्री-पुरुषों को जब-जब श्रीगुसांईजी का विरह होता था, तब-तब मंदिर खोलकर वे दोनों श्रीपादुकाजी के दर्शन करते थे। वहाँ उन्हें गादी-तकिये पर विराजमान एवं ग्रंथ का अध्ययन करते हुए श्रीगुसांईजी के दर्शन होते थे। इतना ही नहीं श्रीगुसांईजी अपने श्रीमुख से कथा कहते थे एवं भक्त जन

ध्यानपूर्वक सुनते थे, इस प्रकार श्रीगुसांईजी अपने अनन्य आश्रित दीन भक्तों के एकमात्र आश्रय रूप बनकर के सदैव उनके पास ही रहते हैं। उनसे वे कभी दूर होते ही नहीं हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-नट)

हौं तो विट्ठलनाथ उपासी।
सदा सेऊं श्रीवल्लभनंदन कहा करूं जाय काशी ॥१॥
इनें छांड जो औरें ध्यावे सो कहिये असुरारी।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल बानी निगम प्रकाशी ॥२॥

राजीवलोचनाय नमः

(१४) राजीवलोचनः = आपके नेत्र कमल जैसे हैं = *राजीवलोचनाय नमः ।*

विवरणः

राजीवं कमलं तद्वत्तापापनोदके लोचने यस्य सः, तथा कृपा-लोकनमात्रेणैव तेषां त्रिविधमपि तत्तापं दूरीकरोतीति भावः ।

कमल के समान आपके नेत्र भक्तों का ताप दूर करने वाले हैं। आप कृपाकटाक्ष मात्र से ही भक्तों के त्रिविध ताप को दूर करते हैं।

ननु राजीवस्य जलस्थितस्यैव तापहारकत्वं सरसत्वात्तत उद्धृतस्य म्लानत्वेन नीरसत्वान्न तथात्वमिति तत्तुल्यत्वेन नेत्रयोरपि न सर्वदा तथा त्वमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

कमल जब तक जल में रहता है, तब तक हरा-भरा रहता है। तभी तक वह ठंडक देकर ताप को दूर करता है। जल में से

कमल को बाहर निकालने से वह मुरझा जाता है एवं ताप को हरण करने की क्षमता उसमें नहीं रहती। तो नेत्र कमल भी हमेशा ताप को हरण नहीं कर सकते ऐसी शंका होने पर दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ

श्री गोपालदास भाई 'वल्लभाख्यान' में श्रीगुसांईजी के कमलदललोचन के दर्शन करते थे, उसका वर्णन करते हुए वे गाते हैं कि,

कमललोचन करुणा भर्यां श्री विठ्ठल सुखनी राश रे रसना,
दीठडे ताप त्रिविध टले, स्मरणमात्र अघनाश रे रसना।

श्रीगुसांईजी का प्राकट्य हुआ। तब आपका श्रीअंग नव घनश्याम वर्णवाला था। आपके तेजस्वी भव्य ललाट में कस्तूरी का तिलक विराजमान था। आपके केश श्याम एवं भरावदार थे। आपके नेत्र कमल के समान दीर्घ, नुकीले एवं लालिमा से युक्त अनुराग से भरे हुए थे।

श्रीगुसांईजी के सेवक चतुर बिहारीजी हो गए। उन्हें श्रीगुसांईजी ने नाममंत्र का उपदेश दिया। तब उन्हें श्रीगुसांईजी के अलौकिक स्वरूप के दर्शन हुए। उसी समय उन्होंने नीचे लिखा हुआ कीर्तन गाया :

श्री विठ्ठल चरण शरण शुभ करन हरत,
दुःख सौभग वैभव विमल उद्योते।
सुधा समुद्र तरंग मंच छबि राजत,
नैन रसाल रसमसे चितवन हि सुहाते।

सामान्य रीति से कमल सरोवर में प्रकट होते हैं। इसलिए जल में से बाहर निकालते ही वे ताप के कारण सूख जाते हैं एवं मुरझा जाते हैं; नीरस हो जाते हैं; परन्तु अलौकिक रस के महान समुद्र रूप श्रीविठ्ठलेश प्रभु के नेत्र अलौकिक रस से भरे हुए हैं, इसलिए कभी भी नीरस नहीं होते हैं। भक्तों के आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक इन तीनों प्रकार के तापों को एक क्षण में ही कमल रूपी नेत्रों से दूर कर देते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

आगरा में माणकचंदजी एवं उनकी पत्नी रहते थे। एक बार श्रीगुसांईजी आगरा पधारे। तब उष्णकाल का समय था। आपने एक वैष्णव के यहां मुकाम किया था। शाम के समय उस वैष्णव की घर की अटारी में आप बिराजते थे। तब उनके सामने रहने वाली माणकचंद की पत्नी ने अपने घर की छत पर से अनायास ही आपके दर्शन करे। उनको श्रीगुसांईजी के साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम के रूप में दर्शन हुए। इसलिए वह अपना देहानुसंधान भूल गई। इसी प्रकार माणकचंदजी को भी श्रीगुसांईजी ने दर्शन दिए। श्रीगुसांईजी के कमल समान नेत्रों का यह चमत्कारिक प्रभाव है। *'नैन में झलकत गिरधारी, रासस्थली कृपन दरसानी।'*

कीर्तन–संगति :

(राग-हमीर)

श्रीवल्लभलाल के गुन गाऊं।

माधुरी माधुरी मूरति देख आनंदसदन मदनमोहन नैन चेन पाऊं॥१॥

वल्लभनंदन जगतवंदन सीतल चंदन तापहरन

येही महाप्रभु इष्ट करन चरनचित लाऊं।

छीत स्वामी गिरिधरन विट्ठल मन वच कर्म

परमधर्म येही मेरे लाडिलो लड़याऊं॥२॥

रासलीलारसमहोदधये नमः *(१५) रासलीलारसमहोदधिः* = आप रासलीला के रस के महान समुद्र हैं = *रासलीलारसमहोदधये नमः।*

विवरण :

रासलीला फलप्रकरणोक्ता तत्सम्बन्धी यो रसस्तस्य महोदधिर्महाजलधिरित्यर्थः। महत्वमपरिचित्वम्।

आप रासलीला के रस के महान समुद्र हैं। इस रस का परिमाण न किया जाए ऐसा महान है।

राजीवस्य सरस्येव जायमानत्वं, तत्तु कदाचिदातपादिना शुष्कमपि भवतीति तस्य म्लानत्वेनातथात्वम्। नेत्रयोस्तु पूर्वोक्तरसजलधिस्वरूपस्थितत्वेन सर्वथा सरसत्वमिति जलधित्वोक्त्या ज्ञाप्यत इति भावः।

कमल सरोवर में होते हैं फिर भी वे कभी-कभी ताप से सूख जाते हैं, मुरझा जाते हैं, इसलिए यह नीरस हो जाए यह संभव है, परन्तु रस के समुद्र रूप श्रीविट्ठलेश प्रभु के श्री अंग में रहने के कारण नेत्र सदा ही रस से भरपूर होने के कारण कदापि नीरस नहीं होते हैं। इसलिए भक्त के ताप को ये कमलनयन दूर करते हैं।

ननु जलधिरुद्वेलश्चेत्सर्वत्र व्याप्तो भवति। पूर्वोक्तरसजलधित्वादयमपि सर्वत्र तद्रसप्राकट्यं कुतो न करोतीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

अगर समुद्र उफनता है तो सभी स्थानों पर उसका रस व्याप्त हो जाता है, जबकि यह रास लीलारूपी रससमुद्र अपने रस को सर्वत्र क्यों प्रसारित नहीं करता है ? इसके जवाब में दूसरा नाम कहते है।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी साक्षात् रासलीला के रस सागर हैं आप हमेशा प्रभु के अलौकिक लीला रस में मग्न रहते हैं। आपको प्रभु के लीला रस के सिवाय अन्य किसी भी रस का आकर्षण नहीं है।

लौकिक कमल जल में होता है, तो वह हरा-भरा एवं ताजा और ठंडक देने वाला होता है, परन्तु वह जल में से बाहर आते ही सूख जाता है, जबकि श्रीगुसांईजी का मन, हृदय एवं इन्द्रियाँ सदा ही अलौकिक लीलारस सागर में डूबी हुई रहती हैं। यह रस सागर कभी सूखता नहीं है, इसलिए उसमें रहने वाले आप के नेत्रकमल भी कभी मुरझाते नहीं हैं। आप सदा ही प्रसन्न नेत्रकमल से भक्तों के ताप को दूर करते हैं। आपके नेत्रकमल रासलीला के रससागर से सदा ही भरपूर रहते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के कृपापात्र ब्राह्मण पति-पत्नी उनके सेवक थे। वे एक बार श्रीनाथजी के दर्शन करने गये। वहाँ उस स्त्री की विरहआर्ति श्रीनाथजी से सहन नहीं हुई, इसलिए श्रीनाथजी निज मंदिर में से बाहर पधारे एवं स्त्री का हाथ पकड़कर अपने साथ उसे निज मंदिर में ले गये।

श्रीगुसांईजी भी श्रीनाथजी का स्वरूप होने से आपने यह बात जानी एवं पत्नी के जाने से दुःखी होने वाले उस ब्राह्मण का

हाथ पकड़कर आप उसे चंद्र सरोवर परासोली की ओर ले गये। वहाँ किसी एकांत स्थल में आपने उस ब्राह्मण वैष्णव को प्रभु की अलौकिक लीला के दर्शन करवाए। वहाँ ब्रज भक्तों के समस्त यूथ बैठे हुए थे। उसमें श्रीस्वामिनीजी के पास उस ब्राह्मण की स्त्री अलौकिक सखी के रूप में खड़ी थी। उसे देखकर ब्राह्मण को भी प्रभु का अत्यन्त विरह हो गया और उस विरह के कारण उसके प्राण भी निकल गये। वे भी प्रभु की अलौकिक लीला को प्राप्त हो गए।

एक बार श्रीगुसांईजी ने चतुर्भुजदासजी को आज्ञा की, 'चतुभुर्जदासजी ! श्री ठाकोरजी की माला के लिए फूल बीन लाओ।' चतुर्भुजदास बड़ी जल्दी प्रातःकाल श्रीगिरिराजजी की कंदरा में फूल बीनने गये। वहाँ श्रीगुसांईजी की कृपा से उन्हें युगल स्वरूप के अलौकिक दर्शन हुए। दर्शन करके फिर चतुर्भुजदासजी ने एक कीर्तन गाया, *'गोवर्धन गिरि सघन कंदरा, रैन निवास कीयो प्रिय प्यारी !'*

इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने अपने अलौकिक नेत्रकटाक्ष से अनेक भक्तों को अलौकिक झांकी करवाई है तथा उनके त्रिविध तापों को दूर किया है।

बैठक–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी अड़ेल की बैठक में बाल स्वरूप से बालक्रीड़ा करते हैं। वहाँ श्री महादेवजी आपको खिलाने के लिए नित्य पधारते थे। महादेवजी शृंगीनाद करते थे और नृत्य करते थे। इससे श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न हुए। हावभाव एवं कृपाकटाक्ष के द्वारा वे महादेवजी को रसदान करते थे।

कीर्तन–संगति :

(राग-सारंग)

सदा व्रजहीमें करत विहार।
तबके गोप भेख वधु धार्यो अब द्विजवर अवतार ॥१॥
तब गोकुल में नंदसुवन अब वल्लभ-राजकुमार।
आपुन चरित्र सिखावत औरन निज मत सेवा सार ॥२॥
युगलरूप गिरिधरन श्रीविट्ठललीला इक अनुसार।
चत्रभुज प्रभु सुखशैलनिवासी भक्तन कृपा उदार ॥३॥

धर्मसेतुर्भक्तिसेतुः सुखसेव्यो व्रजेश्वरः।
भक्तशोकापहः शान्तः सर्वज्ञः सर्वकामदः ॥६॥

शब्दार्थ : धर्मसेतुः =आप धर्म के पालक हैं, *भक्तिसेतुः*= आप भक्ति के पालक हैं, *सुखसेव्यः*=आप को सुख हो इस प्रकार के भक्तों से सेवा करने योग्य हैं, *व्रजेश्वरः*=आप व्रज के ईश्वर हैं, *भक्तशोकापहः*=आप भक्तों के शोक को दूर करते हैं, *शान्तः*=आप शान्त हैं, *सर्वज्ञः*=वे सबको जानने वाले हैं, *सर्वकामदः*= आप भक्तों की सब इच्छाओं को पूरी करने वाले हैं।

धर्मसेतवे नमः

(१६) धर्मसेतुः = आप धर्म के पालक हैं = *धर्मसेतवे नमः ।*

विवरण :

धर्म इत्युपलक्षणम् । चतुर्णामपि पुरुषार्थानां सेतुः पालक इत्यर्थः । सर्वत्र भक्तिरसप्राकट्येनेतरपुरुषार्थानामप्रयोजकत्वा-त्तदकरण-मेवापद्यते । अतस्तत्पालकत्वान्न तथेति भावः ।

आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के पालक हैं। यदि सभी स्थानों पर भक्ति रस प्रकट हो जाए तो जगत के लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का आचरण

ही न करें, तो यह पुरुषार्थ भी निष्प्रयोजन हो जाएं। इसलिए आप सर्वत्र भक्तिरस को प्रकट नहीं करते हैं एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का रक्षण करते हैं।

ननु तर्हि भक्तेषु तेषामप्रयोजकत्वायकर्तव्यत्वाद् कथं तत्सेतुत्वमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

भक्तों को धर्म इत्यादि चार पुरुषार्थों की आवश्यकता न होने से उन्हें यह पुरुषार्थ क्यों करने चाहिए ? इस प्रश्न के जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी विविध प्रकार के जीवों का स्वरूप तथा उनके अधिकार भेद को जानते हैं। भूतल पर आप लीला में से अलग हुए और अपने अंतरंग जीवों को सनाथ करने के लिए प्रकट हुए तब भी आपने आचार्यस्वरूप धारण किया। इस कारण वेदप्रतिपादित धर्म के रक्षण की जवाबदारी भी आपने स्वीकार की है।

दैवी सृष्टि में पुष्टि और मर्यादा दोनों प्रकार के जीवों का समावेश हो जाता है। मर्यादा जीवों का अधिकार भक्ति में न होने से कर्म और उपासना में होने से उन जीवों के लिए आपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ बतलाये हैं। यज्ञयाग, श्राद्ध, संध्यावंदन इत्यादि वैदिक धर्म का आचरण करके आपने मर्यादा जीवों के लिए यह मार्ग प्रकट बताया है। इसलिए आप वेद धर्म के पालक हैं और चारों पुरुषार्थों का भी रक्षण करने वाले हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के कृपापात्र सेवक भक्तकवि नंददासजी हो गये।

उन्होंने समग्र श्रीमद् भागवत की रचना ब्रज भाषा में पद्यस्वरूप में की है। यह हकीकत श्रीगुसांईजी ने जानी मथुरा के पंडित श्रीगुसांईजी के पास आए और विनती की। 'महाराज ! अब लोग अपनी भाषा में रचे हुए भागवत को पढ़ेंगे, इसलिए अब हमारी आजीविका नहीं चलेगी।' श्रीगुसांईजी ने नंददासजी को बुलवाकर आज्ञा की, 'रास-पंचाध्यायी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में रचा हुआ भागवत श्रीयमुनाजी में पधरा दो।' नंददासजी ने श्रीगुसांईजी की आज्ञा के अनुसार ही कार्य किया।

श्रीनाथजी की सेवा करते हुए बंगालियों को जब श्रीनाथजी की सेवा में से दूर किया गया, तब उनकी विनती से श्रीगुसांईजी ने उन्हें श्रीगोपीनाथजी के सेव्य श्रीमदनमोहनजी का स्वरूप पधरा दिया था।

बैठक–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी अहमदाबाद से द्वारका पधारे। तब एक महीने तक आप द्वारकाधीश के मंदिर जगत देवालय के पास में आए। श्रीदाऊजी के मंदिर के पास बिराजे तथा श्रीद्वारकाधीश की सेवा के क्रम को व्यवस्थित करवा दिया।

कीर्तन–संगति :

(राग-देवगंधार)

अबके द्विजवर व्है सुख दीनो।
तबके नंद यसोदानंदन है हरि आनंद कीनो ॥१॥
तब कीनो गोपालरूप अब वेद स्मृति दृढ़ चीनो।
छीतस्वाती गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्ति सुधारस भीनो ॥२॥

भक्तिसेतवे नमः

(१७) भक्तिसेतुः = आप भक्ति के पालक हैं = *भक्तिसेतवे नमः ।*

विवरणः

पुष्टिमार्गीय फलरूपभक्तो सेतुः पालक इत्यर्थः । साधन-रूपायामितरपरित्यागाभावात् तस्मादुभयसेतुत्वोक्त्यास्मिन्न-मार्गे यमनुगृह्णाति तद्द्वारा तन्मार्गरक्षां करोतीति भावः ।

आप पुष्टिमार्गीय फलरूप भक्ति के सेतू अर्थात् पालक हैं। भक्ति के अनेक प्रकारों में मुख्य दो प्रकार हैं। उसमें साधनरूप भक्ति में इतर सब का त्याग करने की जरूरत नहीं है। इसलिए उसमें जीव सभी पुरुषार्थों को आचरण कर सकता है, जिन भक्तों का मर्यादा में अंगीकार है उन भक्तों के द्वारा चारों पुरुषार्थो की मर्यादा का रक्षण करते हैं। जिन भक्तों का पुष्टिमार्ग में अंगीकार है उनके लिए पुष्टिभक्तिरूपी मुख्य पुरुषार्थ के पालक बनते हैं।

ननु भक्तिमार्गे धर्मादिपरित्यागे को हेतुरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

भक्ति मार्ग में धर्म इत्यादि मर्यादा मार्गीय पुरुषार्थों के त्याग करने का क्या कारण है ? उसके जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

भक्ति के अनेक प्रकार में मुख्य दो प्रकार हैं। १. साधनरूपा भक्ति, २. फलरूपा भक्ति। साधन रूपा भक्ति में साधन महत्व गिने हैं। साधनों की आवश्यकता को स्वीकार किया है, इसलिए उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का आचरण

जरूरी है। ऐसी भक्ति करने वाले भक्तों का मर्यादा में अंगीकार होता है। ऐसे मर्यादा भक्त के द्वारा पुरुषार्थों की मर्यादा का रक्षण भी होता है।

फलरूपा भक्ति में प्रभु की कृपा के अलावा अन्य कोई भी साधन या पुरुषार्थ स्वीकार नहीं किय गया है, इसलिए जिन भक्तों का श्रीगुसांईजी पुष्टिमार्ग में अंगीकार करते हैं उनके पुष्टि भक्ति रूपी मुख्य पुरुषार्थ के आप पालक बनते हैं।

श्रीगुसांईजी के पंचम पुत्र श्रीरघुनाथजी के पुत्र श्री देवकीनंदनजी श्री प्रभुचरित्रचिंतामणि ग्रंथ में श्रीगुसांईजी के प्राकट्य के प्रसंग का निरूपण करते हुए इसी भावार्थ की आज्ञा करते हैं, जो नीचे लिखे अनुसार है :

अथ तदंतरे गोलोके पूर्णपुरुषोत्तमः भूयः चिन्तयामास। अहो मया साक्षादानंदमयं स्वास्यं प्रादुर्भावितमपि लोके ब्रह्मवाद एवं सततं दृढ़हृदयं बभूव। तदपि कलिनतया दुरुहार्थं बहुजं ब्रह्मवादमतं सूचितं न पुष्टिभक्तेराग्रहतः प्रपतिपूर्वकमिह कष्टौ श्रीकृष्णभजनमेव सकलपुरुषार्थ एवं सूपविष्ट इत्यतो ममैवं पुनराविर्भावो व्यापातित इति रूपान्तरेण प्रादुर्भविष्यामि भुवि इति विचार्य...

श्री गोपालदासभाई श्रीवल्लभाख्यान में गाते हैं कि 'मारी सेवा अने कथारस निरूपवा तनु धरिये' श्रीमहाप्रभुजी ने कथारस का विस्तार किया। जबकि श्रीगुसांईजी ने सेवारस का विस्तार किया। श्रीगुसांईजी ने दामोदरदास हरसानीजी के पास से रहस्ययुक्त स्वमार्गीय ज्ञान प्राप्त किया, जिसके परिणामस्वरूप आप स्वतंत्र विप्रयोग भक्तिरस को प्राप्त कर सके। आपके द्वारा यह भक्तिरस स्वतंत्र पुष्टिजीवों को भी प्राप्त होता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

महावन की एक क्षत्राणी आपकी सेवा में थी। आपके अत्यंत सुंदर स्वरूप के दर्शन कर के उनमें कामवासना जागृत हुई। उन्होंने अपनी उस भावना को श्रीगुसांईजी से निवेदन किया, 'आप पूर्ण पुरुषोत्तम होने से एक काल में अनेक लीलाएं करते हैं। आप भक्तों के पूर्णकाम होने से भक्तों के मनोरथ पूर्ण करते हैं। इस प्रकार भूतल में आचार्य स्वरूप में प्रकट होने से धर्मरक्षा के लिए आप ने उस क्षत्राणी की विनती को स्वीकार नहीं किया, परन्तु अत्यन्त आग्रह से आपने मानसिक संबंध करवाकर उसका मनोरथ पूर्ण किया। उसके फलस्वरूप उनके यहाँ गंगाबाई क्षत्राणी का प्राकट्य हुआ, जिन्होंने श्रीनाथजी को मेवाड़ में पधराते समय अप्रतिम सामर्थ्य दिखाया था।

इस प्रकार आप धर्म एवं भक्ति के सेतु रूप हैं।

कीर्तन–संगति

(राग-सारंग)

जयति रुक्मिणीनाथ पदमावती प्रानपति
विप्रकुलछत्र आनंदकारी।
दीप वल्लभवंश जगत निस्तारकरन
कोटि उडुराज सम तापहारी॥१॥
जयति भक्तजनपति पतितपावनकरन
कामीजन कामना पूरन चारी।
मुक्तिकांक्षीय जन भक्तिदायक प्रभु सकल
सामर्थ्य गुनगनन भारी॥२॥

जयति तीरथ सकल फलित नामस्मरन
मात्र वास व्रज नित्य गोकुलविहारी।
नंददासनि नाथ पिता गिरिधर आदि
प्रकट अवतार गिरिराजधारी॥३॥

सुखसेव्याय नमः

(१८) सुखसेव्यः =आपको सुख हो इस प्रकार भक्तों से सेवा करने योग्य हैं= *सुखसेव्याय नमः*

विवरण :

स येनैव प्रकारेण सुखं मन्यते, तेनैव प्रकारेण भक्तैः सेवितुं योग्य इति सुखसेव्य इत्यर्थः। भगवदीयस्य सर्वोपि कालो भगवत्सेवार्थमेवेति प्रभुसेवाकालविहितधर्मस्य तदन्तरायत्वा-करणमुचिततरमेवेति भावः।

आपको सुख हो इस प्रकार आप भक्तों से सेवा करने योग्य हैं। भगवदियों का सारा समय भगवत सेवा के लिए ही होता है, इसलिए प्रभु सेवा के समय शास्त्र में बताए हुए मर्यादा मार्गीय धर्म सेवा में अंतरायरूप होने से उन्हें नहीं करना यह अधिक उचित है।

ननु पूर्वोक्तं सर्वनामतात्पर्यत्वं साक्षात्पुरुषोत्तमे श्रीकृष्णे सम्भवति, 'कृष्णस्तु भगवान्स्यमिति वचनादस्य तु तद्भिन्ना-वतारत्वान्मत्स्याद्यवतारवदंशकलादिरूपत्वमेवेति पूर्वोक्त सर्वम-संगभिवाभातीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

ऊपर बतलाये हुए सभी नामों का तात्पर्य साक्षात् पुरुषोत्तम ऐसे श्रीकृष्ण में ही संभव है। श्रीकृष्ण अंश, कला इत्यादि अवतार

नहीं है, परन्तु साक्षात् भगवान ही हैं। इस वाक्य के अनुसार श्रीगुसांईजी का श्रीविट्ठलेशावतार भी अंश कला रूप हो तो ऊपर कहा उस प्रकार से परमात्मा विषयक सर्वनाम श्रीगुसांईजी में कैसे संभव हो सकता है?' इस प्रश्न के प्रत्युतर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी के १०८ नाम में आपका भी एक नाम *'सुखसेव्य'* है। इस नाम का रहस्य श्रीगोकुलेश प्रभु ने बहुत सुंदर तरीके से समझाया है। आपश्री को अपने भक्त अतिशय प्रिय हैं, क्योंकि वे भक्त अपने हृदय का प्रेम विविध क्रियाओं के द्वारा अंगीकार करवाते हैं, इसलिए भक्तों ने समर्पित की हुई विविध सामग्रियों में होने वाले भक्तों के हृदय का निष्काम शुद्ध भाव आप प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार करते हैं। इसलिए भक्तों की सेवा से आप सदा सुख मानते हैं।

श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी इत्यादि स्वरूपों के बैठकजी में कई बार कई वैष्णव बड़े समूह में झारी चरणस्पर्श करने जाते हैं, तब अनेक वैष्णवों के मन में एक प्रश्न होता है कि आप केवल जल और मिसरी ही इतने बड़े प्रमाण में आरोगते रहते हैं तो उससे आपको सुख होता भी है ? इसका जवाब इस नाम की टीका में से प्राप्त होता है। जल एवं मिसरी के द्वारा भक्त अपने हृदय का शुद्ध प्रेमभाव दीनतापूर्वक अंगीकार करवाते हैं और श्रीमहाप्रभुजी आदि स्वरूप प्रसन्नता से उसे अंगीकार करते हैं। इसलिए आप को इसमें कोई परिश्रम नहीं होता है, अपितु सुख ही होता है। भक्ति मार्ग में भाव की प्रधानता है। साधन-सामग्री की प्रधानता नहीं है। इस सिद्धांत के यहां स्पष्ट रूप में दर्शन होते हैं।

भगवदीय अपने जीवन का सम्पूर्ण समय भगवद् सेवा में ही व्यतीत करते हैं। इसलिए उनके पास देहधर्म के आचरण के लिए फालतू समय नहीं रहता है। देह धर्म में वर्णाश्रम धर्म का समावेश होता है। हम गृहस्थ हैं। इसलिए गृहस्थ के धर्म हमारे देहधर्म हैं। यह धर्म हर एक मनुष्य ने पालन करना चाहिए। ऐसा धर्मशास्त्रों का आदेश है, परन्तु देहधर्म से भी उत्तम आत्मधर्म है। भगवत्सेवा यह आत्मधर्म है। इसलिए भगवत्सेवा में यदि देहधर्म बाधक हो तो उसे आचरण करने की कोई जरूरत नहीं है। उसे आचरण नहीं करने का दोष भी नहीं लगता है। इसलिए यहाँ आज्ञा करते हैं कि, 'यदि भगवत्सेवा में संध्यावदन' इत्यादि धर्म अंतरायरूप बनते हो तो उन्हें नहीं करना चाहिए। सेवा के समय के बाद ही देहधर्मों को करना चाहिये, परन्तु जिससे प्रभु को परिश्रम हो उस प्रकार देहधर्म के लिए आग्रह रखना उचित नहीं है।

भगवत्सेवा में काल नियामक नहीं है। भाव सर्वस्व है। इस बात को भूलना नहीं चाहिये।

वार्ता-चरित्र-संगति :

श्रीगुसांईजी के सेवक दो कुनबी वैष्णव थे। वे दोनों गोकुलवास करके रहते थे। वे दिन भर मजदूरी करने जाते। वहाँ अपनी वैष्णवता को छुपाकर मजदूरी करते थे और रात को वे घर लौटते थे।

घर लौटकर एक वैष्णव अपरस में स्नान करके, रसोई करके श्रीठाकोरजी को भोग धरते थे, दूसरे वैष्णव परचारगी करते थे। इस प्रकार दोनों मिलकर अपना सम्पूर्ण समय सेवा में व्यतीत कर देते थे। सेवा से पहोंचकर वे देर रात्रि में प्रसाद लेते थे।

श्रीगुसांईजी के कृपापात्र सेवक अहमदाबाद में एक पटेल माँ और बेटी थे। दोनों अत्यन्त गरीब एवं विधवा थे। वे शरण में आए तब आपने आज्ञा की, 'तुम सेवा करो' उन्होंने कहा, 'महाराज ! हमसे सेवा कैसे हो सकती है, हमारे पास तो कुछ भी नहीं है ?' आपश्री ने आज्ञा की, 'मजदूरी करके जो बाजरी लाते हो उसमें से एक मुट्ठी बाजरी भीगो कर रख देना, उसे सब भोग में भोग धरना। वे दोनों माँ-बेटी श्रीगुसांईजी की आज्ञा के अनुसार अत्यन्त प्रसन्नता से सेवा करने लगी। एक बार श्रीगुसांईजी उनकी झोपड़ी में पधारे, तब श्रीगुसांईजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। भोग सर जाने के बाद आपने अपने आचार्यत्व को गौण करके अपना पुरुषोत्तम स्वरूप प्रकट किया और वह महाप्रसाद अपने मुख में रखा।

एक वैष्णव श्रीठाकोरजी की सेवा में नहाए थे। वो बुहारी करने गये। तब बुहारी की डोरी टूट गई, 'प्रभु को जगाने में देर हो रही थी, इसलिए उसने अपने कंधे पर रखी हुई जनोई उतारी और बुहारी बांधी। बुहारी करी इससे प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

कीर्तन–संगति :

(राग-नट)

हौं तो विट्ठलनाथ उपासी।
सदा सेऊं श्रीवल्लभनंदन कहा करुं जाय काशी ॥१॥
इने छांड जो और ध्यावे सो कहिये असुरारी।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल बानी निगम प्रकाशी ॥२॥

व्रजेश्वराय नमः

(१९) व्रजेश्वरः =आप व्रज के ईश्वर है = *व्रजेश्वराय नमः।*

विवरण :

व्रजस्येश्वरः साक्षात्पुरुषोत्तम इत्यर्थः । साक्षादाविर्भावस्तु व्रज एवेति 'नन्दस्वात्मज उत्पन्न, इत्यत्राचार्ये' निरूपितमिति तदीश्वरत्वेन साक्षात्कृष्णं सूच्यत इति भावः ।

आप व्रज के ईश्वर हैं। व्रजेश्वर श्रीकृष्ण के साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं, इसलिए आप भी व्रजेश्वर होने से साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं ।'नंदस्वात्मज' श्लोक में श्रीसुबोधिनीजी में श्रीमहाप्रभुजी ने आज्ञा की है कि 'साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम का आविर्भाव व्रज में हुआ है', मथुरा में नहीं, इसलिए आपका साक्षात् आविर्भाव व्रज में हुआ है, इसलिए आप व्रजेश्वर हैं और इसीलिए आपके पूर्व में कहे हुए सभी नाम यथार्थ हैं।

ननु 'व्यक्त' भवान्व्रजभयार्तिहरोभिजायत' इत्यादिवचनै-भक्तार्तिनाशनार्थमेव तस्याविर्भाव इति लक्ष्यते । परमत्र तद-भवात् किमर्थमाविर्भाव इत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

श्रीकृष्ण भक्तों का भय दूर करने के लिए ब्रज में पधारे थे। आपका भक्तों की आर्ति दूर करने का हेतु नहीं था, तो फिर आपके आविर्भाव का प्रयोजन क्या ? इस प्रश्न के जवाब में कहते हैं कि 'ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इसका जवाब आगे के नाम में मिलता है।'

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी ने जीवों को शरण में लेने से पहले अनेक जीवों को साक्षात् नंदनंदन स्वरूप से कई जीवों को कोटिकंदर्पलावण्य-स्वरूप से, कई जीवों को पुरुषोत्तम स्वरूप से, तो कितनेक

जीवों को श्रीगोवर्धनधरस्वरूप से दर्शन दिए थे। इसलिए आपके सेवक आपके व्रजेश्वर स्वरूप को भली-भांति जानते है।

'श्रीवल्लभाख्यान' में श्रीगोपालदासजी ने श्रीगुसांईजी का स्वरूप गुण एवं लीलाओं का जो वर्णन किया है, वह व्रजेश्वर स्वरूप का ही वर्णन है। यहाँ वे स्पष्ट रूप में निवेदन करते हैं कि:

श्रीविट्ठल द्विजरूप तमारी लीला एणी पेरे झाझीजी,
ओलखावे केम चालशे जे प्रीत हमसुं बाझीजी

आगे वे गाते हैं,

पूरण ब्रह्म श्री लक्ष्मणसुत पुरुषोत्तम श्रीविट्ठलनाथ,
श्रीगोकुलमां प्रगट पधार्या स्वजन कीधां सनाथ।

श्रीछीतस्वामी ने भी ऐसे ही दर्शन करके गाया था कि 'छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल एहि तेहि तेहि एहि कछु न संदेह'।

ब्रह्मांडपुराण में नीचे लिखे अनुसार वर्णन किया गया है,

जिसमें कृष्ण और विट्ठलेश को पूर्णावतार कहा है। बुद्ध, कल्कि इत्यादि को अंशावतार कहा है।

वार्ता-चरित्र-संगति:

मथुरा के चोरशिरोमणि छित चोबा अपने मित्रों को लेकर श्रीगुसांईजी को ठगने के लिए गोकुल गए थे। उन्होंने खोटा नारियल एवं खोटा रुपया श्रीगुसांईजी को भेंट किया, परन्तु आपकी दृष्टि गिरते ही वह नारियल और रुपया दोनों खरे हो गये। ऐसे ही छीतस्वामी को श्रीगुसांईजी के साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप में दर्शन हुए। इसलिए उन्होंने तुरंत ही यह पद गाया, 'अब भयी गिरिधर सों पहेचान'

श्रीछीतस्वामी बीरबल के पुरोहित थे। वे वर्षासन लेने के लिए बीरबल के यहाँ गये, तब वे वहाँ पर श्रीगुसांईजी के पद गाते थे। तब बीरबल ने कहा, 'आप श्रीगुसांईजी को श्रीकृष्ण के स्वरूप में वर्णन करते हो, यह बादशाह सुनेंगे तो आप क्या जवाब देंगे ?' तब श्रीछीतस्वामी ने कहा, 'मुझे जो अनुभव होता है, वह गाता हूँ। बादशाह पूछेंगे तब जवाब दूंगा, परन्तु तुम श्रीगुसांईजी के सेवक होकर उनके स्वरूप में शंका करते हो, इसलिए मेरे मन से तुम ही म्लेच्छ हो।' वे बिना वर्षासन लिए वापस लौट आए।

एक बार नंदमहोत्सव के दिन श्रीगुसांईजी श्रीनवनीतप्रियाजी को पलना झूला रहे थे। छीतस्वामी कीर्तन करते थे। बीरबल के साथ गुप्त वेष में अकबर भी दर्शन करने आए थे। श्रीगुसांई की कृपा से छीतस्वामी और अकबर इन दोनों को श्रीगुसांईजी में और श्रीनवनीतप्रियाजी में अभिन्नता के दर्शन हुए, इसलिए उन्होंने गाया 'छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल निगम एक करी गाये हो'।

इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने अपने पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप के दर्शन कई लोगों को करवाए थे।

कीर्तन–संगति :

(राग देवगंधार)

अबके द्विजवर व्है सुख दीनो।

तबके नंद यशोदानंदन व्है हरि आनंद कीनो॥१॥

तब कीनो गोपालरूप अब वेद स्मृति दृढ़ चीनो॥

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्त सुधारस भीनो॥२॥

(राग-देवगंधार)

बोहोरी कृष्ण श्रीगोकुल प्रकटे श्रीविठ्ठलनाथ हमारे।
द्वारपर वसुधा भार हर्यो हरि कलियुग जीव उद्धारे ॥१॥
तब वसुदेवगृह प्रकट होय के कंसादिक रिपु मारे।
अब वल्लभगृह प्रकट होय के मायावाद निवारे ॥२॥
ऐसो कवि को है जगमहियां बरने गुन जो तिहारे।
मानिकचंद प्रभुको खोजत गावत वेद पुकारे ॥३॥

भक्तशोकापहाय नमः

(२०) भक्तशोकापहः=आप भक्तों के शोक को दूर करते हैं = *भक्तशोकापहाय नमः।*

विवरण :

भक्तानां शोकमार्तिमपहन्ति नाशयतीत्यर्थः। अत्रापि स एव हेतुर्वर्त्तत इति भावः।

आप भक्तों के शोक को दूर करने वाले हैं। आपका आविर्भाव ही भक्तों के दुःख दूर करने के लिए हुआ है।

ननु भगवाननिष्टनिवारणं संकर्षणद्वारा करोति। स्वयं भक्तेष्विष्टमेव संपादयतीत्यस्यानिष्टनिवारंकत्वेन संकर्षणव्यूहरूपत्वं भवतु, क्रोधादिसम्भवादित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

भगवान संकर्षण व्यूह द्वारा अनिष्ट निवारण करते हैं। आप स्वयं तो भक्तों का इष्ट ही साधते हैं, तो क्या श्रीविठ्ठलेश प्रभु अनिष्टों का निवारण करते हैं। इसलिए संकर्षण व्यूह स्वरूप होंगे ? आपके स्वरूप में क्रोधादि के दर्शन करके, कदाचित कोई ऐसा अनुमान करे तो यहाँ आपका दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

सामान्य रीति से प्रभु भक्तों के अनिष्ट का निवारण संकर्षणव्यूह द्वारा करते हैं, परन्तु आप ऐसे कृपासागर हैं कि भक्तों का इष्ट साधने के साथ भक्तों के हृदय की अनेक प्रकार की आर्ति को भी आप दूर करते हैं। इसलिए श्रीमद् भागवत की रास-पंचाध्यायी के प्रथम अध्याय में श्रीगोपीजन कहते हैं, 'भगवान का प्राकट्य भक्तों की आर्ति दूर करने के लिए हुआ है। श्रीगुसांईजी भी हमेशा भक्तों की आर्ति दूर करने में तत्पर हैं।'

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी ने चार वैष्णवों को आगरा भेजा और आज्ञा की, 'वहाँ हमारे सेवक एक ब्राह्मण स्त्री-पुरुष रहते हैं, तुम उनका सत्संग करना।' वैष्णवों ने आगरा जाकर उस ब्राह्मण स्त्री-पुरुष की ऊपर की क्रिया को देखा, इससे उनके मन में इन वैष्णवों के प्रति दोषबुद्धि उत्पन्न हो गई, इसलिए श्रीठाकुरजी ने अप्रसन्न होकर उनको दर्शन नहीं दिए।

वैष्णव जूठ बोलकर आगरा से निकलकर गोकुल आये। श्रीगुसांईजी अंतर्यामी हैं। वे इन वैष्णवों पर अप्रसन्न हुए और वैष्णवों के सामने पीठ करके बिराज गये। शास्त्र में आज्ञा है कि, 'प्रभु की पीठिका में बहिर्मुखता रहती है।' इन चारों वैष्णवों ने वैष्णवों के दोष देखे थे, इसलिए वे बहिर्मुख हो गए थे। इसलिए अपनी पीठ के दर्शन उन्हें श्रीगुसांईजी ने करवाए, परन्तु मुखारविंद के दर्शन नहीं करवाए।

वैष्णवों ने बहुत विनती की, तब आपने आज्ञा की, 'मैंने तुम्हें उन वैष्णवों की बाह्य क्रिया देखने के लिए नहीं भेजा था, परन्तु वहाँ दो-चार दिन रहकर वैष्णवों के हृदय के भाव को

देखा होता तो तुमको कुछ लाभ होता, परन्तु तुमने तो उन वैष्णवों का अपराध किया है, इसलिए उन वैष्णव के ठाकोरजी ने भी तुम्हें दर्शन नहीं दिए। तुम वहाँ से निकल आये, इसलिए उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने अभी तक भी कुछ खाया नहीं है। वे दोनों मन में बहुत खेद कर रहे हैं। इसलिए मेरे हृदय में भी खेद हो रहा है। इसलिए तुम वापस आगरा जाओ।'

इस प्रकार आपने कृपा करके आगरा में रहने वाले वैष्णवों का दुःख दूर किया और इन वैष्णवों के द्वारा जो अपराध हुआ था उसे भी क्षमा करवाया।

श्रीगुसांईजी की सेवक हरिदासजी की बेटी थी। वह एक बार श्रीगुसांईजी के दर्शन की विरह में अत्यंत उन्मत्त दशा में आ रही थी। उस समय श्रीगुसांईजी स्नानचौकी पर ठाड़े होकर कटिपर्यंत स्नान कर रहे थे। इतने में हरिदासजी की बेटी को व्याकुल दशा में आते हुए देखा। उसका मन केवल आपके चरणारविंद में लीन था। उसका देह कागज के पुतले जैसा था। जैसे कागज का पुतला पवन के वश में होकर उड़ जाता है, ऐसे ही उसका देह मन के वशीभूत होकर दौड़ रहा था। इस प्रकार उसे आती हुई देखकर श्रीगुसांईजी पादुका पहनकर उसके सामने पधारे। उसका हाथ पकड़कर आपने उसे खड़ी रहने के लिये कहा। 'मैं तेरे लिए ही यहाँ पर मुकाम कर रहा हूँ। वहाँ का मुकाम मैंने तुम्हारे लिए छोड़ा है। तुझे दर्शन देने के लिए ही स्नान करते-करते मैं यहाँ आया हूँ। मैं द्वारिका जाने के लिए निकला हूँ। तू ऐसा खेद क्यों करती है ? मुझे तेरी चिंता बहुत है, इसलिए मैं तेरे पास आया हूँ।' इस प्रकार आप भक्तों के शोक का निवारण करते हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-कान्हरो)

श्रीविट्ठल प्रभु जगत उद्धारण देखो भूतल आये री।
नखसिख सुंदर रूप कहा कहूं कोटिक काम लजाये री॥१॥
जीव अनेक कृतारथ किये स्तवन सुनत उठ धाये री।
सरनमंत्र सुनाय स्तवनहिं पुरुषोत्तम कर जुगहाये री॥२॥
शेष सहस्त्र मुख निसदिन गावे तोऊ पार न पावेरी।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रेम पतित सब ध्यावे री॥३॥

शांताय नमः *(२१) शांत* =आप शांत हैं = *शान्ताय नमः।*

विवरण :

शान्तः क्रोधादिरहित इत्यर्थः। न तस्माच्च संकर्षणरूपत्व-मिति भावः। यद्वा, यथा यथा भक्तेच्छा भवति, तथा तथा ता पूरयतीति शान्तत्वेकत्येष्टसम्पादकत्वमुक्तम्। अनेन पूर्वोक्त-शंका निरस्ता वेदितव्या।

आप शान्त हैं। इसलिए आप क्रोध इत्यादि से रहित हैं। इसलिए आपको संकर्षणरूप नहीं मानना चाहिए, परन्तु साक्षात् परब्रह्म मानना चाहिए। भक्त की जो-जो इच्छा होती है उसे आप पूर्ण करते हैं। आप शान्त होने के कारण भक्तमनोरथपूरक हैं।

नन्विच्छाया मनोजन्यत्वात्कथं तद्विषयज्ञानमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

इच्छा मन में जगती है तो भक्त के मन की बात आप कैसे समझ सकते हैं ? ऐसे प्रश्न के जवाब में आपका दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

आप अपने भक्तों पर कभी भी क्रोध नहीं करते हैं। आप हमेशा शान्त स्वरूप में ही बिराजते हैं। श्री महाप्रभुजी 'पुष्टिप्रवाहमर्यादा' ग्रंथ में आज्ञा करते हैं कि, 'प्रभु अपने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही कभी-कभी उग्र स्वरूप बतलाकर शाप देते हैं, वह शाप वास्तव में भक्त के लिए वरदानस्वरूप ही होता है'।

आप पूर्णतः शान्त स्वरूप होने के कारण, भक्त मन में किंचित मात्र भी संकोच बिना रखे आपके पास आते हैं। वे अपनी इच्छा को व्यक्त नहीं करते हैं तथापि आप अंतर्यामी होने के कारण भक्तों की इच्छा को जानकर उसे पूरा कर देते हैं, इसलिए आप भक्त मनोरथ पूरक हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

माधवदास नाम के एक क्षत्रिय काबुल में रहते थे। एक दिन वे हरिद्वार आए थे। वहाँ उन्हें श्रीगुसांईजी के दर्शन हुए और वे उनकी शरण में आए। उसके बाद उनको श्रीगुसांईजी में साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम के दर्शन हुए। इससे वे मूर्छित हो गए। श्रीगुसांईजी ने उनको वेदमंत्र पढ़कर, जल छिड़ककर, सावधान किया। वे श्रीगुसांईजी के साथ व्रज में गए। वहाँ उन्हें श्रीनाथजी के दर्शन हुए और उनका मन श्रीनाथजी में लग गया। श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, 'तुम अपने घर वापस जाओ। तुम्हें काल अथवा देश बाधा नहीं करेगा। तुम्हें वहाँ भी श्रीनाथजी दर्शन देंगे।' काबुल में माधवदास को प्रतिदिन श्रीनाथजी के दर्शन होते थे।

पुष्टिमार्गीय वैष्णव को देश अथवा काल बाधा नहीं कर सकते हैं। जहाँ अपने प्रभु सुख से बिराजें वही देश वैष्णव के लिए

उत्तम है। प्रभु श्रीगुसांईजी की कानि से म्लेच्छ देश में भी अपने भक्तों को ऐसा अनुभव कराते हैं, क्योंकि श्रीगुसांईजी शान्त स्वरूप होने से भक्त मनोरथपूरक हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-कान्हरो)

श्रीविट्ठल सुखसागर आगर जगत उजागर पाये री।
भक्तन के हितकारन आली अति आतुर उठ धाये री॥१॥
ताको भाग्य कहां लौं बरनों जो वल्लभगुन गाये री।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल आनंद रस बरखावे री॥२॥

सर्वज्ञाय नमः

(२२) सर्वज्ञः =आप सबको जानने वाले हैं = *सर्वज्ञाय नमः।*

विवरण :

अन्तर्बहिश्च सर्वमेव जानातीत्यर्थः। भगवत्त्वात्सर्वज्ञत्वं नानुपपन्नमिति भावः।

आप अंदर की और बाहर की सभी बातों को जानते हैं। आप भगवान होने से सर्वज्ञ हैं यह स्वाभाविक है।

ननु तथात्वेपीच्छाविषयस्यातिकष्टसाध्यत्वेन कथं तत्पूरकत्वमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आप सर्वज्ञ हैं यह बात सत्य है, परन्तु दूसरे की इच्छा पूर्ण करना अति कष्टसाध्य होता है। इसे वे किस रीति से पूर्ण कर सकते हैं ? इसके जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

पहले के नामों में श्रीगुसांईजी के स्वरूप का पूर्णपुरुषोत्तम

के रूप में स्पष्ट रीति से निरूपण हुआ। इसलिए आपश्री के पुरुषोत्तम स्वरूप में हम सब की दृढ़ प्रतीति हुई है। भगवान के अनेक धर्मों में से एक धर्म है आपकी सर्वज्ञता। जो सर्वज्ञ हो वही भगवान कहलाते हैं। श्रीगुसांईजी सर्वज्ञ हैं। इसलिए आप भी भगवान हैं। आप जीव के हृदय की और कृति की सब बातों को जानते हैं। आप से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। आपसे कुछ छिप भी नहीं सकता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

मोटे कृष्णदास नाम के श्रीगुसांईजी के एक सेवक को श्रीगुसांईजी की परीक्षा लेने का विचार हुआ। वे एक बार गोकुल आए। उस समय श्रीनवनीतप्रियाजी पलने झूल रहे थे तब मोटे कृष्णदास को ऐसे दर्शन हुए कि कभी-कभी श्रीनवनीतप्रियाजी झूलते हैं और श्रीगुसांईजी पलने झुलाते हैं तो कभी-कभी श्रीगुसांईजी पलने झूलते हैं और श्रीनवनीतप्रियाजी झुलाते हैं। आप सर्वज्ञ होने से मोटे कृष्णदास के हृदय के संशय को पहचान गए और आपने इस रीति से उनके मन की शंका को दूर किया।

नंददासजी श्रीगोकुल आने के लिए श्रीयमुनाजी के किनारे पर बैठे थे, परन्तु कोई भी नाविक उनको गोकुल ले जाने को तैयार नहीं था। श्रीगुसांईजी सर्वज्ञ होने के कारण आपने यह बात मालूम कर ली और एक ब्रजवासी को नाव लेकर के नंददासजी को लेने के लिए भेजा तथा अन्य वैष्णवों की पातल करवाई। तब उनके साथ नंददासजी की पातल भी करवाई।

गुजरात से आने वाले वैष्णवों के एक संघ के साथ में एक अत्यंत गरीब पटेल वैष्णव थे। उन्होंने श्रीगुसांईजी को भेंट धरने

के लिए रास्ते में से शंखावली के कोमल पुष्प बीनकर उनकी माला सिद्ध करी, परन्तु उनके हृदय में इस बात का दुःख था कि गोकुल पहुंचते-पहुंचते यह माला श्रीगुसांईजी को धराने लायक नहीं रहेगी। आप अंतर्यामी हैं। इसलिए अपने सेवक के हृदय का मनोरथ वे जानते हैं, इसलिए घोड़े पर सवारी करके वे सामने से पधारे और उस वैष्णव की माला अंगीकार की।

बैठक–चरित्र–संगति :

श्रीगोकुल में जब तक श्रीनवनीतप्रियाजी का मंदिर बना नहीं था, तब तक श्रीगुसांईजी श्रीमहाप्रभुजी की बैठक में बिराजते थे। आप सर्वज्ञ थे इसलिए एक दिन आपने आज्ञा की, 'अगर इस समय मंदिर का पाया खुदे तो बहुत सुंदर मुहूर्त है और यह मंदिर का पाया अविचल रहेगा।' ऐसी आज्ञा करके आप पोढ़ने को पधारे। यादवेन्द्रदास नाम के एक वैष्णव ने आपकी आज्ञा सुनी और रात में ही मंदिर का पाया खोदा। जब सुबह आपको यह बात ज्ञात हुई तो आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। आज भी यह मंदिर अविचल है। यह मंदिर श्रीराजा ठाकुर के मंदिर के नाम से जाना जाता है।

कीर्तन–संगति :

(राग धनाश्री)

आज बधाई श्रीवल्लभद्वार।
पौषमास वदि नौमी सुभ दिन श्री विट्ठल अवतार॥१॥
ज्ञानरहित जीवन हित कारन नाम विवेक विचार।
यही जान सुन्दर मधुराकृति मूरति परम उदार॥२॥

भूतल भाग्य हमारे उघरे मायिक मत निस्तार।
ब्रह्मवाद कली कल्पवृक्षकी फिर उलही सब डार ॥३॥
प्रेमसमुद्र भक्तिमारग को उमग्यो ताही वार।
याहीते द्विजराज कहाये श्री गिरिराज साकार ॥४॥

सर्वकामदाय नमः

(२३) सर्वकामदः=आप भक्तों की सब इच्छाओं को पूरी करने वाले हैं = *सर्वकामदाय नमः ।*

विवरण :

सर्वान्कामानभिलषितार्थान् भक्तेभ्यो ददातीत्यर्थः । सर्वे ब्रह्मादयः कामदा वरदा यस्मादिति वा । कस्य प्रसादेन ब्रह्मादीनामपि सर्वकामदातृत्वं तस्य तथाकरणे कः प्रयास इति भावः ।

आप अपने भक्तों को सभी इच्छित अर्थ देते हैं। ब्रह्मादि देव भी आपकी कृपा से वरदान देने का सामर्थ्य धारण करते हैं। ऐसे आप अपने भक्तों के मनोरथ पूर्ण करें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? आप अनायास ही सहज रीति से अपने भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करते हैं।

ननु पुरुषोत्तमस्य रसात्मकत्वात्तदाधारत्वं च स्त्रीणामेवेति तत्सम्बन्धाभावे कथं श्रीकृष्णत्वमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

श्री पुरुषोत्तम रसात्मक हैं और रस का आधार स्त्री है। स्त्री के संबंध के बिना श्रीकृष्णत्व कैसे संभव है ? इसके प्रतिउत्तर में अब दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

आप भक्तों के हृदय को भली-भांति जानते हैं, इसलिए

आप अंतर्यामी हैं। भक्तों की इच्छाओं को जानकर आप उदासीन नहीं रहते हैं, परन्तु कृपासागर होने से आप अपने भक्तों की सभी इच्छित कामनाओं को सहज रीति से सिद्ध कर देते हैं। इसलिए आप भक्त मनोरथ पूरक ही हैं।

वार्ता-चरित्र-संगति :

अहमदाबाद में एक वणिक दलाल आपके सेवक थे। वे स्वभाव से अत्यंत लोभी थे। उनके पास कंजुसाई से बचे हुए रुपये ९९००० थे। उनकी यह इच्छा थी कि वे लक्षाधिपति बन जायें। जब श्रीगुसांईजी अहमदाबाद पधारे तब वे श्रीगुसांईजी के सेवक तो हुए, परन्तु उन्होंने विनती की कि, 'मुझसे सेवा नहीं हो सकेगी, क्योंकि पैसे खर्च करने का मेरा स्वभाव नहीं है।' आपने कृपा करके मानसी सेवा की रीति उसको सीखा दी।

एक बार वे उत्सव पर मानसी में खीर की सामग्री सिद्ध कर रहे थे। तब दूध में अधिक शकर गिर गई और वे उसे निकालने के लिए तत्पर हो गए। उस समय श्रीनाथजी बाबा ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया। इस प्रकार भगवद् सानुभव होने से उनका लोभ समाप्त हो गया और उन्होंने अपना सभी द्रव्य श्री ठाकुरजी की सेवा में ही वापर लिया।

श्रीगुसांईजी भक्तवत्सल हैं, इसलिए उस वणिक वैष्णव की कामना के अनुसार ही आपने उसका मनोरथ पूर्ण किया।

बैठक-चरित्र-संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी असारवा में भाईला कोठारी के यहां बिराजते थे, तब अहमदाबाद का सूबा आपश्री के पास आया।

उसने विनती की, 'महाराज ! इस प्रदेश में सात साल से वृष्टि नहीं हुई है। इसलिए यहाँ के लोग बहुत दुःखी हैं, इसलिए आप यहां के लोगों पर कृपा करिये।' आपने आज्ञा की, 'आप जब यहाँ से लौटेंगे और अपने महल में वापस पहुंचेंगे, तब महल के दरवाजे में ही आप दिख जाएंगे।' सूबा दंडवत् करके घुड़ सवारी करते हुए वापिस गया। उस समय आकाश में बादल छा गए एवं अत्यंत वृष्टि भी हुई। वह भींगते-भींगते शहर में गये।

कीर्तन–संगति :

(राग -सारंग)

श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नहि जाई।
प्रकट परमानंद गोकुल बसत है सब
जगतको जो सुखदाई॥१॥
भक्ति मुक्ति देत सबनको निजजनको
कृपा प्रेम बरखत अधिकाई।
सुखमय सुखरूप सुखद एक रसना
कहंलौं बरनों गोविंद बलि जाई॥२॥

रुक्मिणीरमणः श्रीशो भक्तरत्नपरीक्षकः।
भक्तरक्षैकदक्षः श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्त्तकः॥७॥

शब्दार्थ : रुक्मिणीरमणः = आप श्री रुक्मिणीजी के पति हैं, *श्रीशः* = आप श्री के ईश (पति) हैं, *भक्तरत्नपरीक्षकः* = भक्तरूपी रत्नों के आप परीक्षक हैं, *भक्तरक्षैकदक्षः* = आप भक्तों की रक्षा करने में प्रवीण हैं, *श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकः* = आप श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रवर्तन करने वाले हैं।

रुक्मिणिरमणाय नमः

(२४) रुक्मिणीरमणः = आप श्रीरुक्मिणीजी के पति हैं = *रुक्मिणीरमणाय नमः ।*

विवरण :

रुक्मिण्या रमणः स्वरूपानन्ददातेत्यर्थः ।

आप अपने स्वामिनी श्रीरुक्मिणीजी को स्वरूपानंद का दान करने वाले हैं ।

नन्वेकनायिकारमणत्वे श्रीरामचंद्रवत्प्रमाणरूपत्वमेव स्यान्न प्रमेयरूपत्वं, रसशास्त्र विरुद्धत्वाद्रसात्मकत्वाभावश्चे-त्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

यहाँ कोई ऐसी शंका करे कि, 'आप एक ही स्वामिनी के साथ रमण करने वाले होने से एक पत्नीव्रतधारी श्रीरामचन्द्रजी के समान मर्यादा पुरुषोत्तम होंगे, प्रेमय स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम नहीं होंगे, क्योंकि एक प्रियारमण रसशास्त्र के विरुद्ध है, इसलिए एक स्वामिनी से आपकी रसात्मकता का अभाव सिद्ध होता है।' इस शंका के उत्तर में दूसरा नाम कहते हैं ।

भावार्थ :

वेदों ने भगवत्स्वरूप का निरूपण करते हुए भगवान को 'रसो वै सः' कहा है । भगवान पूर्ण रसात्मक स्वरूप से बिराजते हैं । आप में शृंगाररस प्रकट होता हैं । अलौकिक शृंगाररस के दो दल पूर्वदल और उत्तर दल हैं । पूर्वदल संयोगात्मक है एवं उत्तरदल विप्रयोगात्मक है । इस प्रकार उभय दल से आप युगल भाव से बिराजते हैं ।

श्रीगुसांईजी भी साक्षात् भगवद् स्वरूप हैं, इसलिए आपके बहुजी श्रीरुक्मिणीजीबहुजी मुख्य स्वामिनी स्वरूप में आपके साथ बिराजते हैं। श्रीस्वामिनीजी स्वरूप आपसे अलग या भिन्न नहीं है। आपने अपने ही स्वरूप में से अपनी क्रीड़ा के लिए प्रकट किया हुआ स्वरूप है। इसलिए आप अपने स्वामिनी श्रीरुक्मिणीजी को स्वरूपानंद का दान करते हैं। इसलिए आप 'रुक्मिणीरमण' कहलाते हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-सारंग)

जयति रुक्मिणीनाथ पद्मावती प्रानपति विप्रकुलछत्र आनंदकारी।
दीप वल्लभवंश जगत निरतार करन कोटि उडुराज सब तापहारी॥१॥
जयति भक्तजनपति पतित पावनकरन कामीजन कामना पूरन चारी।
मुक्तिकांक्षीय जन भक्तिदायक प्रभु सकल सामर्थ्य गुनगनन भारी॥२॥
जयति तीरथ फलित नामस्मरन मात्र वास व्रज नित्य गोकुलविहारी।
नंददासनि नाथ पिता गिरिधर आदि प्रकट अवतार गिरिराजधारी॥३॥

श्रीशाय नमः

(२५) श्रीशः =आप श्री के ईश (पति) हैं = श्रीशाय नमः।

विवरणः

श्रियः पद्मावत्या ईशः पतिरित्यर्थः। श्रियो लक्ष्म्या ईश इति वा। यद्वा, श्रीणां सर्वात्मभाववतीनामनेकयोषितामीशः प्रिय इत्यर्थः। यथा मर्यादायां श्रिय एव रमणाधिकारस्तथा पुष्टिमार्गे सर्वात्म-भाववतीनामेव तदधिकार इति तद्भाववतीषु श्रीपदप्रयोगः।

आप श्री के ईश अर्थात् पति हैं। श्री अर्थात् श्री लक्ष्मीजी आप दोनों के स्वामी हैं। श्री शब्द का एक तीसरा अर्थ भी होता

है। श्री अर्थात् सर्वात्म भाव वाली अनेक स्त्रियाँ उनके भी आप नाथ हैं। अर्थात् सर्वात्मभाव रूप से जिन्हें उत्तम फल प्राप्त हुआ है ऐसे भक्तों के आप स्वामी हैं। लक्ष्मी से ही रमण का अधिकार है। ऐसा पुष्टि मार्ग में सर्वात्मभाव से ही रमण का अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिए भाव वाले वैष्णवों के लिए ही यहाँ पर 'श्री' शब्द प्रयोग किया गया है।

ननु सर्वात्मभावस्य मनोनिष्ठत्वादित भक्तेभ्यस्तद्भाववन्तः कथं व्यावर्त्तनीया, बहिर्वैलक्षण्याभावादित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

सर्वात्मभाव मन में है, सर्वात्मभाव वाले भक्त एवं सर्वात्मभाव से रहित भक्तों का बाह्य दिखावे में कोई फर्क, कोई अंतर दिखता नहीं है तो फिर सर्वात्मभाव वाले भक्तों को अन्य भक्तों से किस प्रकार से अलग किया जा सकता है ? इस प्रश्न के जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

'श्री' शब्द के विविध अर्थ शास्त्रों में तथा 'श्री सुबोधिनीजी' में बतलाये गये हैं। श्री का अत्यन्त प्रचलित अर्थ है लक्ष्मी। श्रीगुसांईजी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम हैं इसलिए आप लक्ष्मी पति हैं। श्रीगुसांईजी की पत्नी का नाम श्री पद्मावतीबहुजी है। पद्मावती शब्द का अर्थ भी लक्ष्मी होता है। इसलिए यहाँ 'श्री' शब्द पद्मावतीजी के लिए भी उचित है। श्रीमहाप्रभुजी 'श्रीसुबोधिनीजी' में श्री शब्द का तीसरा अर्थ देते हैं। श्री अर्थात् सर्वात्म भाव वाले व्रज भक्त। इस अर्थ के अनुसार श्रीगुसांईजी सर्वात्म भाव वाले भक्तों के भी स्वामी हैं।

जब प्रभु ने श्री नंदनंदन स्वरूप में सारस्वत कल्प में श्रीनंदरायजी के यहाँ प्राकट्य धारण किया तब लक्ष्मीजी को दासी बनकर व्रज में

आना पड़ा था एवं उन्होंने घर-घर में प्रभु के प्राकट्य महोत्सव का आनंद मनाने के लिए तोरण बांधने की सेवा स्वीकार की थी। इस प्रकार से लक्ष्मीजी आपके चरण की दासी हैं। इसलिए श्रीगुसांईजी भी *'श्रीपति'* हैं।

आपश्री के प्रथम बहुजी श्रीरुक्मिणीजी के लीलाप्रवेश करने के बाद आपने फिर से विवाह न करने का निर्णय किया था, परन्तु श्रीगोकुलनाथजी आदि आपके ही बालकों के द्वारा आग्रह किया गया। गढ़ा की रानी दुर्गावतीजी का भी यह मनोरथ था इसलिए आपने श्री पद्मावतीजी के साथ द्वितीय लग्न किया। संप्रदाय कल्पद्रुम के महानुभाव भक्त कवि के मत के अनुसार श्रीरुक्मिणीबहुजी ही श्रीपद्मावतीजी के रूप में फिर से पधारे हैं। इसलिए आपने जिस प्रकार श्रीरुक्मिणीजी को स्वरूपानंद का दान दिया, उसी प्रकार श्री पद्मावतीजी को भी स्वरूपानंद का दान किया। इसलिए आप श्रीपद्मावतीजी के प्राणपति हैं।

सर्वात्मभाव वाले भक्त मन वाणी और कर्म से आपके सिवाय अन्य किसी का विचार नहीं करते हैं। ऐसे भक्तों ने अपने हृदय आपको ही सुपुर्द कर दिए हैं और ऐसे भक्तों के हृदय में आप ही हमेशा रमण करते हैं। इस अर्थ में भी आप *'श्रीपति'* अर्थात् सर्वात्म भाव वाले भक्तों के स्वामी हैं।

कीर्तन–संगति :

पहले के नाम के साथ का ही कीर्तन यहाँ पर भी विचारना है।

भक्तरत्नपरीक्षकाय नमः

(२६) भक्तरत्नपरीक्षकः = भक्तरूपी रत्नों के आप परीक्षक हैं = *भक्तरत्नपरीक्षकाय नमः।*

विवरणः

भक्ताः एव रत्नानि तेषां परीक्षकस्तदितरेभ्यो व्यावर्त्तक इत्यर्थः । रत्नत्वं सर्वात्मभाववत्त्वमतिदुर्लभत्वादतिगोप्यत्वाच्च। यथा कृत्रिमरागादिजनितरत्नत्वभ्रान्तिजनकेभ्यः कायस्फटिकादिभ्यः साहजिकानि रत्नानि तत्परीक्षका व्यावर्त्तयन्ति नान्ये, तथेतरभावस्य मुख्यकलाप्रापकत्वात्कपटरूपत्वमेवेति तद्वद्भ्यो रत्नरूपान् स्वभक्तानयं व्यावर्त्तयतीति भावः ।

आप भक्तों रूपी रत्नों के परीक्षक हैं । जिस प्रकार रत्न अति दुर्लभ होते हैं एवं उनको अत्यंत गुप्त रखा जाता है, इसी प्रकार सर्वात्म भाव भी रत्न की भांति अत्यंत दुर्लभ है तथा उसे भी अति गुप्त रखा जाता है । इसलिए आप सर्वात्म भाव वाले भक्तों की परीक्षा करके सर्वात्म भाव के भक्तों से अलग कर सकते हैं, इसलिए आप सर्वात्मभाव वाले भक्तों रूपी रत्नों के परीक्षक हैं, जिस प्रकार कृत्रिम शोभा एवं रंगों से कई लोग कांच एवं स्फटिक रत्नों की भ्रांति उत्पन्न करते हैं, परन्तु रत्नों के परीक्षक सच्चे रत्नों को कांच, स्फटिक इत्यादि से अलग कर सकते हैं । उसी प्रकार सर्वात्म भाव के अतिरिक्त अन्य भाव कपट रूप हैं । वे मुख्य फल देने वाले नहीं हैं । इसलिए सर्वात्मभाव से रहित दूसरे भाव वाले भक्तों की परीक्षा करके आप उन्हें अलग कर सकते हैं तथा उन्हें मुख्य फल का दान करते हैं ।

ननु येषां हस्ते रत्नं भवति ते निरन्तरं तदेकरक्षापरा भवन्तीति भक्तानां रत्नत्वस्यापि तथात्वं वक्तव्यमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

जिनके हाथ में रत्न होता है, वे हमेशा रत्न की रक्षा करने में तत्पर होते हैं । इस प्रकार भक्त की रक्षा करने में वह तत्पर है

या नहीं ? इस प्रश्न के जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम का प्राकट्य हैं इसलिए आप सर्वज्ञ हैं। सब के हृदय को जानने वाले हैं। विविध अधिकारों वाले अनेक जीव आपकी शरण में आते हैं। वे विविध स्वभाव वाले एवं विविध भाव वाले होते हैं। सभी भक्त समान भाव वाले नहीं होते, परन्तु जिस प्रकार एक जवेरी सच्चे और खोटे रत्नों की परीक्षा कर लेता है और उनको अलग-अलग कर देता है उसी प्रकार आप भी सर्वात्म भाव वाले भक्त और सर्वात्म भाव से रहित भक्तों की परीक्षा करके उन्हें अलग-अलग कर देते हैं। आप सर्वात्म भाव वाले भक्तों को मुख्य फल का दान करते हैं। सर्वात्मभाव से रहित भक्तों को आप मुख्य फल का दान नहीं करते हैं, जिस प्रकार प्रत्येक भक्त एक-एक रत्न के समान है, जिस प्रकार प्रत्येक रत्न की गुणवत्ता अलग-अग होती है उसी प्रकार प्रत्येक भक्त का स्वरूप भी अलग-अलग है। इसलिए प्रत्येक के स्वरूप को जानकर उसके अधिकार के अनुसार आप उसे फल का दान करते हैं। इसलिए आपको 'भक्तरत्नपरीक्षक' कहा है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी एक बार आगरा में रूपचंद नंदा के यहाँ पधारे, परन्तु रूपचंद नंदा घर पर नहीं थे। इसलिए आप भाडां कपूर नाम के किसी दूसरे वैष्णव के यहाँ पधारे और वहीं मुकाम किया। आप वस्त्र लपेट कर जनोई कान पर चढ़ाकर, हाथ-पैर धोने के लिए चौक में पधारे। उसी समय आपको समाचार मिले कि रूपचंद नंदा घर आ गये हैं। इसलिए आप उसी स्वरूप से रूपचंद

नंदा के घर पधारे और वहीं हाथ-पैर धोकर, स्नान करके, भोग धरके, प्रसाद लेकर विश्राम किया।

उस समय आपके मन में एक विचार आया कि श्रीगोकुल से गिरिराज जाने के लिए अमुक रंग का उत्तम घोड़ा हो, उस पर अमुक रंग का उत्तम मखमल का साज हो तो उस घोड़े पर बैठकर श्रीगिरिराज जाऊं। श्रीगुसांईजी के हृदय की बात रूपचंदनंदा ने जान ली। वे तत्काल बाजार में गये और वैसा ही घोड़ा और साज लेकर हाजिर हो गये।

श्रीगुसांईजी के हृदय की बात को केवल सर्वात्मभाव वाले भक्त ही जान सकते हैं, इसीलिए ऐसे भक्त रत्नों के परीक्षक बनकर आप उनकी सेवा को अंगीकार करते हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-बिलावल)

आई व्रजवधू झूम-झूम।
लोकलाजकी सुधि न रही तन अति आनंदित घूम-घूम॥१॥
पोढ़े जहां पालने प्रीतम रहे झूंमका लूम-लूम।
श्रीविट्ठल गिरिधर छबि निरखत लेत बलैया चूम-चूम॥२॥

भक्तरक्षैकदक्षाय नमः

(२७) भक्तरक्षैकदक्षः = आप भक्तों का रक्षण करने में प्रवीण हैं = *भक्त-रक्षैकदक्षाय नमः।*

विवरण :

भक्तानां रक्षा तस्यामेवैकस्यां दक्षः प्रवीणः इत्यर्थः। यत्किंचित्करोति तद्भक्तरक्षार्थमेवेत्येकपदम्।

आप भक्त की रक्षा करने में प्रवीण हैं। आप जो कुछ करते

हैं वह भक्त की रक्षा के लिए ही करते हैं।

ननु तत्किं करोतीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

ऐसा करने का क्या कारण है ? इसके जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

भक्तों रूपी रत्नों की आप केवल परीक्षा करके रुक नहीं जाते हैं, परन्तु वह असली रत्न है इसको जान लेने के बाद जिस प्रकार उसके प्रति तत्परता रखी जाती है, उसी प्रकार आप भक्तों की रक्षा करने में भी हमेशा तत्पर हैं। इसलिए आप की सारी कृति भक्तों की रक्षा के लिए ही होती है। इसीलिए आपको 'कृपासागर' कहा गया है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के सेवक एक सेठ की बेटी लाहोर में रहती थी। उसके घर के सभी लोग बहिर्मुख थे। आचार-विचार में कुछ नहीं समझते थे। इसलिए उस बेटी ने एक वर्ष तक कच्चे चने खाए और अपना जीवन निर्वाह किया। ऐसे अडिग और टेक वाले भक्त का दुःख श्रीगुसांईजी सहन नहीं कर सके। इसलिए आपने चाचाजी को लाहोर भेजा। चाचाजी के दर्शन करके वह बेटी रोने लगी। तब चाचाजी ने कहा, 'तू रोना मत, तेरे लिए ही मुझे श्रीगुसांईजी ने यहाँ तक भेजा है। अपने प्रभु बहुत दयालु हैं। वे अपने भक्तों की रक्षा क्यों नहीं करेंगे ?'

श्रीगुसांईजी की कृपा से उस बेटी के कुटुंब के बहुत से मनुष्यों का प्रारब्धवाद भुगताकर सारा कुटुंब श्रीगुसांईजी की शरण में

आया। ऐसे आप भक्तों की रक्षा करने में चतुर हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-नट)

जो पें श्रीविट्ठल रूप न धरते।

तो कैसेके घोर कलियुगके महा पतित निस्तरते॥१॥

सेवा रीति प्रीति व्रजजनकी श्रीमुखतें विस्तरते।

विट्ठलनाथ अमृत जिन लीनो रसना सरस सुफलते॥२॥

कीरति विशद सुनी जिन स्रवनन विषय विषजू परिहरते।

गोविन्द बलि दरसन जिन पायो उमग-उमग रस भरते॥३॥

श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकाय नमः

(२८) श्रीकृष्णभक्ति-प्रवर्तकः = आप श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रवर्तन करने वाले हैं = *श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकाय नमः।*

विवरण :

श्रीकृष्णे फलरूपे भक्तिः सर्वात्मभावरूपा, भक्तेषु तस्याः प्रवर्तकः प्रवृत्तिकर्त्तेत्यर्थः। फलरूपभक्तिप्राप्त्यनन्तरं न कुतश्चिद्-भयं भवतीति तत्प्रवर्त्तकत्वेन सर्वतो रक्षकत्वमिति भावः। श्रीकृष्णो भक्तिप्रवर्तकश्चेति वा। तेन 'भक्तियोगवितानार्थ' मिति-पृथावाक्यात्स्वरूपा प्रयोजनभ्यामुभयोरभेदः सूचितः।

भक्तों को श्रीकृष्णचंद्र में सर्वात्म भाव रूपी भक्ति में आप प्रवृत्त करने वाले हैं। एक बार फलरूपा भक्ति प्राप्त हो जाए उसके बाद उस भक्त को किसी का भय नहीं रहता है। इसलिए भक्त को फलरूपी भकित का दान करके आप भक्त का सबसे रक्षण करते हैं। आप स्वयं श्रीकृष्ण स्वरूप हैं एवं अपनी भक्ति को प्रवृत्त करवाने के लिए प्रकट हुए हैं। श्री भागवत में कुंति जी

कहते हैं कि, ' भक्ति योग का विस्तार करने के लिए आप पधारे हैं ।' जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण भक्तियोग का विस्तार करने के लिए पधारे थे इसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी भक्तियोग का विस्तार करने के लिए ही पधारे हैं । आप दोनों का स्वरूप एक ही है । उसी प्रकार प्राकट्य का प्रयोजन भी एक ही है ।

नन्वितरमार्गप्रतिपादकानेकविद्वद्‌भिर्बोध्यमाने विक्षिप्त-चित्तत्वात्कथं भक्तिप्रवृत्तिरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

यहाँ पर यदि कोई ऐसी शंका करे कि इतर मार्ग के अनेक विद्वानों के बोध से जीवों के चित्त भ्रांत होते हैं । ऐसे जीवों में श्रीगुसांईजी भक्ति का प्रचार किस प्रकार करेंगे ? उसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं ।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी ने षोडश ग्रंथ में अत्यन्त स्पष्टता से समझाया है कि 'कलियुग में कर्म, ज्ञान इत्यादि सभी मार्ग दुराराध्य हैं, केवल प्रभु की शरण ही उनकी कृपा से सुसाध्य है, जीव प्रभु का अंश है इसलिए सहज रीति से प्रभु का दास है । इसलिए भगवद् सेवा यह जीव का सहज स्वभाव है । सेवा को ही शास्त्रों में भक्ति कहा गया है । सर्वात्मभाव पूर्वक श्री नंदनंदन की सेवा करना यह पुष्टि भक्त का एकमात्र कर्त्तव्य है ।' यह सेवा जिस प्रकार साधन है, उसी प्रकार फल भी है । यह सेवामार्ग श्रीमहाप्रभुजी ने बतलाया एवं श्रीगुसांईजी ने उसका विकास किया । अनेक जीवों को उसका उपदेश दिया, इसीलिए आप 'श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तक' हैं ।

श्रीगुसांईजी के समय में जैन धर्म पालन करने वाली बनियों

की अनेक जातियां श्रीगुसांईजी की सेवक हुई एवं श्रीकृष्ण भक्ति में तत्पर बनी।

जो भक्त ऐसी फलरूपा भक्ति में तत्पर होते हैं उनका सभी प्रकार से रक्षण आप स्वयं ही करते हैं। वह भक्त निर्भय बन जाता है।

आप श्रीकृष्ण स्वरूप हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण भक्तियोग का विस्तार करने के लिए भूतल पर पधारे थे उसी प्रकार आप भी सेवा मार्ग का विस्तार करने के लिए ही भूतल पर पधारे हैं। आपका यही मुख्य कार्य रहा है इसलिए आपने शरण में आए हुए सभी जीवों को कृष्ण सेवा की ही एक मात्र आज्ञा की है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

गुजरात में श्रीगुसांईजी के सेवक एक वणिक की बेटी थी। उनका विवाह उनकी जाति के रामानंदी धर्म पालने वाले एक युवक के साथ हुआ था। दोनों पति-पत्नी अपने-अपने भाव से एक ही स्वरूप की सेवा करते थे। जब वह रामानंदी युवक सेवा करता था तब श्रीरामचंद्रजी के भाव से करता था एवं उनकी पत्नी जब सेवा करती थी तब श्रीकृष्णचंद्र के भाव से करती थी। दोनों ही अपने-अपने इष्ट प्रभु की प्रशंसा करते थे। इसी बात को लेकर दोनों के बीच में प्रतिदिन विवाद चलता रहता था। ऐसा करते-करते दोनों का अपने-अपने इष्ट स्वरूप में भाव बढ़ता गया एवं आर्ति भी बढ़ती गई।

एक दिन उनकी आर्ति जानकर के प्रभु प्रकट हुए। उन दोनों के बीच होने वाले झगड़े को अटकाया एवं आज्ञा की, 'मैं तुम पर

प्रसन्न हूँ, तुम लड़ना मत, तुम कुछ माँगो।' तब उन दोनों ने हाथ जोड़कर विनती की, 'यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हम एक ही चीज माँगते हैं कि आप हमें दर्शन दिया करो, जिससे हमारा निर्वाह भली-भाँति चले।'

भक्तिमार्ग में कोई भी जीव यदि अनन्य होकर रहता है तो उस पर श्रीठाकुरजी कृपा करते हैं, क्योंकि अनन्यता से भक्त प्रभु में तन्मय हो जाता है। भक्त जिस लीला का अधिकारी होता है उस लीला के स्वरूप में वह मग्न रहता है। परिणाम में उसे लीलानंद की और स्वरूपानंद की प्राप्ति होती है।

श्रीगुसांईजी ने कई शिव भक्तों और देवी भक्तों को श्रीकृष्ण की भक्ति की ओर मोड़ने के प्रसंग २५२ वैष्णवों की वार्ता में मिलते हैं।

कीर्तन–संगति

(राग-आसावरी)

श्रीमद्वल्लभ के घर प्रभु जो फिर अवतार न धरते हो।
तो हम सरिखे मूढ पतित जन कहो कैसे निस्तरते हो ॥१॥
बिन पाये व्रजपति पदपकंज काकी सेवा करते हो।
श्रीगिरिधरन राधिकावर बिन रचना कहा उच्चरते हो ॥२॥
सिव सुरेस दिनमनि गनेशके होय कनोडे डरते हो।
अति आतुर पुनि अर्क तूलसे सबनके पांयन परते हो ॥३॥
तब हमहूं लोगनकी न्याई घरघर भटकत फिरते हो।
कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन इनहीमें पच मरते हो ॥४॥
कहा भयो निज बिरद जानके पतित जान उद्धरते हो।
रुचिर रूप बलि दास नारायन तृषित नयन क्यों करते हो ॥५॥

महासुरतिरस्कर्ता सर्वशास्त्रविदग्रणीः ।
कर्मजाड्यभिदुष्णांशुभक्तनेत्रसुधाकरः ॥८॥

शब्दार्थ :

महासुरतिरस्कर्त्ता = महा आसुरी लोगों का तिरस्कार करने वाले, सर्वशास्त्र *विदग्रणीः* = सर्व शास्त्रवेत्ताओं में अग्रणी, *कर्मजाड्यभिदुष्णांशुः* = कर्मजड़ता को दूर करने वाले सूर्य, *भक्तनेत्रसुधाकरः* = भक्त के नेत्रों के लिए चंद्र रूप।

महासुरतिरस्कर्त्रे नमः

(२९) महासुरतिरस्कर्ता = भक्ति का विरोध करने वाले महान आसुरी लोगों का तिरस्कार करने वाले हैं = *महासुरतिरस्कर्त्रे नमः ।*

विवरण :

इतरमार्गप्रतिबोधकत्वमासुरत्वम् । तत्रापि महत्त्वं भक्तिमार्गविरोधकर्तृत्व म् । तादृशास्ते महासुरास्तेषां तिरस्कर्तेत्यर्थः । यैः प्रमाणैस्ते स्वमार्ग-प्रतिपादनं कुर्वन्ति तैरेव प्रमाणैरतन्मार्गाप्रामाण्यनिरूपणेन तथेति भावः । (तिरस्कर्तेत्यर्थः) ।

वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता एवं भागवत इन चारों प्रमाण शास्त्रों के सिद्धांतों के विरुद्ध इतर मार्ग का उपदेश देना यह आसुरीपन है। उसमें भी भक्ति मार्ग का विरोध करने वाले महा आसुरी जनों का आप तिरस्कार करते हैं। जिस प्रकार इतर मार्गीय पंडित उनके मार्ग का प्रतिपादन करते हैं उसी प्रकार उन्हीं प्रमाणों से अप्रामाणिकपन भी प्रतिपादित करते हैं।

ननु तेप्यधीतशास्त्रास्तेषां कथं तूष्णीभाव इत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

इतर मार्गीय पंडित भी शास्त्र के पढ़े-लिखे विद्वान होने पर

भी उनके सामने निरुत्तर क्यों हो जाते हैं ? इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी 'निबंध' आदि ग्रंथों में स्पष्ट आज्ञा करते हैं कि, 'वेदशास्त्र के सिद्धांत सनातन सिद्धांत हैं। उसमें जिस प्रकार से अर्थ कहा गया है उसी प्रकार का अर्थ माना भी गया है। वेदशास्त्र के साथ में दूसरे अन्य शास्त्र जहां-जहां सुसंगत हैं, वहां-वहां वे-वे शास्त्र हमको प्रमाण है। इसी प्रकार पुराण, हरिवंश, महाभारत, पंचरात्र इत्यादि शास्त्र वेद से सुसंगत हैं। वे प्रमाण स्वरूप हैं एवं स्वीकार्य हैं, परन्तु चाहे जितने प्राचीन शास्त्र हों और यदि वे वेद से सुसंगत न हों तो वे स्वीकार्य नहीं हैं। बुद्ध भगवान का अवतार होने पर भी उनका उपदेश वेद के साथ सुसंगत नहीं है, इसलिए वह हमें स्वीकार्य नहीं है।'

इस प्रकार इतर मार्गीय पंडित वेदादि शास्त्रों के सिद्धांतों से जहां-जहां कोई अलग बात करते हैं वहाँ-वहाँ वे पंडित आसुरावेशी हैं। उसमें भी ऐसे पंडित जब भक्तिमार्ग विरोधी बात कहते हैं तब तो वे महाआसुरी हैं, क्योंकि भक्तिमार्ग और पुष्टिमार्ग वेदप्रतिपाद्य हैं। ऐसे आसुरी पंडित अपने मत का प्रतिपादन करने के लिए शास्त्र के वचनों का मनगढंत अर्थ करते हैं। तब श्रीगुसांईजी शास्त्रों के इन्हीं प्रमाणों को लेकर उसका सही अर्थ बतलाते हैं और इन पंडितों के मत की अप्रमाणिकता सिद्ध कर देते हैं। इसलिए पंडित लोग निरुत्तर होकर चुप हो जाते हैं। श्रीमहाप्रभुजी के द्वारा बतलाये हुए सिद्धांतों के विरोध में यदि कोई भी कुछ भी कहे तो आप उसे सहन नहीं कर लेते।

उसे शास्त्रसंगत प्रमाणों से चुप कर देते हैं।

आपके सेवकों में भी आपने ऐसा ही सामर्थ्य रखा है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीमहाप्रभुजी के कृपापात्र सेवक विष्णुदास छीपा थे। वे जन्म से शूद्र थे, परन्तु श्रीमहाप्रभुजी की कृपा से सभी शास्त्र उनको हृदयारूढ़ हो गये थे। उन्होंने अपनी पिछली उम्र में श्रीगुसांईजी की हवेली के द्वारपाल की सेवा मांग ली थी। श्रीगुसांईजी के पास कई विद्वान ब्राह्मण शास्त्र चर्चा करने आते थे। इससे आपको सेवा में बहुत अंतराय होता था। यह देखकर विष्णुदास छीपा ने आने वाले ब्राह्मणों से कहना शरू किया, 'पहले आप मेरे साथ शास्त्रार्थ करिये और यदि उसमें जीत जाएं तो ही हमारे स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करना।' सभी पंडित विष्णुदास छीपा के पास निरुत्तर हो जाते थे एवं दरवाजे पर से ही वापस चले जाते थे। यह बात श्रीगुसांईजी को जब ज्ञात हुई तब आपने आज्ञा की, 'ब्राह्मणों का रक्षण करना एवं उनका सम्मान करना यह हमारा कर्त्तव्य है। इसलिए आप ब्राह्मणों को दरवाजे पर से वापस मत भेजना। उन्हें हमारे पास आने देना।'

एक बार श्रीगुसांईजी काशी में गंगा किनारे पर मणिकर्णिका घाट पर बिराजते थे। तब आपका वैभव देखकर एक संन्यासी ने कहा 'यह कैसे गुसांई हैं। गुसांई का जीवन तो त्यागप्रधान होता है।' तब श्रीगुसांईजी ने उस संन्यासी को देखते हुए अपनी सारी समृद्धि ब्राह्मणों को बांट दी एवं बहुत सी गंगाजी में भी पधरा दी और फिर आपने उस संन्यासी से कहा, 'आप भी संन्यासी है तो आप का यह कौपिन एवं भिक्षापात्र दान में दे दीजिये।' संन्यासी ने कहा, 'मैं दे दूंगा तो फिर मुझे दूसरा कहाँ से मिलेगा ?'

श्रीगुसांईजी ने कहा, 'संन्यासी होकर आपको अपनी वस्तुओं में इतनी अधिक ममता है, आपको ईश्वर का विश्वास नहीं है, तो फिर तुम कैसे संन्यासी हो ?' वह संन्यासी शरमा गया और श्रीगुसांईजी की शरण में आ गया।

कीर्तन–संगति :

(राग-देवगंधार)

चहुं युग वेदवचन प्रतिपार्यो।
धर्म ग्लानि भई जबही जब तब तब तुम वपु धार्यो॥१॥
सतयुग श्वेत वराह रूप धर हरि हिरण्याक्ष उर फार्यो।
त्रेता रामरूप दशरथगृह रावनकुल जु संहार्यो॥२॥
द्वापर व्रज बूडतेतें राख्यो सुरपति पांयन पार्यो।
कंसादिक दानव सब मारे वसुधा भार उतार्यो॥३॥
कलियुग श्री वल्लभगृह प्रगटे मायावाद निवार्यो।
मानिकचंद प्रभु श्रीविट्ठल पुरुषोत्तम रूप निहार्यो॥४॥

सर्वशास्त्रविदग्रण्ये नमः

(३०) सर्वशास्त्रविदग्रणीः = आप सभी शास्त्रों के अग्रणी हो *= सर्व-शास्त्रविदग्रण्ये नमः।*

विवरण :

सर्वे च ते शास्त्रविदाः। सर्वाणि च तानि शास्त्राणि, तद्विदो वा।

सभी शास्त्रों को जानने वाले विद्वानों की अपेक्षा आप अधिक ज्ञानवान हैं। इस विषय में प्रमाण सिद्ध है अथवा यह प्रमाण सिद्ध नहीं है ऐसा निर्णय जब शास्त्रचर्चा करने में आता था तब अधिक ज्ञानवान के समक्ष अल्पज्ञ गूंगा बन जाता था।

नन्वधिकज्ञानवत्त्वे किं प्रमाणमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आपको अधिक ज्ञान है ऐसा कैसे कहा जाए ? उसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी ने श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप का निरूपण करते हुए 'श्रीवल्लभाष्टक' में कहा कि संसार में किसी-किसी स्थान पर पांडित्य के दर्शन होते हैं। उसमें भी कुछ लोग वेदशास्त्र को जानने वाले भी होते हैं। उनमें से कुछ लोग वेदशास्त्रों को जानकर उस प्रकार से वर्तन करने वाले भी होते हैं। उनमें से भी बहुत कम का भक्ति मार्ग में प्रवेश होता है एवं भाग्य से ही कोई प्रभु में स्नेह भाव वाला बनता है। यह सब कुछ हमें केवल श्रीमहाप्रभुजी में प्राप्त होता है। यह बात श्रीगुसांईजी को भी उतनी ही लागू होती है।

सभी शास्त्रों को जानने वाले पंडितों से आप अधिक ज्ञानवान हैं इसलिए शास्त्रचर्चा करते हुए आपके प्रमाणों के सम्मुख अन्य पंडित चुप हो जाते हैं।

वार्ता-चरित्र-संगति :

श्रीमहाप्रभुजी ने छट्टा सोमयज्ञ करके, श्रीगुसांईजी को यह संप्रदाय सौंप दिया।

'सोंप संप्रदाय सुतन को अष्टाविनशति ग्रंथ,
निज प्रेम ही कही भक्ति है, पूर्ण शास्त्र गुण पंथ',

श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीगुसांईजी को ज्योतिष, संजीवनी तथा निज विद्या के अवधारण का बल प्रदान किया तथा वेद का सम्पूर्ण अध्ययन करवाया। उसके बाद अन्य मतों के अध्ययन के लिए काशी में श्री माधव सरस्वती नाम के विद्या गुरु के पास भेजा। श्रीगुसांईजी को सांप्रदायिक ग्रंथों एवं प्रणालिका का

अध्ययन श्री दामोदरदास हरसानीजी ने करवाया। इस प्रकार सभी प्रकार का अध्ययन करके आप एक बेजोड़ योद्धा बन गये। परिणाम स्वरूप आप विलक्षण सेवा प्रवर्तक एवं अजेय विद्वान आचार्य के रूप में जगत में प्रसिद्ध हुए।

बैठक–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी श्रीवृंदावन में बंसीबट में श्रीमहाप्रभुजी की बैठक के पास बिराज रहे थे, तब वृंदावन के महंत हरिवंश इत्यादि उनके पास आए। हरिवंश ने विनती करी, 'आप संध्यावादन करते हैं ?' श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, 'हमारे मार्ग में संध्या उपासना मुख्य है। हमारे भक्त संध्या की काफी उपासना करते हैं, क्योंकि प्रभु नंदालय में से सबेरे गऊचारण के लिए वन में पधारते हैं, तब इन भक्तों को प्रभु का वियोग होता है। शाम को संध्या के समय प्रभु वन में से पधारते हैं, तब भक्तों को वे संयोगरस का दान करते हैं।

इस प्रकार आपने यह बतलाया कि हमारा यह मार्ग व्रज भक्तों का भावात्मक मार्ग है। इस प्रकार आप सभी पंडितों को शास्त्र प्रमाणों से चुप कर देते थे।

कीर्तन–संगति :

(राग-देवगंधार)

अबके द्विजवर व्है सुख दीनो।
तबके नंद यसोदानंदन व्है हरि आनंद कीनो ॥१॥
तब कीनो गोपालरूप अब वेद स्मृति दृढ़ चीनो।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल भक्ति सुधारस लीनो ॥२॥

कर्मजाड्यभिदुष्णांशवे नमः

(३१) *कर्मजाड्यभिदुष्णांशुः* = कर्म इत्यादि मार्गों की जड़ता दूर करने वाले आप सूर्य रूप हैं = *कर्मजाड्यभिदुष्णांशवे नमः।*

विवरण :

कर्मेत्युपलक्षणं, तदादिमार्गाणां यज्जाडयं तदेकपरत्वं तद्भिनत्ति विदारयतीति कर्मजाड्यभित्स चासावुष्णांशुश्चेति स तथा। अत्रायं भावः, अद्यपि सूर्योदयायोतिरिक्तकालेऽग्न्यादीनामपि शीतादिजाड्यभेदकत्वमस्ति तथापि न रवेरिवाधिकतेजोवत्त्वात्।

आप कर्म इत्यादि मार्गों में रहने वाली जड़ता को दूर करने वाले सूर्य रूप हैं। शीत कर्मादि मार्ग में लगा हुआ रहे तो यह उसकी जड़ता है। उसे आप दूर करते हैं। जिस प्रकार सूर्य के अभाव में रात्रि के समय में अग्नि इत्यादि भी शीत इत्यादि की जड़ता को दूर कर सकती है, परन्तु सूर्य उनसे अधिक तेजस्वी होने के कारण सूर्य के समान अग्नि इत्यादि जड़ता को दूर नहीं कर सकते हैं।

एवमस्याधिकज्ञानवत्त्वादज्ञानमूलककर्मजाड्यभेदकत्वमन्येषामल्पज्ञानवत्त्वादभेदकत्वमित्यनुभवसिद्धमतोऽत्र न प्रमाणापेक्षेति ज्ञापनायोष्णांशुत्वोक्तिः।

इस प्रकार आप अधिक ज्ञानवान होने से अज्ञान मूलक कर्म जड़ता को दूर कर सकते हैं, परन्तु दूसरे आपकी अपेक्षा कम ज्ञानवान होने से आपके समान कर्म जड़ता को दूर नहीं कर सकते हैं यह बात अनुभव सिद्ध है। उसमें किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसलिए आपको जड़ता को दूर करने वाले

सूर्य रूप में कहा है।

अन्यथा विभूतिरूपस्य रवेः कर्मजाड्यप्रवर्तकत्वमस्य तन्निवर्तकत्वमिति महद्वैलक्षण्य। मतस्तदुक्तिर्व्यर्था स्यात्।

यद्यपि विभूति के समान रवि कर्ममार्ग में जड़ता को बढ़ाने वाला है, जबकि आप जड़ता को दूर करने वाले हैं, इसलिए विभूति रूप सूर्य की अपेक्षा आप एकदम विलक्षण हैं। प्रतिदिन उदयमान सूर्य से ठंड इत्यादि दूर होने में जिस प्रकार प्रमाण की अपेक्षा नहीं होती है, इसी प्रकार कर्मजड़ता को दूर करने में आपको प्रमाण की कोई अपेक्षा नहीं होती है।

ननूष्णांशुत्वोक्तौ भक्ततापकरत्वं भवेदित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आप सूर्यरूप होने से भक्त को ताप नहीं देंगे ? ऐसे प्रश्न के उत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

कई अज्ञानी जीव कर्म मार्ग की ओर आकृष्ट होकर कर्मजड़ बन जाते हैं। वो अपनी जिंदगी के उत्तम वर्षों को ऐसी ही कर्मजड़ता में व्यर्थ नष्ट कर देते हैं, इसीलिए श्री हरिरायजी कहते हैं कि

'काहेको देह दमत, साधन करी मूरख जन,
विद्यमान आनंद त्यज, चलत क्यों कुपाथे'

भक्ति का विद्यमान आनंद छोड़कर, कर्मजड़ता की दिशा में जाने वाले अज्ञानी जीवों को आप वहाँ से वापस मोड़कर ले आते हैं, इसीलिए आपकी तुलना यहाँ सूर्य के साथ की गई है।

जिस प्रकार सूर्य रात्रि का अंधकार दूर करके प्रकाश देता है एवं रात्रि में बढ़ी हुई ठंडी को दूर करके उष्मा (गर्मी) देता है।

उसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी जीवों की अज्ञानवश प्रकट होने वाली कर्मजड़ता को दूर करके भक्ति का प्रकाश देते हैं। देहदमन रूपी ठंड से दुःखी होने वाले जीवों को भक्ति की उष्मा का अलौकिक आनंद देते हैं।

सूर्य की तुलना में अग्नि इत्यादि भी ठंड को दूर कर सकते हैं, परन्तु सूर्य के जितनी शक्ति अग्नि इत्यादि में नहीं है, इसी प्रकार दूसरे भी जीव का अज्ञान एवं दुःख को दूर करने का प्रयास करते हैं, परन्तु वे श्रीगुसांईजी की तुलना में नहीं आ सकते हैं।

यहाँ श्रीगुसांईजी की तुलना सूर्य के साथ करते हुए टीकाकार व्यतिरेक अंलकार का उपयोग करते हैं। सूर्य की अपेक्षा भी श्रीगुसांईजी उत्तम है ऐसा समझाते हैं। सूर्य भगवान की विभूति है, इसलिए सूर्य जगत की ठंडी और अंधकार को दूर करता है, परन्तु वह लोगों के हृदय में रहने वाली कर्मजड़ता को दूर नहीं कर सकता है, बल्कि वह कर्मजड़ता को बढ़ाता है, जिससे लोग सूर्योपासना आदि करते हुए दिखाई देते हैं, जबकि श्रीगुसांईजी लोगों के हृदय में रहने वाले अज्ञान को और कर्मजड़ता के दुःख को दूर करके भक्ति का प्रकाश करने वाले अलौकिक सूर्य हैं, क्योंकि आप साक्षात् भगवान् हैं, इसलिए आप सूर्य की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हैं। यह बात अनुभव सिद्ध होने से उसे विशेष प्रमाणों की जरूरत नहीं है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

महेसाणा जिले में स्थित बड़नगर में दामोदरदास झा नाम के एक नागर ब्राह्मण रहते थे। वे वैष्णवों को 'टीलवा' कहकर हमेशा उन्हें धुत्कारते थे और उनकी मजाक उड़ाते थे एवं अपनी

पंडिताई के मद में छके हुए रहते थे। वे वैष्णवों से कहते थे कि, 'तुम्हारा सम्प्रदाय वेदमूलक नहीं है।' वैष्णव जहाँ-जहाँ कीर्तन या भगवद्वार्ता करते थे वहाँ-वहाँ वे पहुंच जाते थे और मायावाद के सिद्धांतों की बात करते थे।

एक बार श्रीगुसांईजी बड़नगर पधारे। वैष्णवों ने दामोदर झा के विषय में उनसे बात करी। तब आपने आज्ञा की, 'कौन कहता है कि अपना धर्म वेदमूलक मार्ग नहीं है ? इस मार्ग को श्रीमहाप्रभुजी ने प्रकट किया है, इसलिए यह सर्वोपरि है।'

आपने दामोदर झा को एवं अन्य पंडितों को शास्त्रार्थ करने के लिए बुलाया। शास्त्रचर्चा में सभी पंडित निरुत्तर हो गए। वे सब शरमा कर अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन दामोदरदास झा श्रीगुसांईजी के पास में आए और विनती करी, 'महाराज ! मुझे कृपा करके आप शरण में ले लीजिये और मेरा अंगीकार करिये।' आपने झा को सेवक बनाया एवं भक्ति का दान दिया। सभी पंडितों ने दामोदरदास झा से पूछा, 'तुमने यह क्या किया ?' तब दामोदरदास झा ने कहा, 'अब तक तो मैं कुछ जानता ही नहीं था, केवल छिलकों को कूट रहा था। श्रीगुसांईजी साक्षात् सूर्य हैं वे केवल अंधकार को ही दूर नहीं करते, अपितु प्रकाश भी फैलाते हैं। उन्होंने मेरी कर्मजड़ता को दूर किया है। आज मुझे समझ में आया है कि जो कुछ उत्तम है वह सब इस मार्ग में ही है।'

कीर्तन–संगति :

(राग-हमीर)

गये पाप ताप दूर देखत दरस परस चरन।

हौं तो एक पतित तिहारो पतितपावन बिरद हो तुम जगत के उद्धरन॥१॥

स्तुति सेष कर न सके सकल कला गुननिधान
जानत हौं तिहारी सब विध अनुसरन।
छीतस्वामी गिरिवरधर तैसेई श्रीविठ्ठलेस हौं
तो तिहारी जन्म जन्म सरन॥२॥

भक्तनेत्रसुधाकराय नमः

(३२) भक्तनेत्रसुधाकरः = आप भक्तों के नेत्रों के लिए चंद्ररूप हैं *= भक्तनेत्रसुधाकराय नमः।*

विवरण :

भक्तनेत्राणां स्वरूपामृतेन तापहारकत्वात्सुधाकरः शीतांशुरित्यर्थः। विरुद्धधर्मद्वयाश्रयत्वं न विरुद्धं, भगवत्त्वात्।

आप भक्तों के नेत्र को स्वरूपामृत का दान करके, उनका ताप हरण करने वाले हैं, इसलिए आप चंद्ररूप हैं। भक्तों की कर्मजड़ता को दूर करने में आप सूर्यरूप होने पर भी भक्तों के नेत्र में अमृत बरसाने वाले चंद्रमा के समान है। भगवान में शीत, उष्ण इत्यादि के समान उभय विरुद्ध धर्म भूषण रूप में रहते हैं।

नन्वस्य वल्लभनन्दन इति नाम्ना तद्गृहे प्राकट्यमुक्तं, तत्किं देवक्यां गृहे कृष्णस्येव नृसिंहादेरिव वाकस्मादेवेत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

श्रीमहाप्रभुजी के यहाँ आपका प्राकट्य हुआ। वह श्रीदेवकीजी के यहाँ श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ उसी प्रकार हुआ था कि श्रीनृसिंहजी के समान अचानक हुआ था ? इस प्रश्न का जवाब देते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी साक्षात् भगवद्स्वरूप हैं इसलिए जिस प्रकार

भगवान में विरुद्ध धर्म रहते हैं उसी प्रकार श्रीगुसांईजी में भी विरुद्ध धर्म रहते हैं। शीत एवं उष्ण जैसे उभय विरोधी गुण आपमें एकसाथ रहते हैं। इसलिए आप भक्तों के हृदय में रहने वाली कर्मजड़ता को काटने वाले सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं। कर्मजड़ता में से मुक्त होकर भक्ति में लीन होने वाले भक्तों के प्रति आप चंद्रमा के समान अमृत बरसाते हैं इसलिए जब भक्त के नेत्र भक्तिपूर्वक आपके दर्शन करते हैं, तब आप अपने नेत्रों के द्वारा उस भक्त को अपने स्वरूपानंद का दान करके, उसके त्रिविध तापों को दूर करने वाले अमृत की वृष्टि करते हैं। यह दोनों विरोधी गुण आपके लिये भूषणरूप हैं। आपका उग्र प्रताप दोनों ही नामों में प्रकट होता है।

श्रीगुसांईजी ने श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप का गुणगान गाते हुए कहा है कि, 'उष्णैकस्वभावोप्यतिशिशिरवचः कुंजपीयूषवृष्टिः।' इसी स्वरूप के दर्शन यहाँ श्रीगुसांईजी में भी होते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी अडेल में बिराज रहे थे। तब आपने चाचा हरिवंशजी को आज्ञा की कि, 'तुम राजनगर जाओ।' चाचाजी ने विनती करी, 'राज, आपके चरणारविंदों को छोड़कर मैं कहा जाऊँ ? मैं आपके बिना नहीं रह सकूंगा।' तब आपने आज्ञा की, 'तुम असारवा में भाईला कोठारी के यहाँ रहना, मैं तुमको वहाँ नित्य दर्शन देऊंगा।'

इस प्रकार से आप असारवा में भाईला कोठारी के यहाँ चाचा हरिवंशजी को नित्य दर्शन देते थे।

माणेकचंद एवं उनकी स्त्री दोनों श्रीगुसांईजी की शरण में

आए, तब उन्होंने श्रीगुसांईजी को अपना सर्वस्व समर्पित किया। आप जब गोकुल पधारने लगे, तब माणकचंद एवं उनकी स्त्री भी साथ में चले कुछ दूर जाकर आपने आज्ञा की, 'अब तुम वापस मुड़ जाओ।' माणेकचंदजी चुप रहे, परन्तु उनकी पत्नी ने कहा, 'महाराज! अब हम कहाँ जा सकते हैं? हमको आपके चरण कमल के सिवाय अन्य कोई भी आश्रय नहीं है।' श्रीगुसांईजी ने उनको बहुत समझाया, तथापि वे नहीं माने। उन्होंने कहा, 'महाराज! मुझे आपके घर की जो भी टहेल सौंपेंगे मैं उसको करूंगा। आप यदि कंडे थापने का काम देंगे तो मैं कंडे थाप दूंगा, परन्तु यदि हमें अपने साथ न ले जा सकें तो हमें किसी के यहाँ भेज दीजिये तथा उससे जो पैसे प्राप्त हों वे लेकर आप पधारिये। आप हमें जिनके घर बेचेंगे उनके घर की चाकरी हम अच्छी तरह से करेंगे। आपके चरण कमल के सिवाय हमें अन्य कोई भी आश्रय नहीं है।'

श्रीगुसांईजी ने उनको खूब समझाकर कहा, 'तुम दोनों अपने घर जाकर श्रीठाकुरजी की सेवा करो। मैं श्रीजी द्वार में पांच महीने तक रहूंगा। पाँच महिने रहने वाला था, परन्तु अब मैं वहाँ चार महीने रहूंगा एवं वहाँ से आने-जाने में एक महिना तुम्हारे यहाँ रहूंगा।' ऐसा वचन देकर आपने उन दोनों को वापस भेजा। इस प्रकार आप भक्तों को स्वरूपानंद का दान करने वाले चंद्ररूप हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-रामकली)

सुनोरी आज नवल बधायो है।

श्रीवल्लभगृह प्रकट भये पुरुषोत्तम जायो है॥१॥

नैननको फल लेउ सखि भयो मनको भायो है।
गिरिधरलाल फेर प्रगटे हैं भाग्यते पायो है॥२॥
द्वार द्वार मोतिन-मनिमाला वंदनवार बंधायो है।
श्रीगोकुल में घरन घरन प्रति आनंद छायो है॥३॥
द्विजकुल-चंद उद्योत विश्वको तिमिर नसायो है।
भक्त चकोर मगन आनंदित हियो सिरायो है॥४॥
महाराज श्रीवल्लभ देत बहु दान मन भायो है।
जो जाके मन हुती कामना सो तिन पायो है॥५॥
जाके भाग्य फले या कलिमें तिन दरसन पायो है।
कर करुना श्रीगोकुल प्रकटे सुखदान दिवायो है॥६॥
पुष्टि-पथ मरजादा-थापन आपुतें आयो है।
अब आनंद बधायो है री दुःख दूर बहायो है॥७॥
रानी धनि-धनि भाग-सुहागभरी जिन गोद खिलायो है।
रसिक भाग्यतें प्रगट भये आनंद दरसायो है॥८॥

महालक्ष्मीगर्भरत्नं, कृष्णवर्त्मसमुद्भवः।
भक्तचिन्तामणिर्भक्तिकल्पद्रुमनवांकुरः॥९॥

शब्दार्थ : महालक्ष्मीगर्भरत्नम्= श्रीमहालक्ष्मीजी के गर्भ में से प्रकट होने वाले रत्न रूप हैं, *कृष्णवर्त्मसमुद्भवः* = कृष्णभक्ति के मार्ग को प्रकट करने वाले (अग्निकुमार हैं), *भक्तचिन्तामणिः=* भक्तों के लिए चिंतामणि स्वरूप हैं, *भक्तिकल्पद्रुमनवांकुरः* = भक्ति रूपी कल्पवृक्ष के नूतन अंकुर रूप हैं।

महालक्ष्मीगर्भरत्नाय नमः

(३३) महालक्ष्मीगर्भ-रत्नम्= आप श्रीमहालक्ष्मी माताजी के गर्भ में से उत्पन्न होने वाले रत्नरूप हैं = *महालक्ष्मी-गर्भरत्नाय नमः।*

विवरणः

महालक्ष्म्याः स्वमातुर्गर्भादुत्पन्नं रत्नमित्यर्थः । यथा रत्नमाकरस्थमेव भवति, परं कस्यचिद्भाग्योदये प्रकटं भवति, तथायमपि तत्र विद्यमान एव सर्वभक्तभाग्योन्नतौ प्रकटितो जातो, न तु प्राकृतप्रकारेण, 'आविरासीद्यथा प्राचीं दिशीन्दुरि'-त्यत्र श्रीकृष्ण एवेनि रत्नपदाशयः ।

आप श्रीमहालक्ष्मी माता के गर्भ में से प्रकट हुए रत्नरूप हैं, जिस प्रकार खदान में रहने वाला रत्न किसी भाग्यशाली के लिए प्रकट होता है । इसी प्रकार आप सदा बिराजते होने पर भी आपके भक्तों के भाग्य के उदय के लिए भूतल पर प्रकट हुए हैं। आप केवल प्राकृत रूप से प्रकट नहीं हुए हैं।

ननु श्रीकृष्णस्तु देवक्यामाविर्भूय पुष्टिमार्गप्राकट्यं कृतवानेन किं कृतमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

श्रीदेवकीजी के द्वारा श्रीकृष्णचंद्र ने प्रकट होकर पुष्टि मार्ग का प्राकट्य किया । इसी प्रकार आपने क्या किया ? इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी का प्राकट्य लौकिक बालक के समान नहीं हुआ है। पंढरपुर में मित्रभाव से श्रीविट्ठलनाथजी ने श्रीमहाप्रभुजी को आज्ञा की थी कि, 'आप गृहस्थाश्रम अंगीकार करिये।' वहीं पर श्रीनाथजी ने प्रकट होकर श्रीविट्ठलनाथजी की आज्ञा का समर्थन करते हुए आज्ञा की थी, 'मुझे आपके यहाँ प्रकट होना है इसलिए आप विवाह करिये।' भगवद् आज्ञा को शिरोधार्य किया और श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीमहालक्ष्मीजी के साथ लग्न किये थे।

श्रीगुसांईजी के प्राकट्य के पूर्व पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए आप वृंदावन पधारे थे, तब वहां पर श्री बलदेवजी एवं श्रीकृष्ण को बालस्वरूप में आपके समक्ष खेलते हुए देखा था, इसलिए आपने निश्चय किया कि अब प्रभु के प्राकट्य का समय समीप आ गया है। पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करके आप अडेल पधारे, तब फागन वदी नौमी की रात्रि को आपने पद्मनाभदासजी को आज्ञा की थी कि, 'श्रीमहालक्ष्मीजी प्रयाग में बिराज रहे हैं, उन्हें इसी समय यहाँ पधरा लाओ।' पद्मनाभदासजी श्रीमहालक्ष्मीजी को पधराने के लिये श्रीयमुनाजी के किनारे पर गये, तब वहाँ कोई नाव या नाविक नहीं था, तब स्वयं श्रीनाथजी नाव लेकर पधारे एवं पद्मनाभदासजी श्रीमहालक्ष्मीजी को अड़ेल पधरा लाये, तब से नवमें मास में मगसर वदी नौमी के दिन आपका प्राकट्य चरणाट में हुआ।

प्रभु के प्राकट्य का वर्णन करते हुए श्रीभागवतजी कहते हैं कि, 'पूर्व दिशा में जिस प्रकार चंद्र का उदय होता है, इसी प्रकार देवकीजी के गर्भ में से प्रभु प्रकट हुए। पूर्व दिशा में से चंद्र आता है, पूर्व दिशा में चंद्र उत्पन्न नहीं होता है, इसी प्रकार श्रीमहालक्ष्मीजी के गर्भ द्वारा श्रीविट्ठलेश बाहर पधारे थे। लौकिक बालक की भाँति आपका जन्म नहीं हुआ है, इसलिए श्रीमहालक्ष्मीजी के गर्भ में से प्रकट होने वाले आप रत्न रूप हैं। लौकिक मनुष्य आपके अलौकिक चरित्र को नहीं समझ सकते हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-आसावरी)

पौष कृष्ण नवमीको सुभ दिन पूत अक्काजू जायो हो।
सुन-सुन निजजन सब आनंदे हरखत करत बधाये हो ॥१॥

नारदादि ब्रह्मादिक हरखे शुकमुनि अति सचु पाये हो।
श्रीभागवत विवेचन करके गूढ़ अर्थ प्रगटाये हो ॥२॥
कलिके जीव उद्धारन कारन द्विज वपु धर भुव आये हो।
अति उदार श्रीलक्ष्मणनंदन देत दान मन भाये हो ॥३॥
करत वेद ध्वनि विप्र महामुनि जातकर्म करवाये हो।
मानिकचंद श्रीविट्ठलप्रभुके विमल विमल यस गाये हो ॥४॥

कृष्णवर्त्मसमुद्भवाय नमः

(३४) कृष्णवर्त्मसमुद्भवः = आपके द्वारा श्रीकृष्ण-संबंधी मार्ग का सुंदर रीति से प्राकट्य हुआ है = *कृष्णवर्त्म-समुद्भवाय नमः।*

विवरणः

कृष्णस्य फलरूपस्य वर्त्म स्वप्रापको मार्गः पुष्टिमार्गस्तस्य सम्यगुद्भवः प्राकट्यं यस्मादिति स तथा। कृष्णवर्त्मनो वह्नेः सकाशात्समुद्भवो यस्येति वा, तेनाग्निकुमारत्वमुक्तं भवति।

आपने श्रीकृष्णसंबंधी मार्ग अर्थात् पुष्टि मार्ग को सुंदर रीति से प्रकट किया है। 'कृष्णवर्त्म' अर्थात् अग्नि, 'अग्नि' अर्थात् वैश्वानर। श्रीमहाप्रभुजी से आपका प्राकट्य हुआ है, इसलिए आप 'अग्निकुमार' हैं।

नन्वेतत्प्रवर्त्तितपुष्टिमार्गवृत्तानां प्रभुविषयकमनोरथ-बाहुल्यात्कथं तत्पूर्तिरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

पुष्टिमार्गीय भक्तों के भगवान संबंधी बड़े-बड़े मनोरथों को आप किस प्रकार पूरा करेंगे ? इसके जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थः

इस नाम के टीकाकार ने दो अर्थ बतलाये हैं। 'कृष्णवर्त्म' अर्थात् कृष्णसंबंधी मार्ग अर्थात् पुष्टिमार्ग। आपके द्वारा पुष्टि मार्ग प्रकट हुआ है। श्रीमहाप्रभुजी के द्वारा प्रकट किया हुआ पुष्टिमार्ग का विस्तार आपके द्वारा हुआ है। इसलिए आप पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक हैं। जिस प्रकार देवकीजी के यहाँ प्रकट होकर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गोद लेते हुए गीता द्वारा निर्गुण भक्ति मार्ग रूपी पुष्टि मार्ग के सिद्धांतों को समझाया था उसी प्रकार आपने भी प्रकट होकर पुष्टिमार्ग के स्वरूप विशेष को प्रकाशमान किया है।

'वर्त्म' शब्द का दूसरा अर्थ है अग्नि, 'कृष्णवर्त्म' अर्थात् अग्नि। हमारे यहाँ अलौकिक अग्नि-वैश्वानर स्वरूप में श्रीमहाप्रभुजी बिराजते हैं। श्रीमहाप्रभुजी ने 'श्रीसुबोधिनीजी' के प्रारंभ में आप वैश्वानर स्वरूप से बिराजते हैं ऐसी स्पष्ट आज्ञा की है। इसलिए 'श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र' में भी आपका 'वैश्वानर' ऐसा नाम है।

श्रीगुसांईजी का प्राकट्य श्री महाप्रभुजी से हुआ है। इसलिए आप अग्नि में से प्रकट हुए हैं। अतएव आप अग्निकुमार हैं ऐसा दूसरा अर्थ भी यहाँ निकलता है। इसलिए 'श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र में' श्रीगुसांईजी अपने आपको *'अग्निकुमार'* कहते हैं।

इसके पहले के नाम में आपके मातृचरण का स्मरण करवाया तो इस नाम में आपको पितृ चरण का स्मरण भी करवाया है। इस प्रकार एक नाम के दो अर्थ यहाँ प्रकट होते हैं।

'श्री वल्लभाख्यान' में श्री गोपालदासभाई गाते हैं कि :

आप सेवा करी शीखवे श्रीहरि, भक्ति पक्ष वैभव सुदृढ़ कीधो,
आपनी लीला ते बधी पोते कही, उच्चार आनंद अधिक दीनो

आपने सेवक भाव से सेवा की। 'वेणुगीत', 'युगलगीत' इत्यादि अपनी लीलाओं का रहस्य भक्तों को सुनाकर कथारस का दान किया। पुष्टि जीवों को भगवद् मार्ग का सुगम मार्ग बतलाया।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी के पास तीन आदमी आए। उन्होंने श्रीगुसांईजी को शरण में लेने की विनती करी। श्रीगुसांईजी उनमें से एक से पूछा, 'तुम्हें काहे का शौक है ?' एक ने कह 'मुझे वस्त्रों का शौक है।' दूसरे ने कहा, 'मुझे इत्र का शौक है तीसरे ने कहा, 'मुझे किसी भी चीज का शौक नहीं है श्रीगुसांईजी ने पहले व दूसरे आदमी को तो शरण में लिया औ तीसरे व्यक्ति को शरण में लेने के लिये मना किया। आप आज्ञा की, 'तुम्हें जिस चीज का शौक हो वही तुम प्रभु को अंगीक करवाकर उनके लाड लड़ाओ, यही पुष्टि भक्तों का कर्त्तव्य है परन्तु यदि तुम्हारा हृदय नीरस है, वैरागी है तो तुम प्रभु को क लाड लड़ा सकोगे ?' इस प्रकार आपने कृष्ण भक्ति का रसम मार्ग दैवी जीवों को बतलाया।

कीर्तन–संगति :

(राग-देवगंधार)

श्री वल्लभगृह सदा बधाई।
जबते प्रगट भये श्री विठ्ठलदास परमनिधि पाई॥१॥

भक्ति भागवत कथा कीर्तन महा महोत्सव प्रकट गुसांई।
कल्पवृक्ष प्रफुलित सुखदाई नंदसुवन वृन्दावनराई॥२॥
परम भजन पुरुषोत्तम लीला प्रमुदित देव मुनिजन गाई॥
लाल गोवर्धनधारी पदरज लालदास बलि जाई॥३॥

भक्तचिंतामण्यै नमः

(३५) भक्तचिंतामणि = आप भक्तों के लिए चिंतामणि स्वरूप हैं= *भक्तचिंतामण्यै नमः।*

विवरण :

भक्तानां चिन्तामणिश्चिन्तितार्थदातेत्यर्थः । चिन्तितार्थ-दातृत्वेन न भक्तानां प्रार्थनापेक्षेति भावः।

आप भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले चिंतामणि स्वरूप हैं, जिस प्रकार चिंतामणि चिंतित अर्थ को प्रदान करता है, उसी प्रकार आप भक्तों के चिंतित अर्थ को प्रदान करते हैं। इसलिए भक्तों को प्रार्थना करने की जरूरत नहीं पड़ती।

ननु चिन्तितमेव ददातीति प्रार्थितं तु न ददातीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या आप भक्तों को उनकी चिंतित वस्तु को ही देते हैं ? भक्तों ने जो प्रार्थना की वह नहीं देते ? इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

चिंतामणि एक रत्न है, उसके लिये ऐसा कहा जाता है कि जिसके पास चिंतामणि होता है वह व्यक्ति अपने मन में जिस

वस्तु को प्राप्त करने का विचार करता है वह उसे तुरन्त ही मिल जाती है। उसको पाने के लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता है। इस अर्थ में आप भक्तों के लिए चिंतामणिस्वरूप हैं। भक्त अपने मन में भगवद्विषयक जो कोई मनोरथ करते हैं उन मनोरथों को आप तुरंत ही पूर्ण करने की कृपा करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी के एक सेवक कृष्ण भट्ट ने श्रीनाथजी से विनती करी, 'महाराज! मुझे ब्रज भक्तों के साथ आपकी लीला के दर्शन करवाइये। तब श्रीनाथजी ने आज्ञा की, 'ऐसे दर्शन लौकिक देह से नहीं हो सकते, अलौकिक देह से ही होते हैं।'

कृष्ण भट्ट को श्रीनाथजी दर्शन देते थे। उनके साथ बातें भी करते थे। अपने चरणारविंद को ऊंचा करके कृष्ण भट्ट को चरणस्पर्श भी करवाया था। ऐसे कई अलौकिक सुखों का अनुभव उन्हें करवाया था। ऐसा होने पर भी कृष्ण भट्ट को व्रज भक्तों के साथ प्रभु के दर्शन करने की इच्छा प्रकट हुई। श्रीनाथजी ने मना किया, इसलिए श्रीगुसांईजी को उन्होंने विनती करी, तब श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, 'श्रीनाथजी तो बालक हैं, तुम इस तरफ देखो।' कृष्ण भट्ट ने उस तरफ देखा तो कोटानकोटि व्रजभक्तों के यूथ श्रीनाथजी के शय्या मंदिर की सेवा कर रहे थे। ऐसे अलौकिक दर्शन करके कृष्ण भट्टजी चकित हो गए एवं अपना देहानुसंधान भूल गये। श्रीगुसांईजी ने लीला को गुप्त किया और कृष्ण भट्ट को सावधान किया। इस प्रकार आप 'भक्तचिंतामणि' हैं।

कीर्तन–संगति

(राग-गौरी)

श्री गोकुलपति नमो नमो।

भक्तहेत प्रगटे व्रजमंडन व्रजनंदनंदन जय नमो नमो ॥१॥

तन घनश्याम लाल वर सुन्दर बकीविदारण नमो नमो।

सकट विभंजन वच्छविमोचन निजजन पोषन नमो नमो ॥२॥

तृन खलमारन असुरसंहारन विश्वरूपदर्शन नमो नमो।

कालियमर्दन दावानलअर्दन यमलार्जुनतारन नमो नमो ॥३॥

व्रजफलदायक सब जगनायक वरुनविमोचक नमो नमो।

सुरपतिमानहरन व्रजरक्षक गोवर्धनधर नमो नमो ॥४॥

व्रजवनितामनरंजनकारक रासविलासी नमो नमो।

सुदर्शनधारक सब सुखदायक कोटि मदनद्युति नमो नमो ॥५॥

बंसीधारी कंसप्रहारी जगदुःखहारी नमो नमो।

सब गुन जय जय श्री वल्लभसुत बलि गोविंद प्रभु नमो नमो ॥६॥

भक्तिकल्पद्रुमनवांकुराय नमः

(३६) भक्ति-कल्पद्रुमन-वांकुरः = आप भक्तिरूपी कल्पवृक्ष के नए अंकुर के रूप में हैं =*भक्तिकल्पद्रुम-नवांकुराय नमः।*

विवरण :

भक्तिरेव कल्पद्रुमरूपा सर्वार्थियात्री, तस्या नवो नूतनोंकुर इत्यर्थः। अयं भावः। इयदवधिर्भक्तेर्बीजमात्रमेव स्थितं नांकुरो जातस्तदभावान्न कल्पद्रुमरूपता तस्यांकुराधीनत्वातोस्यत-

दंकुरत्वोक्त्या यत्रैदंकुरितभक्तेरपि कल्पद्रुमत्वात्प्रार्थितार्थ-दातृत्वं तत्रास्य किं वक्तव्यमिति ज्ञाप्यते, अतश्चिन्तामपि, चिन्तितदाता, कल्पद्रुमः प्रार्थितदातेत्येतावान्विशेष इत्युभय-रूपतोक्ता ।

आप भक्तिरूपी कल्पवृक्ष के नए अंकुर के रूप में हैं। अब तक भक्ति का मात्र बीज ही था, उसमें से अंकुर प्रकट नहीं हुआ था। अंकुर के बिना वृक्ष की आशा किस प्रकार रखी जाए ? अंकुर के बाद ही वृक्ष होता है। भक्ति रूपी कल्प वृक्ष का अंकुर प्रकट होने से भक्त की सभी प्रार्थनाएं पूर्ण हो जाती है तो फिर भक्ति का पूर्ण प्राकट्य हो उसमें कहना ही क्या ? माँगा हुआ देने में आप कल्प वृक्ष के समान हैं, जबकि विचार किया हुआ देने में आप चिंतामणि रूप हैं। इस प्रकार आपके उभय रूप का निरूपण किया गया है।

ननु स्थितिरस्य कुत्रेत्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

ऐसे आप कहाँ बिराजते हैं ? इस प्रश्न के जवाब में अब दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

अब तक भूतल में भक्तिरूपी बीज विद्यमान था, परन्तु उस बीज में अंकुर नहीं फूटा था जब तक बीज में अंकुर नहीं फूटता है, तब तक वह बीज वृक्ष रूप में प्रकट होगा ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। जब बीज में से अंकुर फूटे तब ही इसमें से वृक्ष बनेगा, ऐसा निश्चित रूप से कह सकते हैं।

श्रीगुसांईजी भक्तिरूपी कल्पवृक्ष के नव अंकुर स्वरूप में प्रकट हुए हैं। आप अंकुर के रूप में होने पर भी भक्तों द्वारा मांगी

हुई सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, तो फिर भक्तिरूपी कल्पवृक्ष का पूर्ण प्राकट्य हो, इसमें तो कहना ही क्या ?

श्री गोपालदासभाई 'श्रीवल्लभाख्यान' में गाते हैं :

पुत्रपौत्रादिक सुख शुं कहुं, जो तु मुख माहि एक रे रसना,
श्री विठ्ठल कल्पद्रुम फूल्यो, जेनी शाखा प्रसरी अनेक रे रसना.

'संप्रदाय कल्पद्रुमं' में भक्त कवि कहते हैं कि :

श्रीवल्लभकुल कल्पतरु फूले ही फूले जो अग्र,
भुर्विश्वती पदपदमलों वसत अनेकना नग्र,
देवोमन पद पदम रति जो लगी हृदय रहत,
तो लगी भूपति भू विषे फूल ही अनंत।

इस प्रकार यह कल्पद्रुम कलियुग में सर्व कला सहित अर्थात् अकुंर, दल, शाखा, पत्र, पुष्प एवं फल सहित स्वतंत्र भक्ति रूप में प्रकट हुआ है। उनकी शाखाओं के रूप में पुत्र, पौत्रादिक एवं वर्तमान में विद्यमान उनके वंशज दैवी जीवों को पुष्टि भक्ति का दान दे रहे हैं।

कीर्तन–संगति :

श्रीवल्लभ सुप्रताप फलित लीला गुण भाव ललित प्रकट भये
श्री विठ्ठलेश-गोकुल सुखरासौ।
नख शिख शोभा अनूप कलियुग उद्धरण भूप रूप
सुधा पान करत नयनन-ब्रजवासी ॥१॥
दीनबंधु कृपा करण चितवनि त्रैतापहरण
छिनुछिनु आनंद कंद अंबुज मुखहांसी
चतुर्भुज प्रभु युगल रूप नंद नंदन घोष नारि विहरत
एक साथ सदा गिरि गोवर्धनवासी ॥२॥

श्रीगोकुलकृतावासः कालिन्दीपुलिनप्रियः ।
गोवर्द्धनागमरतः प्रियवृंदावनाचलः ॥१०॥

शब्दार्थ : श्रीगोकुलकृतावासः =आपने श्री गोकुल में वास किया है, *कालिन्दीपुलिनप्रियः*=आपको श्री यमुनाजी का तट प्रिय है, *गोवर्द्धनागमरतः*=आपको श्री गोवर्धन आना प्रिय लगता है, *प्रियवृंदावनाचलः*= आपको श्री वृंदावन और श्री गिरिराज प्रिय हैं ।

श्रीगोकुलकृतावासाय नमः

(३७) श्रीगोकुलकृतावासः = आपने गोकुल में वास किया है = *श्रीगोकुलकृतावासाय नमः ।*

विवरण :

श्रिया लक्ष्म्या सह गोकुले कृत आवासो गृहं येन स तथा । यथा 'जयति तेधिकं जन्मना व्रजे' त्यत्र क्रिया आश्रयणं तथात्रापि, इति तत्साहित्यमुक्तं, श्रीः शोभा, तद्युक्तं गोकुलमिति वा ।

श्री गोपीजन कहते हैं कि, 'आपने श्रीलक्ष्मीजी के साथ गोकुल में वास किया है, इसलिए आपके जन्ममात्र से ही व्रज अधिक जय प्राप्त करता है और श्रीलक्ष्मीजी भी व्रज में सदैव निवास करके रहती हैं। इसी प्रकार आपने भी श्रीलक्ष्मी के सहित गोकुल में वास किया है । यहाँ 'श्री' शब्द का एक दूसरा भी अर्थ है शोभायुक्त । आपने शोभायुक्त ऐसे गोकुल में वास किया है ऐसा भी कहा जा सकता है ।

ननु तत्रैव स्थितो को हेतुरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

आप गोकुल में ही क्यों रहे ? इस प्रश्न के प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं ।

भावार्थ :

'श्रीवल्लभाख्यान' में गोपालदासभाई गाते हैं कि :

पूरण ब्रह्म श्रीलक्ष्मणसुत पुरुषोत्तम श्री विट्ठलनाथ।

श्री गोकुलमां प्रगट पधार्या स्वजन कीधा सनाथ।

श्रीमद् भागवत में भी कहा गया है कि, 'हरे निवासात्मगुणै रमाक्रीडनभूः ।' श्रीलक्ष्मीजी सहित आप गोकुल में प्रत्यक्ष बिराजते हैं। इसी प्रकार से श्रीगुसांईजी ने भी हमेशा के लिये श्रीगोकुल में बिराजना पसंद किया। आप हर रोज श्रीगोवर्धनधर की सेवा के लिए जतीपुरा पधारते थे, फिर भी आप हमेशा श्रीगोकुल में ही बिराजते थे। किसी वैष्णव ने आपसे विनती की कि, 'कृपानाथ ! आप प्रतिदिन जतिपुरा पधारने का श्रम लेते हैं, उसकी अपेक्षा श्रीनवनीतप्रियाजी को श्रीनाथजी के साथ पधरावो एवं आप वहाँ बिराजो तो कैसा हो ?' तब आपने कहा, 'जहाँ मन हो, वहीं पर तन भी होता है और जहाँ तन होता है वहीं पर मन भी होता है। जब मैं नाथद्वारा जाता हूँ तब मेरा मन गोकुल में रहता है। आपने श्रीमद् गोकुल का अलौकिक स्वरूपात्मक दर्शन करके 'श्री गोकुलाष्टक' स्तोत्र रचा, जिसमें आप आज्ञा करते हैं कि :

श्रीमद् गोकुलसर्वस्वम्, श्रीमद् गोकुलमंडनम्।
श्रीमद् गोकुलदृक्तारा, श्रीमद् गोकुलजीवनम्॥

यहाँ श्रीमद् गोकुल का एक दूसरा अर्थ भी विचार करने लायक है 'गो' अर्थात् इंद्रियाँ एवं 'कुल' अर्थात् समूह। इंद्रियों का समूह अर्थात् देह। आप प्रत्येक भक्त के देह में रहे हुए हृदय में बिराजते हैं; इसीलिए आप भक्त के प्राण आधार हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक क्षत्रिय वैष्णव ने एक दिन किसी दूसरे वैष्णव के मुख से श्रीगुसांईजी द्वारा रचित 'श्रीगोकुलाष्टक' की टीका सुनी और उन्होंने निश्चय किया 'एकबार अवश्य श्री गोकुल जाना चाहिये।' वे श्रीगोकुल आए। श्रीगोकुल के अलौकिक दर्शन करते ही उनको देहानुसंधान नहीं रहा। उन्हें 'श्रीगोकुलाष्टक' में श्रीमद् गोकुल का जैसा स्वरूप सुना था ऐसे ही साक्षात् दर्शन हुए। उन्हें यह निश्चय हो गया कि श्रीगुसांईजी श्रीगोकुल में नित्य निवास करके बिराजते हैं।

बैठक–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी की बैठक श्रीगोकुल में है। वहाँ श्रीगिरधरजी और श्रीगोकुलनाथजी को श्रीगुसांईजी के साक्षात् दर्शन हुए थे। श्री गिरिधरजी गादी के सामने बिराजकर संध्यावंदन करते थे। वे गादी पर स्वयं नहीं बिराजते थे। एक दिन श्रीगोकुलनाथजी ने श्री गिरिधरजी को विनती की, 'दादा, आपको गादी पर बिराजने का अधिकार है, तो भी आप क्यों नहीं बिराजते हैं?' तब आपने आज्ञा की, 'मुझे इस बैठक में हमेशा गादी पर बिराजे हुए श्रीगुसांईजी के दर्शन होते हैं, तुम भी दर्शन करो।' तब श्रीगोकुलनाथजी को भी श्रीगुसांईजी संध्यावंदन करते थे ऐसे साक्षात् दर्शन हुए।

कीर्तन–संगति :

फिर व्रज वसो श्रीविट्ठलेश।

कृपा कर दर्शन दिखावो वह लीला वहवेश॥१॥

गाय बछरा लाय गोकुलगाम करो प्रवेश।
नंदनंदन आय प्रकटे अति उदार नरेश॥२॥
भक्तिमारग प्रकटकर कीयो जननकों उपदेश।
रच्यो रासविलास सुखनिधि गिरिगोवर्धनेश॥३॥
श्रीवल्लभनंदन असुर निकंदन विदित श्रुति सुरेश।
चतुर्भुज प्रभु घोष कुलको हर्यो सकल कलेश॥४॥

कालिंदीपुलिनप्रियाय नमः

(३८) कालिंदीपुलिनप्रियः= आपको कालिंदी का तट प्रिय है = *कालिंदीपुलिनप्रियाय नमः।*

विवरण :

कालिन्द्या यमुनायाः पुलिनं प्रियं यस्य स तथा, कालिन्दीपुलिने प्रियमभीष्टलीलासुखं यस्ये ति वा।

श्रीयमुनाजी का तट आपको अत्यंत प्रिय है, क्योंकि श्री यमुनाजी के तट पर इच्छित लीला सुख की प्राप्ति हो जाती है, इसीलिए आप श्री गोकुल में निवास करते हैं।

ननु तत्रैव स्थितिरन्यत्रापि वेत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आप हमेशा वहीं निवास करते हैं अथवा कहीं अन्यत्र भी पधारते हैं। इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी को श्रीयमुनाजी का तट अत्यंत प्रिय है, क्योंकि लीला में आपका दूसरा स्वरूप श्रुतिरूपा अन्यपूर्वा व्रज भक्तों के यूथाधिपति श्री चंद्रावलीजी का है। सारस्वत कल्प की लीला में महारास में प्रभु के आत्माराम होने पर भी स्वयं के द्वारा अंगों

से व्रजभक्तों के साथ रमण किया, तब व्रजभक्तों को सौभाग्य मद हो जाने से प्रभु अंतर्ध्यान हो गये। व्रज भक्तों ने प्रभु को बहुत खोजा, प्रभु की लीला का अनुकरण भी किया, फिर भी प्रभु के दर्शन नहीं हुए। इसलिए वे यमुनाजी के किनारे वापस पधारे, क्योंकि श्री यमुनाजी 'अति ही विख्यात सब बात इनके हाथ' रूप है। श्रीयमुनाजी के तट पर आकर कृष्ण दर्शन की लालसा से व्रज भक्तों ने रुदन करते हुए 'श्रीगोपीगीत' गाया। तब श्रीगोपीजनों के हृदय में से भावात्मक साक्षात् प्रभु हास्य भरे हुए मुखारविंद से प्रकट हुए एवं व्रज भक्तों को महारास के सुख का दान किया।

श्रीगुसांईजी अपने इस लीला स्वरूप का अवधारण करके हमेशा श्रीयमुनाजी के पुलिन पर बिराजना पसंद करते हैं, इसलिए आप दिन में तीन बार संध्यावंदन करने के लिये ठकुराणी घाट पर पधारते थे। आपने श्री यमुनाजी की स्तुति करते हुए 'श्रीयमुनाष्टपदी' भी गाई है। इस अष्टपदी को आप अडेल में बिराजते थे, तब अडेल में श्रीयमुनाजी के दर्शन करके गाई थी। इसके बाद आप ने हमेशा श्रीगोकुल में निवास किया, इसलिए आपको श्री यमुनाजी का तट अत्यंत प्रिय है।

कीर्तन–संगति :

जुरि चली हे वधाये श्रीवल्लभ गृह प्रकटे श्रीविट्ठलराय।
पूरन पुरुषोत्तम आनंदनिधि श्रीगोकुल सुखदाय॥१॥
चंदन शीतल द्वार धरत जगमोतिन चौक पुराये।
आगंन भवन अवास अवनिपर गोमय हरद लिपाई॥२॥

चित्रविचित्र रुचिर रुचि मंदिर वंदनवार बंधाई।
भेरि मृदंग ताल धुनि वाजत श्रवन सुनत सहेनाई॥३॥
मागध सूत भीर वंदिजन आंगन भवन भराई।
गोपी ग्वाल बाल सब व्रजजन झुंडन झुंडन आई॥४॥
मंगल कलश लिये व्रजसुंदरी आरती साज बनाई।
नाचत गावत आनंद बढ़ावत देत अशीश मनभाई॥५॥
मगन भई तन मन धन वारत निज पुर सुधि न रहाई।
हरद दूब अक्षत दधि कुंकुम सबनके शीश धराई॥६॥
सब मिलि छिरकत रंग परस्पर गोरस कीच मचाई।
धन्य दिवस धन्य रेन वार तिथि लग्न नक्षत्र निकराई॥७॥
धन्य श्रीगोकुल गाम ठाम व्रज यमुना पुलिन बसाई।
पौषमास कृष्ण नौमी तिथि प्रगटे श्रीगोकुलराई॥८॥
पंदरसें बहत्तर संवत्सर पत्री जन्म लिखाई।
श्रीवल्लभकुल धनि प्रगट भये श्रीविट्ठलनाथ गुसांई॥९॥
धन्य सुहाय भाग्य परिपुरन कुखिजू शुभ अक्काई।
जिनजायो श्रीगोकुलकेपति व्रजकी तपत बुझाई॥१०॥
वहेजात वसुधा भवसागर करगहि पार लगाई।
द्वापर वसुधा भार हर्यो हरि मिल मानो सुरराई॥११॥
द्विज कुल प्रकटे कलिमल खंडन नाना वाद मिटाई।
विष्णुस्वामीपथ प्रगटे अलिकार पुष्टि मर्यादा चलाई॥१२॥
तिलक भाल उरमाल पाल प्रति भगवत भाव दृढ़ाई।
गोपीजन हरखत आनंद पूरन प्रीति जनाई॥१३॥
रास विलास यह सुखसों रचिके चित हित रुचि उपजाई।
पुरुषोत्तम पूरन नववपु धरि लीला ललित दिखाई॥१४॥
रसिक शिरोमणि श्रीवल्लभसुत जन्म जन्म जस गाई॥१५॥

गोवर्धनागमरताय नमः

(३९) गोवर्धनागमरतः = आप गोवर्धन आने के लिये उत्सुक हैं *= गोवर्धनागमरताय नमः ।*

विवरण :

गोवर्धने आगमं-आगमनं तत्र रत उत्सुक इत्यर्थः ।

श्रीगोवर्धन गिरिराज में आने के लिए आप अत्यंत ही उत्सुक हैं।

ननु गोकुलस्थस्य तस्य तत्रागमने किं कारणमित्याशंक्य नामान्तरमाहुः ।

गोकुल में से श्रीगोवर्धन पधारने का कारण क्या है ? ऐसे प्रश्न के प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं ?

भावार्थ :

नित्य श्रीगिरिराज पधारने के लिए आप इतने आतुर हैं कि घोड़े पर सवारी करके आप वायु के वेग से पधारते हैं। उसका वर्णन करते हुए 'श्रीवल्लभाख्यान' में श्री गोपालदास भाई गाते हैं कि, *'तुरंग चाल्यो वायुवेगे उतावळो, जाणे नौका चाली सिंधु तरवा'* आपश्री गिरिराज का रसात्मक स्वरूप एवं उसमें रहने वाले समस्त लीला सामग्री को जानते हैं। इसलिए उसके नित्य दर्शन की आतुरता से पधारते हैं। आपकी कृपा से श्री गिरिराजजी आपके भक्त भी लीलात्मक स्वरूप के दर्शन सदैव से कराते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

कृष्ण भट्टजी ने एक कुनबी वैष्णव से कहा, 'श्रीगिरिराजजी रत्नमय हैं एवं श्रीगोविंदकुंड दूध से भरा हुआ है।' तब कुनबी

वैष्णव ने कहा, 'मुझे ऐसे दर्शन कभी नहीं हुए हैं। यह कुनबी वैष्णव व्रज में आए, तब उन्होंने श्रीगुसांईजी से विनती की, 'महाराज, मुझे कृष्ण भट्ट ने श्रीगिरिराजजी एवं श्रीगोविंदकुंड के अलौकिक स्वरूप की बात कही है, परन्तु ऐसे दर्शन मुझे कभी नहीं हुए हैं।' तब आपने आज्ञा की, 'तुम श्रीगिरिराजजी की तरफ देखो', कुनबी वैष्णव ने देखा तो उनको श्री गिरिराजजी रत्नखचित हों ऐसे दर्शन हुए तथा गोविंदकुंड दूध से भरा हुआ हो ऐसे दर्शन हुए।

बड़नगर के एक नागर ब्राह्मण श्रीगुसांईजी की शरण में आए थे। उन्होंने श्रीगुसांईजी को विनती करी, 'महाराज, मेरी जाति के सभी लोग बहिर्मुख हैं। मुझे वैष्णव हुआ ऐसा जानकर वे मुझे दुःख देंगे। तब श्रीगुसांईजी ने वैष्णव को एक गोवर्धन शीला दी और कहा, 'यदि कोई भी संकट तुझ पर आ पड़े तब तू श्रीगिरिराजजी को दूध से स्नान करवाकर अभ्यंग करना। यथाशक्ति सामग्री का भोग धरना।

'भावप्रकाश' में श्रीहरिरायजी आज्ञा करते हैं कि, 'दूध उज्ज्वल भक्तिरस का स्वरूप है। श्रीगिरिराजजी हरिदासवर्य हैं, इसलिए सदैव भक्तिरसमें स्नान करते हैं। इसलिए श्री ठाकुरजी को अत्यंत प्रिय हैं।

श्रीगिरिराजजी स्वयं भी भगवद् स्वरूप हैं। सारस्वत कल्प में आपने महान स्वरूप धारण करके, व्रज भक्तों की सामग्री आरोगी थी।

एक वैष्णव श्री गिरिराजजी पर चढ़ते थे, यह देखकर श्री गुसांईजी ने अपना मस्तक हिलाया। किसी दूसरे वैष्णव ने उसका कारण पूछा तब आपने आज्ञा की, 'श्रीगोवर्धन मणिमय साक्षात्

भगवद्स्वरूप हैं। इस मूर्ख को मालूम नहीं है, इसलिए वह इस प्रकार श्रीगिरिराजजी पर चढ़ रहा है। आपने ब्रह्मवैवर्तपुराण का प्रसंग कहा और श्रीगिरिराजजी के स्वरूप की महिमा को समझाया। श्री गिरिराजजी महान अलौकिक है। उनमें सम्पूर्ण लीलाएं विद्यमान हैं, इसलिए आप आनंदमय भगवद् स्वरूप हैं। इसलिए श्रीगुसांईजी श्रीगिरिराजजी पधारने में भी उत्सुक हैं।

कीर्तन–संगति :

गायनसों रति गोकुलसों रति गोवर्धनसों प्रीती निवाही।
श्रीगोपाल चरण सेवारति गोप सखा सब अमित अथाई॥१॥
गोवाणी जो वेदकी कहियत श्री भागवत भलें अवगाही।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल नंदनंदकी सब परछांई॥२॥

प्रियवृन्दावनाचलाय नमः

(४०) प्रियवृंदावनाचलः = आपको वृंदावन और श्री गोवर्धन प्रिय हैं *= प्रियवृंदावनाचलाय नमः।*

विवरण :

प्रियं वृंदावनमचलः श्रीगोवर्धनश्च यस्य स तथा।

प्रियं च तद्वृन्दावनं च, तत्राचलस्तद्विहाय नान्यत्र गच्छतीति वा। प्रियत्वदेवान्यत्रागमनमिति भावः।

आपको वृंदावन एवं 'अचल' अर्थात् श्री गोवर्धन प्रिय हैं। इस नाम का एक दूसरा अर्थ भी है। आपको प्रिय वृंदावन में आप अचल रीति से रहते हैं अर्थात् प्रिय वृंदावन को छोड़कर आप अन्यत्र नहीं पधारते हैं।

ननु तत्रागत्य किं करोतीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आप वहाँ पधारकर क्या करते हैं ? इस प्रश्न के जवाब में

अब दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्री गिरिराजजी की तलेटी में स्थित चंद्र सरोवर आदि वृंदावन है। वह प्रभु की नित्य परम रासस्थली है। वहाँ पर प्रभु अपने भक्तों सहित एक ही काल में अनेक लीलाएं करते हैं। 'वृंदावन' शब्द का एक अर्थ है वृंद+अवन। 'वृंद' अर्थात् गोपीजनों के यूथ तथा 'अवन' अर्थात् रक्षण करना। गोपीजनों के भाव का निरूपण करने वाले अथवा रक्षण करने वाले आप वहाँ बिराजते हैं।

श्री भागवत के दशम स्कंध में श्री शुकदेवजी कहते हैं कि, 'श्रीगोकुल में होने वाले उपद्रवों से झुंझलाकर भगवद् सुख के लिए किसी अन्य स्थल पर रहने के लिए नंदउपनंदों ने विचार किया और सभी ने मिलकर वृंदावन का यह स्थान पसंद किया। श्री वृंदावन, श्री गोवर्धन और श्री यमुनाजी ये तीनों नित्य लीला स्थल हैं, इसलिए श्रीगुसांईजी को यह स्थान अत्यंत प्रिय है। आप भावात्मक रूप से सदा सर्वदा वहीं बिराजते हैं, इसलिए जब आपको श्रीनाथजी का छह मास का विप्रयोग हुआ तब भी अन्य किसी स्थान पर न पधारते हुए आदि वृंदावन ऐसे चंद्र सरोवर पर ही आप अपने छह महीने के विरह समय में यहीं बिराजते थे।

कीर्तन–संगति :

ब्रजमें श्री विट्ठलनाथ बिराजें।
जिनको परम मनोहर श्रीमुख देखत ही अघ भाजें॥१॥
जिनके पद प्रताप तेजते सेवक जन सब गाजें।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रकटभक्त हित काजें॥२॥

गोवर्धनाद्रिमखकृन्महेन्द्रमदभित्प्रियः।
कृष्णलीलैकसर्वस्वः श्रीभागवतभाववित् ॥११॥

शब्दार्थ :

गोवर्धनाद्रिमखकृत् = श्रीगोवर्धन यज्ञ करने वाले, *महेन्द्रमदभित्प्रियः* = इन्द्र के गर्व को दूर करने वाले प्रभु जिनको प्रिय हैं ऐसे, *कृष्णलीलैकसर्वस्वः* = कृष्णलीला ही जिनका सर्वस्व है ऐसे, *श्रीभागवतभाववित्* = श्रीभागवत के भाव को जानने वाले।

गोवर्धनाद्रिमखकृते नमः

(४१) गोवर्धनाद्रिमखकृत् =श्री गोवर्धन संबंधी यज्ञ को करने वाले = *गोवर्धनाद्रिमखकृते नमः।*

विवरण :

गोवर्धनाद्रेः सम्बन्धी मखो यागो गोसवाख्याः पूर्वं भगवता यः कृतस्तं तद्दिने तथैव प्रतिवर्षं करोतीत्यर्थः।

जिस दिन, जिस प्रकार पूर्व में भगवान श्रीकृष्ण ने श्री गोवर्धन गिरिराज संबंधी गोसव नाम का यज्ञ किया था, उसी प्रकार से आप भी प्रतिवर्ष उस यज्ञ को करते हैं।

ननु भगवत्कृते मखे गोवर्धनेन साक्षाद्भुक्तमेतत्कृते तथैव नवेत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

भगवान के द्वारा किए हुए यज्ञ में साक्षात् श्री गोवर्धन ने आरोगा था। आपके द्वारा किए हुए यज्ञ में श्री गोवर्धन साक्षात् आरोगे या नहीं? इस प्रश्न के जवाब में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्री भागवत में श्रीगोवर्धन यज्ञ के प्रसंग में भगवान आज्ञा

करते हैं कि, 'यह ब्रज मेरा है और मैं ब्रज का नाथ हूँ, इसलिए मैं गोपी-ग्वालों की रक्षा आत्मयोग से करूंगा यह मेरा वचन है।' ऐसा कहकर आपने सात दिनों तक श्री गिरिराज को धारण किया और व्रज की रक्षा की थी एवं वैदिक गोसव यज्ञ भी किया था।

श्री गोपालभाई 'श्रीवल्लभाख्यान' में गाते हैं कि :

श्री पुरुषोत्तम स्वतंत्र क्रीड़ा लीला अचल विहार
सात दिवस गिरिधर कर धांर्यो वासव वृष्टि निवारी।

इस प्रकार श्रीगुसांईजी भी सारस्वत कल्प के पूर्ण-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का स्वरूप होने से आपने इसी समय भी निज भक्तों को सारस्वत कल्प की लीला के दरसन करवाए थे। वे ही श्री गोवर्धनधर भूतल पर दैवी जीवों के लिए प्रकट हुए हैं। इस प्रकार सारस्वत कल्प की लीला एवं सांप्रत समय की लीला एक ही होने से आप प्रतिवर्ष दीपदान के बाद श्रीगोवर्धनपूजन करके, प्रभु को श्रीअन्नकूट आरोगाते हैं।

सं. १६४१ के कारतक सुदी एकम के रोज आपने श्रीनाथजी के पास अपने सातों बालकों के निधि स्वरूप पधराकर के, अन्नकूट आरोगाया था। वही परम्परा आज पर्यंत चालू है।

कीर्तन–संगति :

गोवल्लभ गोवर्धन वल्लभ श्रीवल्लभ गुण गिने न जाई।
भुकी रेणु तरैया नभकी धनकी बूंद परत लखाई ॥१॥
जिनके चरण कमल रज वंदित संतत होत सदा चितचाई।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल नंदनंदकी सब परछांई ॥२॥

महेन्द्रमदभित्प्रियाय नमः

(४२) महेन्द्रमदभित्प्रियः = महेन्द्र के गर्व को तोड़ने वाले श्रीकृष्ण आपको प्रिय हैं = *महेन्द्रमदभित्प्रियाय नमः।*

विवरण :

महेन्द्रस्य त्रिलोकेशत्वमदेन महत्वं मन्यमानस्येन्द्रस्य मदं दोषरूपं भिनत्ति दूरी करोति, नत्विन्द्रत्वं। तादृशः श्रीगोवर्धनधरः अप्रियो यस्य स तथा, तस्य प्रिय इति वा। यो हि यस्य प्रियो भवति स स्वकृतादपि तत्कृतं बहुमनुतेऽतोस्य तत्प्रियत्वादेतत्कृतं स तथैवांगीकरोतीति भावः।

देवों के राजा महेन्द्र को अत्यंत गर्व था कि वे तीनों लोकों के अधिपति हैं सब कुछ उनके आधीन है। उनके मद को तोड़ने वाले श्रीकृष्णचंद्र हैं। ऐसे श्रीकृष्णचंद्र श्रीगुसांईजी को प्रिय हैं, क्योंकि आपने इंद्र का इंद्रपना कायम रखकर उसके मद का खंडन किया है, जो जिसको प्रिय होता है वह अपने द्वारा किये हुए कार्यों की अपेक्षा अपने प्रिय के कार्यों को अधिक अच्छा मानता है, इसलिए आपके द्वारा किये हुए कार्यों को प्रभु श्रीकृष्णचंद्र अधिक अच्छा मानकर अंगीकार करते हैं।

ननु भगवत्प्रियत्वमनिर्वाच्यं भवति तत्कथमन्यैर्ज्ञातुं शक्य-मित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

बोला हुआ बोल नहीं सकते ऐसा भगवान का प्रेम है। इसे दूसरे लोग कैसे समझ सकते हैं ? इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं ?

भावार्थ :

श्रीगिरिराज यज्ञ के समय प्रभु ने इंद्र यज्ञ बंद करवाया था।

इसलिए इंद्र को अत्यंत अभिमान हो गया था। वह ऐसा मानता था कि मैं तीनों लोकों का अधिपति हूँ। इसलिए सबकुछ मेरे आधीन है, मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। अपना यज्ञ बंद होने से अभिमान में भान भूला हुआ इंद्र प्रभु के स्वरूप को नहीं समझ सका था, इसलिए प्रभु के निजधाम व्रज का प्रलय कर देने के लिए तत्पर हो गया, परन्तु प्रभु ने श्रीगिरिराज को धारण करके व्रज की रक्षा की और इन्द्र को अपने स्वरूप का ज्ञान करवाया था, इसलिए शर्मिंदा होकर इंद्र प्रभु की शरण में आया तब प्रभु ने उसके इंद्रपने को न छीनते हुए उसको उसी स्थान पर कायम रखने की उदारता बतलाई थी तथा उसका अपराध क्षमा कर दिया था।

ऐसे श्री गोवर्धनधर श्रीगुसांईजी को अत्यंत प्रिय हैं। इसी प्रकार श्रीगोवर्धनधर को भी श्रीगुसांईजी अत्यंत प्रिय है क्योंकि दोनों एक ही स्वरूप हैं। इसलिए दोनों स्वरूपों ने एक-दूसरे की महिमा को इस जगत में फैलाया है, जिस प्रकार अपना प्रिय व्यक्ति जो भी कार्य करे वह हमें अच्छा लगता है। इसी प्रकार श्रीगुसांईजी को श्रीगोवर्धनधर की लीला उत्तम लगती है, जबकि श्री गोवर्धनधर को श्रीगुसांईजी की इस भूतल पर की सभी लीलाएं उत्तम लगती थी, इसीलिये श्री गोवर्धनधर ने श्रीगुसांईजी का जन्मदिवस मनाने की आज्ञा अपने अंतरंग वैष्णवों को की थी।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी का जन्म दिवस मागसर वद नौमी को था। उसके पहले श्रीनाथजी ने अपने अंतरंग भक्त कुंभनदास, रामदास, सदु पांडे आदि को आज्ञा की कि, 'तुम श्रीगुसांईजी के जन्म दिवस के लिये तैयारी करो' आपने जलेबी की सामग्री

सिद्ध करने की और केसरी वस्त्र सिद्ध करने की आज्ञा की। श्रीगुसांईजी अपने जन्मदिवस के दिन श्रीनाथजी की सेवा में पधारे तब उन्हें यह बात ज्ञात हुई और आप अत्यंत प्रसन्न हुए।

महावन परगने का सूबेदार अलिखान पठान था। उनकी बेटी का नाम पीरजादी था। पीरजादी को साक्षात् श्रीनाथजी का अनुभव हुआ। प्रभु प्रतिदिन रात्रि को उसके साथ अलौकिक रासविलास करने पधारते थे। अलिखान को इस विषय में शंका होने के कारण उन्होंने रात्रि को चुपचाप तलाश की तो उनको ताल-पखावज एवं नुपूर की झंकार की आवाज आई और वे मूर्छित हो गए। अलिखान ने अपनी बेटी को निवेदन किया : 'मुझे श्रीठाकुरजी के दर्शन कराओ' पीरजादी ने प्रभु से विनती करी, तब श्रीनाथजी ने आज्ञा करी, 'तुम दोनों सुबह श्रीगुसांईजी के पास जाकर, नाम ले आओ तो, तुम्हें दर्शन होंगे। मैं श्रीगुसांईजी से कहूंगा, वे तुम दोनों को नाम उपदेश देकर अंगीकार करेंगे।

इस प्रकार श्रीकृष्ण को श्रीगुसांईजी अत्यंत प्रिय हैं इसलिए उनकी अंगीकृति के अभाव में वे किसी का दान दृढ़ नहीं करते हैं। पुष्टि के संबंध के बिना अर्थात् श्रीगुसांईजी द्वारा सेवक हुए बिना प्रभु पुष्टि की रीति से बंधते नहीं हैं। पुष्टि मार्ग में श्री ठाकुरजी, श्री महाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी की कान से आप कृपा बरसाते हैं।

कीर्तन–संगति :

यह कलि परम सुभग जन धन्य श्री विट्ठलनाथ उपासी।
जो प्रकटे व्रजपति श्री विट्ठल तो सेवक व्रजवासी॥१॥

व्रजलीला भूल्यो चतुरानन व्रत टार्यो बलरासी।
अबलों शठ नहीं गिनत अभागे करत परस्पर हांसी॥२॥
आत्मा सहित आप भये हित अंतर दियो प्रकाशी।
देखियत लोक समाज अलौकिक ज्यों गंगा सरितासी॥३॥
घर हरि सदन सदा यश गावत भक्ति मुक्तिसी दासी।
वदत न कछू भीम अब वैभव भजनानंद उपासी॥४॥

श्रीकृष्णलीलैकसर्वस्वाय नमः

(४३) कृष्णलीलैक-सर्वस्वः = श्रीकृष्ण की लीला ही सर्वस्व है = *श्रीकृष्णलीलैकसर्वस्वाय नमः।*

विवरण :

कृष्णास्य लीलैवैका सर्वस्वं यस्या निरंतरं तल्लीलाकथन-श्रवणादिकमेव करोति नान्यदिति। तदासक्त्या स्वरूपासक्ति-र्ज्ञाप्यत इति भावः।

श्रीकृष्ण की लीला ही आपका सर्वस्व है। इसलिए आप निरंतर उनकी लीला का ही कथन और श्रवण करते हैं। आपकी यह लीला शक्ति ही आपकी स्वरूपासक्ति-भगवत्प्रियत्व समझा जा सकता है।

ननु लीलास्तु भागवतोक्ताश्च सर्वैर्दृश्यन्ते। तेषां कथनं तदासक्तिरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

भागवत में सभी लीलाएं स्पष्ट रूप से कही हुई मालूम होती हैं तथापि लोगों की उन लीलाओं में आसक्ति क्यों नहीं होती है? इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी ने जब आसुर व्यामोह लीला करी थी, तब

श्रीगुसांईजी की आयुष्य मात्र १५ वर्ष की थी। श्री महाप्रभुजी के पधारने से श्रीगुसांईजी को अत्यंत क्लेश हुआ। इतनी छोटी उम्र में ही सम्प्रदाय की सारी जवाबदारी आपके ऊपर आ पड़ी। आपको साम्प्रदायिक तथा अन्य शास्त्रों का ज्ञान तो था, परन्तु श्री महाप्रभुजी के इस अलौकिक मार्ग का रहस्य ज्ञान, लीला भावना और स्वरूप भावना यह सब कुछ श्रीमहाप्रभुजी के पास से अभी आपने प्राप्त नहीं किया था। इस प्रकार सदा सर्वदा कृष्ण लीला में अनुरक्त होने से आपने रहस्य भावना का ज्ञान श्री दामोदरदास हरसानीजी के पास से तथा श्रीमहाप्रभुजी के ग्रंथों का ज्ञान आगरा के श्री कन्हैयालाल क्षत्रिय के पास से सामने से जाकर प्राप्त किया था। आपने श्री दामोदरदासजी के सहयोग से सेवा प्रकार का विस्तार किया था।

श्रीगुसांईजी की कोमल मनोवृत्ति को भगवान की ओर जोड़ने के लिये श्री महाप्रभुजी ने श्री गोकुल के पास स्थित कर्णविध कूप में से प्राप्त होने वाले श्रीबालकृष्णलालजी का स्वरूप श्री गुसांईजी को पधरा दिया था। इस प्रकार से आप सारा समय सेवा और स्मरण में ही तत्पर रहते थे। आपका चिंतन, मनन और लेखन केवल श्रीकृष्णलीला परक ही था। इसलिए आपने श्री दामोदरदासजी को अपने सामने बैठाकर 'शृंगाररसमंडन' आदि ग्रंथों की रचना की थी।

वार्ता-चरित्र-संगति :

श्रीनाथजी के मंदिर के अधिकारी श्रीकृष्णदासजी ने जब श्रीगुसांईजी को श्रीनाथजी की सेवा से दूर रखा तब आपने नित्यलीला के प्रसंग को याद किया और भगवद् इच्छा मानकर आप अपने घर श्रीगोकुल नहीं पधारते हुए एकांतवास करके

विहार करने के लिए श्रीचंद्र सरोवर पर पधारे एवं वहीं पर श्रीनाथजी के विरह में छह महीने तक बिराजे। आपने प्रतिदिन श्रीनाथजी को विरह व्याकुल हृदय से दीनता से विज्ञप्तियाँ कर-कर के भेजी थी। इस प्रकार आपने जीवन के सभी प्रसंगों में श्रीकृष्णलीला का ही अनुसंधान रखा था।

कीर्तन–संगति :

सेवककी सुख रास सदा श्री वल्लभ राजकुमार।
दरसनही तें प्रसन्न होत मन पुरुषोत्तम अवतार॥१॥
सुदृष्टि चिते सिद्धांत बतायो लीला जगविस्तार।
यह तजि अन्य ज्ञानकों धावत भूल्यो कुमति विचार॥२॥
छीत स्वामी उध्धरे पतित श्री विट्ठल कृप उदार।
इनके कहें गही भुजदृढ़करि गिरिधर नंद दुलार॥३॥

श्रीभागवतभावविदे नमः *(४४) श्री भागवतभावविद्* = श्री भागवत के भाव को जानने वाले = *श्रीभागवतभावविदे नमः।*

विवरण :

श्री भागवतस्य भक्तिशास्त्रस्य भावं तात्पर्यं वेत्तीत्यर्थः। अन्येषां तात्पर्याज्ञानादासवकत्यभावो युक्त ऐवेति भावः।

भक्ति शास्त्र स्वरूप श्री भागवत के भाव को आप ही जानते हैं अन्य कोई भी उसके तात्पर्य को नहीं समझता है इसलिए उसमें उसकी आसक्ति नहीं होती है यह योग्य बात है।

ननु लीलास्तु भागवतोक्तास्ताश्च सर्वैर्दृश्यन्ते, तेषां कथं न तदासक्तिरित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

आप सर्वज्ञ होने से श्रीमद् भागवत के तात्पर्य को समझते

हैं। अन्य कोई दूसरे लोक सर्वज्ञ नहीं हैं तो वे कैसे इस तात्पर्य को समझ सकते हैं ? इसके प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीभागवत भक्ति शास्त्र है। 'नारदपंचरात्र', शांडिल्य मुनि रचित 'भक्तिसूत्र' इत्यादि भक्ति शास्त्रों में बतलाये हुए सिद्धांत यहाँ विविध भगवद्लीलाओं के द्वारा तथा भगवद् भक्तों के चरित्रों के द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं. परन्तु श्रीमद् भागवत के गूढ़ भाव को सभी लोग समझ नहीं सकते हैं और जान भी नहीं सकते हैं इसलिए दूसरों को भागवत में इतनी आसक्ति नहीं होती है। आप श्रीमद् भागवत के गूढ अर्थ को जानते हैं क्योंकि वह आपकी ही लीला का शास्त्र है इसलिए आपने श्रीमद् भागवत पर 'टिप्पणी' नामक टीका की रचना की है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी सोरमजी पधारे थे। वहाँ एक ब्राह्मण श्रीमद् भागवतजी का पाठ कर रहा था। उस ब्राह्मण को श्रीगुसांईजी के अलौकिक स्वरूप में दर्शन हुए इसलिए वह श्रीगुसांईजी की शरण में आया। वह श्रीगुसांईजी के साथ में गोपालपुर आकर रहा। वह ब्राह्मण प्रतिदिन श्रीगुसांईजी के श्रीमुख से श्रीभागवतजी के पाठ तथा कथा को नित्य सुनता था।

एक दिन श्रीनाथजी ने श्रीगुसांईजी को आज्ञा की, 'यह ब्राह्मण श्रीभागवत का पाठ बहुत सुंदर करता है, इसलिए यह मेरे निज मंदिर के पास प्रतिदिन श्रीमद् भागवत का पाठ किया करे।' श्रीगुसांईजी ने उस ब्राह्मण को आज्ञा की, 'तुम प्रतिदिन श्रीनाथजी के सन्मुख श्रीमद् भागवत का पाठ करना।' उस दिन से वह ब्राह्मण प्रतिदिन श्रृंगार से राजभोग पर्यंत निज मंदिर के

पास आकर बैठकर श्रीमद् भागवत का पाठ किया करता था।

इस ब्राह्मण को श्रीगुसांईजी ने भाव एवं तत्त्व सहित श्रीमद् भागवत का दान किया था। इसलिए श्रीजी ने उस ब्राह्मण के बहाने से श्रीगुसांईजी के ही श्रीमद् भागवत के प्रति पक्षपात की सराहना की है।

कीर्तन–संगति :

जयति नाथ विट्ठल नवल चारुलोचन कमल अमल रस ताहिकों सर्वव्यापी।
जीत मायावाद दशोंदिश विध्वंस कर लाल गिरिधरन दृढभक्ति थापी॥१॥
जयति शुक वचन श्रुति वचन ताहिको सार भजन विस्तार कर कृष्णजापी।
अभय दीनों लेख हरिदास वर्य भेख कृष्णदास पंचवरण छापछापी॥२॥

पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः।
वजेश्वरप्रीतिकर्ता तन्निमंत्रणभोजकः॥१२॥

शब्दार्थ :

पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः = पितृचरण के प्रचार का मार्ग करने में भली-भांति विचार करने वाले, *व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता* = व्रजेश्वर श्रीकृष्ण में प्रेम करने वाले, *तनिन्मंत्रणभोजकः* = भक्तों के यहाँ भगवान को भोजन के लिए निमंत्रण देने वाले।

पितृप्रवर्तित–पथप्रचारसुविचारकाय नमः

(४५) पितृप्रवर्तित-पथप्रचार-सुविचारकः = पितृ चरण के द्वारा प्रवर्तित मार्ग का विस्तार करने के लिये आप बहुत विचार करते हैं = *पितृप्रवर्तितपथप्रचार-सुविचारकाय नमः।*

विवरण :

पित्रा प्रवर्तितः प्रकटीकृतो यः पन्था मार्गस्तस्य प्रचारो

विस्तारस्तदर्थं सुतरां विचारकस्तदुक्ततात्पर्यविचारकर्तेत्यर्थः। पितृप्रवर्तितपथे प्रचारो गतिर्येषां तदर्थे तद्विचारक इति वा। अत एवैतन्मार्गप्रवृत्तः साधारणोपि तद्भावनां जानाति नान्य पंडितोपीत्युक्तम्।

पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी के द्वारा प्रवर्तित किए हुए मार्ग का विस्तार करने के लिये आप बहुत विचार करते हैं। श्रीमद् आचार्य चरण के द्वारा बतलाए हुए सिद्धांतों का तात्पर्य आप बहुत बारीकी से विचारते हैं। इसी प्रकार उनके द्वारा प्रवर्तित किये हुए मार्ग में जिनकी विशेष प्रीति है उनके लिये भी आप विचार करते हैं। इसलिए पुष्टिमार्ग में जो लोग दीक्षित हुए हैं ऐसे सामान्य मनुष्य पुष्टि के जिस मर्म को समझते हैं उसे अन्य पंडित भी नहीं समझ सकते हैं।

नन्वेतजज्ञापयित्वा तेभ्यः किं फलं प्रयच्छतीत्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

इस पुष्टि के मर्म को समझाकर आप क्या फल देते हैं ? इसके प्रतिउत्तर में आप दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी ने श्री दामोदरदास हरसानी से सारे उत्सवों का प्रकार पूछा। श्री दामोदरदासजी ने जन्माष्टमी आदि उत्सवों की प्रणालिका आपके समक्ष निवेदन की। इसे जानने के लिये श्रीगुसांईजी श्रीदामोदरदासजी के घर पधारे थे। श्रीगुसांईजी जानते थे कि श्रीदामोदरदासजी के हृदय में भाव स्वरूप में श्री महाप्रभुजी सदैव बिराजमान रहते हैं। इसलिए आप उनको दंडवत नहीं करने देते थे।

एक दिन श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण के मार्ग का विस्तार किस

प्रकार हो इसी विचार में मग्न आप अपनी बैठक में बिराज रहे थे, तब एकाएक दामोदरदास हरसानी वहाँ आए । दामोदरदासजी ने श्रीगुसांईजी को विचार में मग्न देखा और विनती की, 'प्रभु ! आप आज इतने उद्‌विग्न क्यों हैं ? जिन्होने मार्ग को प्रकट किया है वे ही उसके विस्तार का सुदृढ़ उपाय बतलायेंगे । आप उनकी स्तुति करिये ।' दामोदरदासजी के इन वचनों को सुनकर श्रीगुसांईजी को आचार्यश्री का स्वरूप स्वतः स्फुरण हो आया और स्तुति करने के बाद श्रीआचार्यचरण के दिव्य मार्ग का स्मरण करते ही श्रीगुसांईजी को अपने हृदय में अद्‌भुत, अवर्णनीय आनंद का अनुभव हुआ । इसीलिए आपने श्रीआचार्यचरण का प्रथम नाम '*आनंदः*' प्रकट किया । जैसे-जैसे आपका स्वरूप विशेष स्फुरायमान हुआ वैसे-वैसे श्रीमहाप्रभुजी के १०८ नाम आपने प्रकट किये । इसके बाद श्रीआचार्यचरण ने साक्षात् प्रकट होकर श्रीगुसांईजी को दरसन दिये और अपना चर्वित अधरामृत देते हुए आपने आज्ञा की कि, 'तुमने मार्ग के विस्तार के लिये सेवा प्रणालिका सुदृढ़ करी है और ग्रंथों की रचना करो, सेवा का प्रकार दामोदरदास द्वारा जानने को मिलेगा ।'

इसके बाद श्रीगुसांईजी ने 'श्रीवल्लभाष्टक' 'श्रीसप्तश्लोकी' इत्यादि ग्रंथों की रचना की ।

कीर्तन–संगतिः

(राग-हमीर)

भजो श्रीवल्लभसुत के चरणं ।
नंदकुमार भजन सुखदायक पतितन पावनकरणं ॥१॥
दूर किये कलि कपट वेद विधि मत प्रचंड विस्तरणं ।
अति प्रताप महिमा समाज यश शोकताप त्रय अघहरणं ॥२॥

पुष्टि मर्याद भजन रस सेवा निजजन पोषण भरणं।

नंददास प्रभु प्रकट रूप धर श्री विट्ठलेश गिरिवरधरणं॥३॥

व्रजेश्वरप्रीतिकर्त्रे नमः

(४६) व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता = व्रज के ईश्वर श्रीकृष्ण में आप प्रीति करवाते हैं= *व्रजेश्वरप्रीतिकर्त्रे नमः।*

विवरण :

व्रजेश्वरे श्रीनंदकुमारे प्रीतिः सर्वात्मभावरूपा स्वभक्तेषु तत्कर्तेत्यर्थः। पुष्टिमार्गे नातोधिकं फलमस्तीत्ययं मार्ग एव फलरूप इति किमस्मिन्मार्गे फलमिति न शंकनीयमिति भावः।

आप सर्वात्म भाव से व्रज के ईश्वर ऐसे श्रीकृष्णचंद्र में प्रीति-भक्ति करवाते हैं अगर पुष्टि मार्ग में सर्वात्मभाव रूप भक्ति प्राप्त हो जाए तो वह स्वयं ही फलरूप है। उससे अधिक कोई फल नहीं है, इसलिए यह पुष्टि मार्ग ही फलस्वरूप है इसलिए ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये कि इस पुष्टि मार्ग में फल क्या है?

ननु स्नेहमार्गे प्रभुभजनमेव कर्तव्यं, तच्च शूद्रादिभिः क्रियमाणे चैतदर्पितमन्नादिकं प्रभुः साक्षात्कथमंगीकुर्यात्तेषां निन्दितत्वादित्याशंक्य नामान्तरमाहुः।

भक्ति मार्ग तो सभी जीवों के लिये है इसलिए शूद्र भी सेवा करके यदि प्रभु को आरोगावे तो शूद्रों की वह सामग्री श्रीकृष्णचंद्र साक्षात् अंगीकार करें या नहीं ? इस प्रश्न के प्रतिउत्तर में दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी शरण में आए हुए जीवों को भक्ति का दान करते

हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति प्रेमलक्षणा भक्ति है उसमें निरपेक्ष भाव है। प्रभु के पास किसी भी प्रकार की अपेक्षा न रखते हुए भक्त अपने हृदय का सर्वस्व प्रभु को अंगीकार करवा देता है और इसी में अपनी कृतार्थता मानता है ऐसा भक्ति मार्ग सभी जीवों के लिये है। भक्ति मार्ग के आचरण में वेद मार्ग की मर्यादा बाधा नहीं पहुंचाती है। इसलिए स्त्री, शूद्र इत्यादि भी भक्ति मार्ग का आचरण कर सकते हैं। श्रीगुसांईजी शरण में आए हुए सभी जीवों को व्रजेश्वर श्रीकृष्णचंद्र में सर्वात्मभाव का दान करते हैं। इसलिए यहाँ किसी को यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि भक्ति में वर्णाश्रम धर्म के बंधन नहीं होते हैं तो क्या शुद्र के हाथ से धरी हुई सामग्री को प्रभु साक्षात् रूप से अरोगते भी हैं? ८४/२५२ वैष्णवों की वार्ताएँ इस प्रश्न के प्रत्येक जवाब के रूप में विद्यमान है। श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी की कानि से अनेक शूद्र जाति में जन्म लेने वाले भक्तों की सामग्री भी प्रभु ने प्रसन्नता से अंगीकार की है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

बंगाल के एक ब्राह्मण वैष्णव ने श्रीगुसांईजी को सुंदर वस्त्र का एक थान भेंट किया था। श्रीगुसांईजी ने दर्जी को बुलवाकरके उस वस्त्र में से श्रीनवनीतप्रियाजी का वाघा बनवाया और एक वाघा अपने खुद के लिए भी सिद्ध करवाया। जब तक वह वैष्णव श्रीगोकुल में रहा तब तक आप नित्य उस वाघे को धारण करते थे और उस वैष्णव को दर्शन देते थे।

वह वैष्णव श्रीगुसांईजी के इसी स्वरूप को हृदय में धारण करके अपने देश बंगाल में वापस आया। उस दिन उनके घर में

श्राद्ध था। उनकी पत्नी ने घर में बड़े और गुड़ था उसको लाकर उस वैष्णव को दिया। वैष्णव ने श्रीनाथजी का ध्यान करके श्रीनाथजी को भोग धरा एवं श्रीनाथजी ने प्रसन्नता से उसको आरोगा।

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह सामग्री श्राद्ध के निमित्त की बनी थी और श्री महाप्रभुजी की प्रणालिका के विरुद्ध थी तो फिर प्रभु ने उसे कैसे आरोगा ? सर्वात्म भाव प्रदान भक्त प्रभु को जो कुछ भोग धरते हैं उसे श्री महाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी की कानी से आप प्रसन्नतापूर्वक अरोगते हैं।

इसीलिए व्रज में श्रीनाथजी ने श्रीगुसांईजी से कहा, 'मैं आज बंगाल में तुम्हारे वैष्णव के यहाँ बड़े और गुड़ अरोग कर आया हूँ। यहाँ का राजभोग भक्तोंद्धारक स्वरूप में मैंने नहीं आरोगा है, इसलिए मैं भूखा हूँ।' इसलिए श्रीगुसांईजी ने पुनः राजभोग सिद्धकरके प्रभु को भोग धरा।

एक बार चाचा हरिवंशजी गुजरात में जा रहे थे और रास्ता भूल गये। जंगल में एक भील की स्त्री ने चाचाजी को देखा उसने चाचाजी को सेवक बनाने के लिए विनती करी। चाचाजी ने उसे नाम मंत्र दिया और भोग धरके लेने की रीति उसे सिखाई।

परन्तु भील की स्त्री को आचार का कोई भान न होने से वह रसोई को चखकर श्रीठाकुरजी को भोग धरती थी तथापि श्रीनाथजी श्रीगुसांईजी की कानि से आरोगते थे। श्रीनाथजी ने श्रीगुसांईजी को बतलाया कि, 'यह भील बाई मुझे प्रतिदिन झूठन आरोगाती है।' चाचाजी जब वापस आए तब श्रीगुसांईजी ने इस विषय में उनसे पूछा। चाचाजी को पुनः उस गाँव में भेजा। चाचाजी ने फिर से उस भील स्त्री को आचार-विचार की रीति समझाई।

इस प्रकार प्रभु श्रीगुसांईजी की कानि से भक्तोंद्धारक स्वरूप में भक्तों द्वारा भोग धरी सामग्री प्रेम से आरोगते हैं।

कीर्तन–संगति :

केसरकी धोती कटि केसरी उपरना ओढें
तिलक मुद्रा धरे ठाडे मंदिर गिरिधर के।
दोउजनकी प्रीति कछू काहू पे न कही जात उत
नंदनंदन इत वल्लभवरकें।।१।।
करके शृंगार आज लाडिले गोपालजूको लेतहें
बलाय वारवार दोउ करकें।
बेऊ मुसिकात जात फूले न समात गात कहे
हरिदासमें निहारे दृगभरके।।२।।

तन्निमंत्रणभोजकाय नमः

(४७) तन्निमंत्रण-भोजकः = भक्तों के यहाँ भोजन के लिये आप श्रीकृष्णचंद्र को निमंत्रण देते हैं = *तन्निमंत्रणभोजकाय नमः।*

विवरण :

तस्य श्रीकृष्णस्य निमन्त्रणं, मदीयानां गृहे सर्वमेव त्वमंगीकुर्विति प्रार्थनारूपं, तेनैव भोजको भोजनकारयितेत्यर्थः। एतदीयेन शूद्रेणाप्यर्पितं साक्षादंगीकरोतीतरेण ब्राह्मणेनाप्यर्पितं न तथेति भावः। अतएव प्रभुणाप्युक्तं 'यस्मादस्मिन्स्थितो यत्किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छत्यद्धा तद्गोपिकेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोतीति।

आपने श्रीकृष्णचंद्र को निमंत्रण दिया है कि, 'आप मेरे भक्तों

के घर बिराजकर उनका सर्वस्व अंगीकार करिये।' इस विनती से आप प्रभु को अरोगाते हैं इसलिए शूद्र भक्त के यहाँ भी भगवान साक्षात् रूप से सब कुछ अंगीकार करते हैं, जबकि ब्राह्मण होने पर भी यदि भक्त हो तो उसके द्वारा अर्पण किया हुआ प्रभु अंगीकार नहीं करते हैं। जो भक्त पुष्टिमार्ग में मन-वचन और काया के द्वारा तत्पर हो वह भक्त उसके द्वारा सिद्ध की हुई निवेदित वस्तु को किसी भी प्रकार किसी भी स्थान पर यदि समर्पण करने की इच्छा करे तो आप साक्षात् श्रीगोपीजन वल्लभ अपने हास्य युक्त मुखारविंद में अंगीकार करते हैं।

पूर्वोक्त नामान्याशंकानिवृत्तिपूर्वकं व्याख्यातान्यतः परं तदभावात् केवलानि व्याख्यायन्ते नामान्तरमाहुः ।

अब तक के सभी नाम शंका एवं उनकी निवृत्तिपूर्वक कहे, परन्तु अब कोई शंका न होने से किसी शंका को प्रस्तुत न करते हुए केवल विवरण ही कहेंगे।

भावार्थ :

श्री ठाकुरजी भक्तों के यहाँ भक्तोद्धारक स्वरूप से बिराजते हैं। श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी की कानि से आप भक्तों के यहाँ अरोगते हैं। श्रीगुसांईजी ने श्रीनाथजी से विनती की है कि, 'आप कृपा करके भक्तों के यहाँ बिराजिये एवं उनके सर्व मनोरथ अंगीकार करिये' इसलिए प्रभु उनकी कानी से अरोगते हैं इसलिए आज भी अपने यहाँ सेवा प्रणालिका में प्रभु को भोग धरा जाता है, तब कानि देने में आती है। कानि के बिना प्रभु अरोगते नहीं हैं।

'श्रीवल्लभाष्टक' में श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं कि, 'इस मार्ग में शरण में आया हुआ जीव किसी भी समय, किसी भी

स्थल पर अपनी सत्ता एवं शक्ति के अनुसार कोई भी वस्तु प्रभु को अंगीकार करने के लिये यदि दीनतापूर्वक विनती करता है तो प्रभु अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक स्वहस्त से उसके द्वारा धरे हुए भोग को अरोगते हैं। इसलिए प्रत्येक पुष्टिमार्गीय वैष्णव अपने प्रभु को पधराकर अपनी शक्ति के अनुसार सभी सामग्री प्रभु को अरोगाकर उसका आनंद ले सकते हैं।

इसलिए अपनी सेवा प्रणालिका में नंदालय की भावना के अनुसार मंगला से लगारक शयन पर्यंत के राग, भोग एवं श्रृंगार का क्रम श्रीगुसांईजी ने अधिक विस्तृत रीति से बांध दिया है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

कानबाई नामक श्रीगुसांईजी की एक वैष्णव थी। वे गोविंद स्वामी की बहन होती थी। उनके यहाँ श्रीनवनीतप्रियाजी बिराजते थे। कानबाई जो-जो सामग्री सिद्ध करती थी उस-उस की पातल श्री ठाकुरजी को भोग धरती थी। भोग धरने के बाद वह उस पातल को अलग रख देती थी। श्रीठाकुरजी पुनः आज्ञा करते हैं कि, 'मुझे भूख लगी है' तो फिर वह उसी पातल को पुनः भोग धर देती थी।

श्रीगुसांईजी को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने कानबाई से पूछा कि, 'तुम श्री ठाकुरजी को एक बार भोग धरी हुई पातल फिर दूसरी बार क्यों भोग धरती हो ?' तब कानबाई ने कहा, 'महाराज ! यह तो बालक हैं। एक ही समय में सारी सामग्री नहीं आरोग सकते हैं। थोड़ा आरोग कर खेलने लगते हैं, इसलिए उस पातल को मैं ढंककर अलग रख देती हूँ। जब वे फिर से माँगते हैं तब मैं फिर से भोग धर देती हूँ।'

कानबाई के ऐसे भाव को देखकर श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न हुए।

कीर्तन–संगति :

वल्लभनंदन प्रकट भये।
दैवीजन उद्धारण कारण अपनी शरण लये॥१॥
मायामतकों दूर कियो हे भजनानंद प्रकटाये।
तेसे रस मूरति श्री गिरिधर बहु लाड़ लड़ाये॥२॥
पौष कृष्ण नौमी शुभदायक अति शोभित यह रूप।
मात अक्काजू अति बड़भागी श्री वल्लभ व्रजभूप॥३॥
सुरनर मुनि सब थकित भये नभ कुसुमन वृष्टि कराई।
वह सुख शोभा निरखत चतुरानन मनसुधि न रहाई॥४॥

बाललीलादि सुप्रीतो गोपीसबन्धिसत्कथः।
अतिगम्भीरतात्पर्यः कथनीय गुणाकरः॥१३॥

शब्दार्थ :

बाललीलादिसुप्रीतः = बाललीला आदि में बहुत प्रीतियुक्त है, *गोपीसम्बन्धिसत्कथः* =गोपीजनों की कथा कहते हैं, *अति-गम्भीरतात्पर्यः* = आपका अभिप्राय गंभीर है, *कथनीयगुणाकरः* = आपके गुण गाने जैसे हैं।

बाललीलादिसुप्रीताय नमः

(४८) बाललीलादि-सुप्रीतः = प्रभु की लीला में जिनकी अत्यंत प्रीति है = *बाललीलादिसुप्रीताय नमः।*

विवरण :

बाललीला आदिर्ययोः पौगंड्रकैशोरलीलयोस्ता बाललीला-

दयो लीलास्तासु सुप्रीतो, यः सुतरां प्रीतियुक्त इत्यर्थः ।

एवं प्रमाणप्रमेयसाधनप्रकरणलोकलीलाप्रीतत्वमुक्तफल-प्रकरणोक्त लीलासु विशेषेण प्रीतिविषयत्वं वक्तुं नामान्तरमाहुः ।

बाललीला, पौगंड्रलीला और किशोरलीला यह तीनों श्रीनंदनंदन की लीलाओं में बहुत ही प्रीतियुक्त हैं ।

इस प्रकार प्रमेय प्रमाण और साधन प्रकरण की लीला में प्रीति दर्शाकर अब दूसरे नाम से फल प्रकरण लीला में आपकी विशेष प्रीति है ऐसा दर्शाते हैं ।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी को बाल्यावस्था से ही श्री नंदनंदन की रसमय लीलाओं में विशेष प्रीति थी। इसलिए श्रीगोपीनाथजी ने किशोर अवस्था में जब नियम लिया था कि समग्र श्रीमद् भागवत का पारायण पूर्ण करने के बाद ही भोजन करुंगा, तब श्रीगुसांईजी ने भी निश्चय किया था कि श्री भागवत के दशम स्कंध का प्रतिदिन पारायण करने के बाद ही भोजन करूंगा इसलिए भोजन में प्रतिदिन बहुत विलंब हो जाता था। उनकी प्रभु के दिव्य चरित्रों में ऐसी प्रीति को देखकर श्री महाप्रभुजी ने उनके लिये श्री दशम स्कंध के सार रूप 'श्री त्रिविध नामावली' ग्रंथ की रचना की उसमें बाल लीला, पौंगड्रलीला और किशोर लीला इन तीनों लीलाओं की नामावली दी गई है। श्री महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'बाललीला की नामावली का पाठ करने से प्रभु में प्रीति प्रकट होगी। पौंगड्रलीला का पाठ करने से आसक्ति होगी तथा किशोरलीला का पाठ करने से व्यसन सिद्ध होगा।' श्री गुसांईजी इस त्रिविध नामावली ग्रंथ का प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ करते थे।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्री महाप्रभुजी ने एक बार श्रीगुसांईजी को अपनी बाल्यावस्था में खेलने के लिये श्री बालकृष्णलालजी का स्वरूप पधरा दिया था। यह स्वरूप श्री महाप्रभुजी को श्री गोकुल में कर्णविध कूप से प्राप्त हुआ था (इस समय यह स्वरूप सूरत में बिराजमान है) श्री महाप्रभुजी ने श्री बालकृष्णलालजी को मंगलभोग के लिये नित्य प्रति एक ठोर का नेग बांध दिया था।

एक दिन श्री गुसांईजी ने श्री बालकृष्णलालजी को साक्षात् ठोर आरोगते हुए देखा। तब आपने बालस्वभाव से विचार किया कि, 'श्री ठाकुरजी सारा का सारा आरोग जाएंगे तो मेरे लिए कुछ नहीं बचेगा।' उन्होंने श्री बालकृष्णलालजी के श्री हस्त में से ठोर छीनना शुरू किया। श्री ठाकुरजी ने भी ठोर की पकड़ मजबूत कर ली। उसी समय श्री महाप्रभुजी वहाँ पधारे। आपने श्री गुसांईजी को दूसरा ठोर देकर उन्हें समझाया कि, 'श्री ठाकुरजी के साथ तुम नहीं जीत सकोगे।' तब से दो ठोर धरने का प्रकार प्रारम्भ हुआ। श्रीगुसांईजी ने श्रीमहाप्रभुजी के बाद पुष्टिमार्गीय सेवा प्रकार का विकास क्रिया। तब सेवा में बाल भाव को प्रधानता देकर सेवा पद्धति को विकसित किया। इसीलिए श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं कि, *'जानीत परमं तत्त्वम् यशोदोत्संगलालितम्'* अपने परम तत्व की भांति श्री यशोदाजी की गोद में खेलने वाले श्री प्रभु को ही समझो। जबकि आपने अपने सातों बालकों को सात स्वरूप पधरा दिये थे। तब भी आपने अपने स्वयं के लिए श्री नवनीतप्रियाजी को ही रखा और आजीवन उनकी ही बाल भाव से सेवा की थी।

कीर्तन–संगति :

श्रीगोकुलपति नमो नमो।
भक्तहेत प्रकटे व्रजमंडन नंदनंदन जय नमो नमो ॥१॥
तन घनश्याम लाल बलसुंदर बकीबिदारण नमो नमो।
शकटविभंजन वच्छविमोचन निजजनपोषण नमो नमो ॥२॥
तल खल-मारण असुरसंहारण विश्वरूपदर्शन नमो नमो।
कालियमर्दन दावानल अर्दन यमलार्जुन तारण नमो नमो ॥३॥
व्रज फलदायक सब जगलायक वरुण विमोचक नमो नमो।
सुरपति मान हरण व्रजरक्षक गोवर्धनधर नमो नमो ॥४॥
व्रजबनिता मनरंजन कारण रासविलासी नमो नमो।
सुदर्शन धारक सब सुखदायक कोटि मदन द्युति नमो नमो ॥५॥
बंसीधारी कंसप्रहारी जग दुखहारी नमो नमो।
सबगुन जयजय श्री वल्लभसुत बलगोविंद प्रभु नमो नमो ॥६॥

गोपीसंबंधिसत्कथाय नमः

(४९) गोपीसंबंधी-सत्कथाः= गोपीजनों की लीलाओं को भलि-भाँति कहने वाले = *गोपीसंबंधीसत्कथाय नमः।*

विवरण :

गोपीनां सम्बन्धो यासु ता गोपीसम्बन्धिन्यो लीलास्ता एव सत्यः श्रोतुं वक्तुं समीचीना निर्दुष्टत्वात्, ताः कथयतीत्यर्थः। सम्यक्कथयतीति वा। गोपीसम्बन्धिनी सती पूर्ववत्कथा यस्य स तथेति वा नामान्तरमाहुः।

श्री गोपीजनों की रसयुक्त निर्दोष लीलाओं को आप बहुत सुंदर रीति से कहते हैं।

भावार्थ :

जिस प्रकार श्रीगुसांईजी को श्री नंदनंदन की बाल लीलाओं में प्रीति है, उसी प्रकार श्री गोपीजनवल्लभ की कुमारलीलाओं में भी आपका माधुर्यभाव है, क्योंकि आपने श्री चंद्रवलीजी स्वरूप में नित्यलीला में और सारस्वत कल्प की लीलाओं में उसका साक्षात् अनुभव किया है। आप 'श्रीसुबोधिनीजी' की टीका स्वरूप 'श्रीटिप्पणीजी' रूप में तथा उसी प्रकार 'शृंगार रस मंडन' जैसे ग्रंथों के रूप में अपने निज का अनुभव भक्तों के स्मरण के लिये प्रकट करते हैं। इसीलिए श्रीगुसांईजी आज्ञा करते हैं कि, 'बाल भाव से सेवा करना और किशोर लीलाओं का अनवसर के समय में स्मरण करना चाहिये।'

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्री गुसांईजी श्रीमद् भागवत के दशम स्कंध के 'वेणुगीत' के आखरी गीत का व्याख्यान कर रहे थे। व्याख्यान करते-करते मध्य रात्रि हो गई फिर आपने गोविंद स्वामी को घर जाने के लिये आज्ञा की। जब गोविंदस्वामी घर जाने के लिये निकले, तब श्री गोविंदरायजी, श्री बालकृष्णजी और श्री गोकुलनाथजी बैठक में विराज रहे थे। श्री गोकुलनाथजी ने श्री गोविंदस्वामी से पूछा, 'आप इतनी देर से कहाँ से आए ?' तब श्री गोविंदस्वामी ने कहा, 'मैं श्री गुसांईजी के पास से आ रहा हूँ।' श्री गोकुलनाथजी ने पूछा, 'श्रीगुसांईजी ने कौन से प्रसंग का व्याख्यान किया ?' गोविंदस्वामी ने कहा, 'वेणुगीत के अंतिम श्लोक का व्याख्यान हुआ।' श्री गोविंद स्वामी ने वचनामृत के विषय में एक पदपंक्ति कही, 'आपकी बात आप करें, ताको कहा कहिये ताको परतर कहा रीजीये'।

इस प्रकार श्री गुसांईजी श्री गोपीजनों की रसात्मक कथा को सुंदर रीति से कहते हैं।

कीर्तन–संगति :

(राग-विहागरो)

श्री विट्ठल प्रगटे व्रजनाथ।
नंदनंदन कलियुग में आये निजजन किये सनाथ ॥१॥
तब असुरनको नाश कियो हरि अब मायामत नाशे।
तब गोपीजनको सुख दीनो सब निजभक्तन ऐसे ॥२॥
तबकें वेद पथ छोड रास रमि नानाभाव बताये।
अब स्त्री शूद्रादिक सबको ब्रह्मसंबंध करायें ॥३॥
यह विध प्रकट करी निजलीला वल्लभराज दुलारे।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल इनको वेद पुकारे ॥४॥

अतिगंभीरतात्पर्याय नमः

(५०) *अतिगंभीरतात्पर्यः* = आपका अभिप्राय अत्यंत गंभीर है = *अतिगंभीरतात्पर्याय नमः*

विवरण :

अतिशयेन गम्भीरतलस्पर्शी तात्पर्यमभिप्रायो यस्य स तथा, भक्तेतरेषामिति शेषः नामान्तरमाहुः।

आपका तात्पर्य-आपका अभिप्राय अत्यंत गंभीर है। आपके अभिप्राय को भक्तों के अतिरिक्त अन्य कोई भी समझ सके ऐसा नहीं है।

भावार्थ :

जिस प्रकार श्री महाप्रभुजी की वाणी सूत्रात्मक है वैसे ही

आपकी वाणी भी सूत्रात्मक है। जब तक आप कृपा करके उस दुर्बोध वाणी को सुबोध नहीं करते हैं तब तक वह वाणी समझी जा सके ऐसी नहीं है। जिस प्रकार वेदवाणी प्रभु की वाणी होने से सभी उसके अभिप्राय को भली-भाँति नहीं समझ सकते हैं। इसी प्रकार आपश्री की वाणी भी भगवद् वाणी है और प्रभु कृपा करे तो ही उसे समझा जा सकता है इसलिए भगवदियों ने गाया है कि :

'जोंलो हरि आपुन पे न जनावे,
तोंलो यह मार्गको सिद्धांत पढ़े सुने नहीं आवे'

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक समय श्रीगुसांईजी श्री गोकुल में 'श्रीसुबोधिनीजी' की कथा कहते थे। दो वैष्णवों ने आपको विनती की, 'कृपानाथ ! आपके श्रीमुख से हमने कथा सुनी, परन्तु हमें कुछ भी समझ में नहीं आया, इसका क्या कारण है ? हमारे संदेह को निवृत्त करिये।'

श्री गुसांईजी ने बहुत समझाया, तब भी उनको कुछ समझ में नहीं आया। तब आपश्री ने आज्ञा की, 'तुम दोनों श्रीकृष्ण भट्ट के पास उज्जैन जाओ, वे तुम्हारा संदेह निवृत्त करेंगे।'

दोनों वैष्णव उज्जैन आए। श्रीकृष्ण भट्ट राजभोग धरके जप पाठ करके बैठे थे। उन्होंने वैष्णवों को आदर करके बैठाया। अनायास ही कृष्ण भट्ट ने श्री भागवत का एक श्लोक कहा और उसका भावार्थ वैष्णवों को समझाया, तब वैष्णवों ने कहा, 'इसी श्लोक का अर्थ श्रीगुसांईजी के श्रीमुख से हमने सुना, तब भी हमारे हृदय में से संदेह दूर नहीं हुआ, क्योंकि आपने इस श्लोक का अर्थ प्रभु के प्रति वर्णन किया था, परन्तु हमारी आसक्ति

श्रीगुसांईजी में है। आपने इस श्लोक के अर्थ को श्रीगुसांईजी पर लगाकर कहा, इससे हमारे हृदय का संदेह दूर हो गया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण भट्ट के हृदय में बिराजकर श्रीगुसांईजी ने दोनों वैष्णवों को अपना अलौकिक स्वरूप जताया और उनका संदेह दूर किया।

कीर्तन–संगति :

(राग पूर्वी)

तुमारे चरण कमल के शरण।

राखो सदा सर्वदा जनकों विठ्ठलेश गिरिधरण॥१॥

तुम बिन ओर नहीं अवलंबन भवसागर दुस्तरण।

भगवानदास जाय बलिहारी त्रिविध ताप उरहरण॥२॥

कथनीयगुणाकराय नमः

(५१) कथनीयगुणाकरः = आपके गुण गाने लायक हैं = *कथनीयगुणाकराय नमः*।

विवरण :

कथनीयाः कथितुं योग्यास्ते च गुणास्तेषामाकर उत्पत्ति-स्थानमित्यर्थः। नामान्तरमाहुः।

आपके गुण गाने लायक हैं। आप वर्णन करने लायक गुणों के भंडार हैं।

भावार्थ :

जिस प्रकार श्री ठाकुरजी गुणों के सागर हैं इसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी गुणों के सागर हैं। जिस प्रकार सागर को कोई मर्यादा नहीं होती, उसी प्रकार आपके गुणों को भी कोई मर्यादा

नहीं है। इसलिए आप गुणों के भंडार रूप हैं।

संस्कृत में 'गुण' शब्द का अर्थ होता है धर्म। प्रभु में आधिदैविक दिव्य छः धर्म हैं ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। इसी प्रकार श्रीगुसांईजी में भी यह छः धर्म हैं। यह छहों धर्म प्रमाण से समझे जाते हैं फिर भी यह प्रमेयात्मक धर्म हैं। आपके इन धर्मों का वर्णन करने से भी जीव हृदय में भक्ति को प्राप्त कर सकता है इसलिए आपके गुण वर्णन करने योग्य हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

गुजरात का एक ब्राह्मण तीर्थयात्रा करते हुए व्रज में आया। उसने मथुरा में विश्रांति घाट पर स्नान किया उसके बाद वह गोकुल आया। श्रीगुसांईजी श्री नवनीतप्रियाजी को राजभोग धरकर ठकुरानी घाट पर संध्यावंदन कर रहे थे। इस ब्राह्मण ने आपके तेजस्वी स्वरूप के दर्शन किए, इसलिए उसने शरण में जाने का विचार किया और आपसे विनती की, आपने उसे नामनिवेदन मंत्र दिया।

उस वैष्णव ने निवेदन किया, 'कृपानाथ ! मेरा सेवा करने का मनोरथ है।' आप जब मथुरा पधारे तब उसे अपने साथ ले गए। वहाँ एक कसेरा श्रीठाकुरजी के सुंदर स्वरूप लेकर बेचने बैठा था। श्रीगुसांईजी ने ब्राह्मण को आज्ञा की, 'उस कसेरे के पास से तुम वह स्वरूप न्यौछावर देकर ले आओ।' ब्राह्मण वैष्णव उस स्वरूप को ले आए। उस स्वरूप के श्रीहस्त में कड़े पहने हुए थे। श्रीगुसांईजी ने आज्ञा की, 'यह स्वरूप ले आओ' ब्राह्मण ने कसेरे से कहा, 'तू इन कड़ों का वजन कर ले और मुझे यह स्वरूप पधरा दे।' कसेरे ने कहा, 'संध्याकाल हो गया है इसलिए तुम

कल आकर इस स्वरूप को ले जाना' ब्राह्मण ने कड़े अपने पास रखे और स्वरूप कसेरे के पास रहने दिया।

इस स्वरूप ने व्रजवासी के बालक का रूप धारण कर श्रीगुसांईजी के पास जाकर कहा, 'तुम्हारा ब्राह्मण वैष्णव मेरे कडे उतार लाया है' श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, 'वह कल सबेरे आकर आपको पधरा जाएगा।'

इस वार्ता का रहस्य यह है कि, श्री गुसांईजी की दृष्टि मात्र से मूर्ति साक्षात् स्वरूप के रूप में सिद्ध हो गई। अब साक्षात् स्वरूप दुकान में कैसे बिराजे ? इसलिए कड़ों के बहाने से श्रीठाकुरजी ने श्रीगुसांईजी को इस प्रकार आज्ञा की। दूसरी बात यह भी है कि उस ब्राह्मण के पास सेवा भी करवानी थी। अपने में उसका विश्वास दृढ़ हो जाए, इसलिए भी इस प्रकार की आज्ञा की। जिनकी दृष्टि मात्र में मूर्ति में साक्षात् प्रभु के प्रादुर्भाव हो जाए ऐसे श्रीगुसांईजी के दिव्य गुणों के विषय में क्या कहा जाए ?

कीर्तन–संगति :

(राग नट)

तुमसे तुमही श्री वल्लभनंद।
करुणासिंधु उदार कल्पतरु सुखनिधि आनंदकंद॥१॥
रूपराशि गुण रसिक सुलक्षण पूरण परमानंद
लीलाविविध अपार अगोचर गावत कीर्तिछंद॥२॥
श्रीविट्ठलनाथ पुनीत करन जग काटन भव दुःखद्वंद।
तुमारी समसर ओरहि जानें सोई मूढ मतिमंद॥३॥

श्री गिरिधरन प्रकटित लक्ष्मणकुल पुरुषोत्तम व्रजचंद।
माणेकचंद चकोर नयनन पीवत प्रेम मकरंद॥४॥

पितृवंशोदधिविधुः स्वानुरूपसुतप्रसूः।
दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तिर्महोज्ज्वलचरित्रवान्॥१४॥

शब्दार्थ :

पितृवंशोदधिविधुः = पिता के वंशरूपी समुद्र में से चंद्र के समान प्रकट होने वाले, *स्वानुरूपसुतप्रसूः* = अपने समान पुत्रों को प्रकट करने वाले, *दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तिः* = आपकी कीर्ति दसों दिशाओं में व्याप्त है, *महोज्ज्वलचरित्रवान्ः* = महान उज्ज्वल चरित्र वाले

पितृवंशोदधिविधवे नमः

(५२) पितृवंशोदधिविधुः = पिता के वंशरूपी समुद्र में से आप चंद्रमा के समान प्रकट हुए हैं = *पितृवंशोदधिविधवे नमः।*

विवरण :

पितुर्वंश एवोदधिः समुद्रस्तत्र विधुरिव प्रकट इत्यर्थः। पितृवंशोदधेर्विधुवदिवद्गतिवान्। वृद्धिकर्ता वा। यथा विधूदये समुद्रस्य वृद्धिर्भवति तथैव तत्प्राकट्ये पितृवंश वृद्धिजातिति भावः। तथा त्वज्ञापकं नामान्तरमाहुः।

आप पिता के वंशरूपी समुद्र में से चंद्र के समान प्रकट हुए हैं, जिस प्रकार चंद्रोदय होने से समुद्र में ज्वार आता है इसी प्रकार आपके प्राकट्य होने से श्री महाप्रभुजी का वंश भी सुसमृद्ध हुआ, इसलिए आप पिता के वंशरूपी समुद्र में वृद्धि करने वाले चंद्र के समान हैं।

भावार्थ :

पूर्ण चंद्र का उदय होने पर समुद्र में ज्वार आता है, तब मानो

कि समुद्र वृद्धि प्राप्त करता हो ऐसा लगता है। इसी प्रकार श्री महाप्रभुजी के यहाँ पुत्र के रूप में आप प्रकट हुए। आपका वंश भगवद् इच्छा से आज तक भूतल पर फूला और फला है। आपको पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि अनेकों रत्न प्रकट हुए हैं। उनके द्वारा आपने पुष्टिभक्ति मार्ग का विस्तार किया है। उसे सुदृढ़ बनाया है एवं आज तक अनेक जीवों को शरण में लेकर उन्हें सनाथ किये हैं। इसलिए श्री गोपालदास भाई 'श्रीवल्लभाख्यान' में गाते हैं कि : 'पुत्र पौत्रादिक सुख शुं कहूं, जो मुख मांहे एक रे रसना'।

कीर्तन–संगति :

(राग केदारो)

(१) श्रीविट्ठलनाथ आनंदकंद।
प्रकट पुरुषोत्तम श्रीव्रजमें देख द्विज वर चंद॥१॥
तब व्रज यशोदा नंद कहियत अब श्रीवल्लभनंद।
तब धर्यो नटवर भेष गिरिधर अवनि श्रुतिपथ छंद॥२॥
जब बकी आदि अनेक आरति मेट सब दुखद्वंद।
अब कृपा कर हरे प्रभु पाप माणिकचंद॥३॥

(२) प्रकट्यो प्राची दिश पूरण चंद।
योही प्रकट भये श्रीवल्लभगृह सुरनर मुनि आनंद॥१॥
अद्भुत रूप अलौकिक महिमा जननी तात यों भाख्यो।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल लोक वेद मत राख्यो॥२॥

(३) श्रीवल्लभ नंदन चंद देखत तनके त्रिविध ताप जात।
मिट गये सब दुरित दूर भक्तन की जीवनभर भामिनी आनंदकंद॥१॥

श्रीविट्ठलनाथ विलोक बढ्यो सुखसिंधुकी उठत तरंग मिट गये दुखद्वंद।
छीतस्वामी गिरिवरधर विट्ठलेशके गुणगावत आनंद सुखछंद ॥२॥

स्वानुरूपसुतप्रसवे नमः

(५३) स्वानुरूपसुतप्रसूः = अपने समान अपने पुत्रों को प्रकट करने वाले = *स्वानुरूपसुतप्रसवे नमः ।*

विवरणः

स्वास्यानुरूपाः स्वतुल्याः पूर्वोक्तसर्वनामतात्पर्यभाजस्तादृशा पुत्रास्तेषां प्रसूरुत्पत्तिकर्तेत्यर्थः । यथा विधूदये समुद्रस्य वृद्धिस्वस्मिन्नस्तंगते तदभावस्तथात्र न, यतः पुत्राणामपि स्वानुरूपत्वाद्वंशवृद्धिकर्तृत्वं, अतः पुत्रपरम्परया वृद्धिरेवेति भावः। अतः सर्वोत्तमस्तोत्रे तैरप्युक्तं 'स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमाहात्म्यः' इति नामान्तरमाहुः ।

आपने अपने समान अर्थात् पहले बतलाये हुए सभी प्रकार के नामों के रहस्य को धारण करने वाले पुत्रों को प्रकट किया है। चंद्र के उदय से समुद्र में ज्वार आता है और चंद्र का अस्त होने पर भाटा आता है ऐसा आपके विषय में नहीं है यहाँ पर तो आपके ही गुणों से युक्त पुत्र प्रकट हुए हैं। उन पुत्रों ने भी अपने जैसे ही गुणों वाले पुत्रों को प्रकट किया है। इस प्रकार पुत्र परम्परा से आपके गुणों की वृद्धि ही हुई है। आपने अपना अशेष माहात्म्य स्ववंश में पधराया है ऐसा 'श्रीसर्वोत्तम स्तोत्र' में कहा है। इसलिए आपकी पुत्र परम्परा भी आपके समान गुण वाली ही है।

भावार्थ :

जिस प्रकार श्रीगुसांईजी साक्षात् भगवद् स्वरूप हैं उसी प्रकार आपका समस्त वंश भी साक्षात् भगवद् स्वरूप है।

श्रीगुसांईजी में जो क़ोई अलौकिक गुण हैं, जिनका की वर्णन इसके पहले वाले श्लोक में किया गया है वे सभी गुण आपके पुत्र-पौत्रादिक समस्त परिवार में परिलक्षित होते हैं। परिणाम में गाया है कि, 'अलौकिक सब अग्निकुल हे' यह अनुभव का विषय है । आज तक कई वैष्णवों ने श्री वल्लभवंश की भगवद्रूपता को अनेक बार अनुभव किया है।

वार्ता-चरित्र-संगति :

श्रीगुसांईजी के सेवक भक्तकवि चतुरबिहारीजी हो गए। उनके भतीजे वृंदावनदास थे। वे श्रीगुसांईजी की शरण में आए। श्रीगुसांईजी की कृपा से श्रीगोकुल का स्वरूप हृदयारूढ़ हुआ। उन्होंने आज्ञा दी और यह हकीकत चतुरबिहारीजी को कही। कुछ समय के बाद श्रीगुसांईजी ने आसुरव्यामोह लीला करी। यह सुनकर वृंदावनदास गोकुल आए। उस समय उनकी दशा अत्यंत व्याकुल थी। श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी के चतुर्थलालजी गोकुल में बिराजते थे। आपने कृपा करके अपने स्वरूप में वृंदावनदास को श्रीगुसांईजी के दरसन करवाए। वृंदावनदास ने यह बतलाया कि श्रीगुसांईजी के बालक भी श्रीगुसांईजी के स्वरूप ही हैं इसी प्रकार अपने अलौकिक गुणों को आपने स्ववंश में स्थापित किया है।

कीर्तन-संगति :

(१) जय श्री वल्लभनंदन गाऊं।

श्रीगिरिधरन सकल सुखदाता गोविंदकों शिर नाऊं ॥१॥

श्री बालकृष्ण बालक संग विहरत श्री गोकुलनाथ लड़ाऊं।

श्री रघुनाथ प्रताप विमल यश श्रवणन सदा सुनाऊं ॥२॥

यदुकुलमें यदुनाथ बिराजत लीलापार न पाऊं ।
विष्णुदास कों करो कृपा घनश्याम चरण लपटाऊं ॥३॥

(२) श्रीवल्लभ श्रीविट्ठल महाप्रभु एक एव देखियत द्वे रूप ।
निजमहिमा अवनितल प्रकट करन प्रकटे श्री गोकुल भूप ॥१॥
प्राकृत धर्म रहित अप्राकृत निखिल धर्म सहित साकार ।
निगमनिरूपित श्री पुरुषोत्तम वदनानल श्री वल्लभ अवतार ॥२॥
अग्निकुमाररूप श्री विट्ठल कलि में कीयो भक्ति विस्तार ।
असुरन बोरे भवसागर में पुष्टि जीवको कीयो उद्धार ॥३॥
मास वैशाख कृष्ण एकादशी लछमनकुल प्रकटे श्री व्रजेश ।
पौष मास कृष्ण नवमी दिन अनलते प्रकटे श्री विट्ठलेश ॥४॥
विविध सुगंध उवटनो कीजे तेल सुवासित केसरनीर ।
स्नान करावहु श्री व्रजपतिको करही सींगार सुबलके वीर ॥५॥
पीतवसन परिधान करावहु कुल्हे केशरी सुंदर शीश ।
विविध भांत भूखन पहिरावहु मृगज तिलक करो गोकुल इश॥६॥
खटरसविंजन विविध भांत के करहो विविध पकवान्न रसाल ।
प्रेम सहित आनंद पुंजको भरभर करहुं समर्पन थाल ॥७॥
आज बडो दिन महा महोत्सव निजजन आनंद उर न समाय ।
आंगन लींपहु चोक पुरावहु बंदनमाल बंधावो बनाथ ॥८॥
गावहु नाचहु करहु बधाई निजजन भाग्य सफल भयो आज ।
करत गोविंदजन सदा सर्वदा हृदय वसो श्रीवल्लभ महाराज ॥९॥

दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्त्यै नमः

(५४) दिक् चक्र वर्ति - सत्कीर्तिः = आपकी कीर्ति दशों दिशाओं में व्याप्त है = दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्त्यै नमः ।

विवरण :

दिशां चक्रं दिक्चक्रं, तत्र वर्तितं शीलमस्याः सा दिक्चक्र-

वर्तिनी, तादृशी सती निर्दुष्टा च कीर्तिर्यस्य स तथा। नामान्तरमाहुः।

आपकी कीर्ति दिशाओं रूपी चक्र में व्याप्त है। आपकी कीर्ति दशों दिशाओं में फैली हुई है।

भावार्थ :

श्री गोपालदासभाई तीसरे 'वल्लभाख्यान' में श्रीगुसांईजी के प्राकट्य का वर्णन करते हुए गाते हैं कि :

पाताले शेषनाग रीझिया, ऊपर इंद्रादिक देव,
ब्रह्मा महादेव मुनि हरखिया, वरखिया कुसुम समूह सिद्ध गांधर्व।
गुणी अपसरा निगम गाय रूप शाखा सहस्त्र शुं।
करे रे भल्ला निर्घोष सुत मागध साधु सर्वे मल्या।
शुकदेव सबल आनंदिया।

इस प्रकार दशों दिशाओं में आपके प्राकट्य से ही आपकी कीर्ति फैल गई है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

काबुल में माधवदास नाम के श्रीगुसांईजी के कृपापात्र सेवक हो गए। उन पर श्रीगुसांईजी की ऐसी कृपा थी कि वे म्लेच्छ देश में रहते थे फिर भी प्रतिदिन शाम को श्रीनाथजी जब गोचारण करके वापस पधारते थे तब माधवदास को साक्षात् दर्शन देते थे।

इसके पहले भी बंगाल में नारायणदास दीवान श्रीगुसांईजी के ऐसे ही कृपापात्र सेवक हो गए। उनका कहना बंगाल के मुसलमान बादशाह भी मानते थे।

दक्षिण में श्रीगुसांईजी के सेवक राजा मानसिंग हो गये। इन सभी सेवकों के द्वारा श्रीगुसांईजी की कीर्ति देश के सभी कोने-कोने में भली-भाँति फैल गई थी।

कीर्तन–संगति :

श्रीविठ्ठलजू के चरण कमल भज रे मन जो चाहे परमारथ।
मारग वाम काम हित कारन सब पाखंड कीजे ऊपारथ॥१॥
देवी देव देवता हरि बीनु सब कोऊ जगत आपुन स्वारथ।
श्री भागवत भजन रस महिमा श्रीमुख बचत कहे जु यथारथ॥२॥
तीनलोक वंदित यह मारग जीव अनेक कीये जु कृतारथ।
सगुणदास शरण आये बिनु खोये दिन पाछले अकारथ॥३॥

महोज्ज्वलचरित्रवते नमः

(५५) महोज्ज्वल-चरित्रवान् = आपका चरित्र अत्यंत उज्ज्वल है (अत्यंत उज्ज्वल चरित्र वाले) = *महोज्ज्वलचरित्रवते नमः।*

विवरण :

महान्त्यपरिमितानि गुणपूर्णानि वोज्ज्वलानि योषरहितानि च तानि चरित्राणि विद्यन्ते यस्येति स तथा। दिक्चक्रं तु परिमितं भवति। तद्वर्तित्वेन कीर्तेरपि तथात्व भवेदतस्तस्याश्चरित्र-व्यापकत्वात्तेषामपरिमितत्वात्सापि तथैवेति भावः। महांश्चासा-वुज्ज्वल्लचरित्रवांश्चेति वा नामान्तरमाहुः।

आप महान उज्ज्वल चरित्र वाले हैं। आपका चरित्र अपार, गुणपूर्ण एवं निर्दोष है, दिशाएं मर्यादित हैं, परन्तु उसके कारण कदाचित आपकी कीर्ति भी दिशाओं तक मर्यादित हो जाए इसलिए यहाँ पर आपके चरित्र को अमाप कहा है। उसका अनुसरण करके प्रसरित होने वाली कीर्ति भी अमाप है यह इस नाम का रहस्य है।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी के 'सर्वोत्तम स्तोत्र' में १०८ नामों का निरूपण करते हुए श्रीगुसांईजी ने एक नाम यह भी कहा, *'स्ववंशे स्थापिताशेषमाहात्म्यः ।'* आपने अपने वंश में अपना सम्पूर्ण माहात्म्य प्रस्थापित किया है। लौकिक में भी यह कहावत है कि 'जैसा बाप वैसा बेटा' श्री महाप्रभुजी ने दामोदरदास हरसानी को आज्ञा की थी कि, 'तुम श्री गुसांईजी को केवल मेरे ही पुत्र न मानना, परन्तु उन्हें तुम मेरा ही स्वरूप समझना ।'

इस प्रकार श्री गुसांईजी का चरित्र अलौकिक, दिव्य और अत्यंत उज्ज्वल है । इसलिए आप आज्ञा करते हैं कि, *'अस्मद्कुलं निष्कलंकम् ।'* हमारा सम्पूर्ण कुल निष्कलंक है ।'

आगे के नाम में आपकी कीर्ति दशों दिशाओं में व्याप्त है ऐसा कहा गया है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि दिशाएं मर्यादित हैं, इसलिए आपकी कीर्ति भी उतने ही प्रमाण में मर्यादित बन जाए, इसलिए इस नाम में आज्ञा की कि, 'आपका चरित्र महा उज्ज्वल है, जिसको माप भी नहीं सकते। ऐसा तो वह प्रकाशित है।' कीर्ति का संबंध चरित्र के साथ में है। चरित्र अमाप है, इसलिए उस चरित्र के द्वारा प्रकट होने वाली कीर्ति भी अमाप है, ऐसा सारगर्भित सूचन इस नाम के द्वारा प्राप्त होता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के एक सेवक अहमदाबाद में एक सेठ थे । श्रीगुसांईजी ने उनको आज्ञा की, 'तुम हमारे साथ व्रजयात्रा करने गोकुल चलो' उस वणिक ने कहा, 'आप कृपा करेंगे तो व्रजयात्रा करूंगा।' आपने आज्ञा की, 'हमारी तो कृपा है, चलो',

वणिक ने कहा, 'मैं गृहस्थ हूं, किस प्रकार आऊं ?' बहुत समय व्यतीत हो गया फिर भी वह सेठ गोकुल नहीं गए। श्रीगुसांईजी ने एक विरक्त वैष्णव को सेठ को बुलवाने के लिये भेजा। सेठ ने अलग-अलग बहाने बतलाए, परन्तु जाने की हाँ नहीं कही। ऐसे पाखंड करते-करते उनका देह छूट गया और उन्हें सर्प की योनि प्राप्त हुई। सर्प की योनि में भी वे जाने को तैयार नहीं थे। उसके बाद उन्हें श्वान की योनि मिली, फिर भी वे वहाँ से किंचित् मात्र खिसकने को तैयार नहीं थे। आखिर में वे गटर के कीड़े बने तब भी उनकी इच्छा नहीं थी। अंत में वह विरक्त वैष्णव एक डब्बे में उस कीड़े को लेकर गोकुल आए और श्रीगुसांईजी को सारी हकीकत कह सुनाई, तब आपने आज्ञा की, 'उस कीड़े को श्री यमुनाजी में पधरा दो, इससे उनका उद्धार होगा।' ऐसे महान पतित जीवों का भी उद्धार करने वाले आप महान उज्ज्वल चरित्र वाले हैं।

व्रज में एक धनाढ्य ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने अपनी विधवा बहन की हत्या कर दी थी। इसलिए उनको सर्पयोनि प्राप्ति हुई थी वे गोकुल में घाट पर पड़ा रहता था और आते-जाते लोगों को काटता था। श्रीगुसांईजी परदेस से गोकुल पधार रहे थे। तब गोकुल समीप में होने पर भी आपने वहीं मुकाम किया और १० लोटे जल से अपने चरण धोए। वह जल सर्प के बिल में गया। उस सर्प ने चरणामृत का पान किया एवं उसमें स्नान भी किया। उसे पूर्व जन्म की याद आई, इसलिए वह श्रीगुसांईजी के पास आया एवं आपके चरणारविंद पर अपना मस्तक धरा। आपने उसे नाममंत्र देते ही उस देह को छोड़कर उसने ब्राह्मण देह

धारण किया और नित्य लीला में चला गया।

गुलाबदास नाम के एक वैष्णव आपका माहात्म्य सुनकर आपकी शरण में आए। उन्होंने विचार किया, 'श्रीगुसांईजी मेरा उद्धार किस प्रकार करते हैं इसकी परीक्षा करूं।' वे आगरा जाकर के वेश्या के मोहल्ले में रहने लगे। अभक्ष्य खान-पान करने लगे। वहाँ पर वे गुलाब खान के नाम से प्रसिद्ध हो गए। थोड़े दिन बाद श्रीगुसांईजी ने एक वैष्णव को उनके पास भेजकर कहलवाया, 'श्रीगुसांईजी तुम्हें याद करते हैं।' उस वैष्णव ने तीन बार यही बात कही। सुनते ही गुलाबखान को विरह अनुभव हुआ। उन्होंने अपना देह त्याग किया और वे नित्यलीला को प्राप्त हुए।

इस प्रकार श्रीगुसांईजी महोज्ज्वल चरित्रवान हैं।

कीर्तन–संगति :

श्रीविठ्ठल प्रभु जगत उद्धारण देखो भूतल आयेरी।
नखशिख सुंदर रूप कहा कहूं कोटिक काम लजायेरी॥१॥
अनेक जीव किये जो कृतारथ श्रवण सुनत उठ धायेरी।
शरणमंत्र श्रवण सुनाईके पुरुषोत्तम करगृह आवे॥२॥
शेष सहस्त्र मुख निशदिन गावे तेऊ पार न पायेरी।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विठ्ठल प्रेम पुनीत सब धायेरी॥३॥

अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्द्धासक्तपदांबुजः।
विप्रदारिद्र्यदावाग्निर्भूदेवाग्निप्रपूजकः॥१५॥

शब्दार्थ :

अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्द्धासक्तपदांबुजः = अनेक राजाओं की श्रेणियां आपके चरणकमल में झुकी हुई है ऐसे, *विप्रद्रारिद्र्यदावाग्निः* = ब्राह्मणों की

दरिद्रतारूपी वन के अग्निरूप हैं, *भूदेवाग्निप्रपूजकः* = भूमि, देवों, ब्राह्मणों और अग्नि के पूजक हैं।

अनेकक्षितिपश्रेणीमूर्द्धसक्त–पदांबुजाय नमः

(५६) अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्द्धसक्तपदाम्बुजः = आपके चरणारविंद अनेक राजाओं की पंक्तियों के मस्तकों पर है = *अनेकक्षितिपश्रेणीमूर्द्धसक्तपदाम्बुजाय नमः।*

विवरण :

अनेके च ते क्षितिपा राजानस्तेषां श्रेणयः पङ्क्तयस्तासां मूर्द्धानः शिरांसि, तैः सक्तं मिलितं पदाम्बुजं चरणकमलं यस्य स तथा। अत्युग्रप्रतापेन गताभिमानाः सर्वे राजानो मिलित्वा नताः सन्तः प्रार्थयन्ते, 'अस्मन्मूर्द्धसु पदाम्बुजं स्थापयित्वाऽभयं प्रयच्छे'ति तदास्मत्प्रभुरतिकरुणस्तथैव करोतीति भावः।

आपके चरणकमल में अनेक राजाओं ने उनके मस्तकों को नमाया है, इसलिए आपने उन सभी राजाओं के मस्तकों पर अपने चरणारविंद धरे हैं। आपके प्रताप से निरभिमानी बने हुए राजाओं ने मिलकर दीनतापूर्वक विनती करी कि, 'हे भगवान ! आप आपके चरण कमल को हमारे मस्तक पर धरिये और हमें अभयदान दीजिये।' अत्यंत करुणानिधान श्रीगुसांईजी ने इस विनती को स्वीकार किया और अपने चरण कमलों को उनके मस्तकों पर धरा।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी की शरण में केवल विरक्त वैष्णव ही नहीं आए हैं कई राजा भी आपके महोज्ज्वल प्रभाव से प्रभावित होकर शरण में आए हैं। राजा मानसिंग, टोडरमल, बीरबल,

आशकरणजी, राणी दुर्गावती, बुंदेलखंड के राजा रामसिंह, मेडता के राजा जयमल, दक्षिण के राजा मानसिंह, गुजरात के राजा भीम इत्यादि अनेक राजा सपरिवार आपके सेवक हुए हैं। अकबर बादशाह भी आपको बहुत अधिक सम्मान देते थे और आपकी आज्ञा को स्वीकार करते थे। अकबर बादशाह ने आपको राज दरबार में पधराकर विशिष्ट प्रकार का राजदरबारी पोषाक पहनने की उन्हें अनुमति दी थी। अकबर बादशाह कई समस्याओं में आपको न्यायासन पर पधराकर न्याय देने की विनती करते थे तथा अपने मन के कई उलझन भरे प्रश्न आपके समक्ष प्रस्तुत करके उनका हल भी प्राप्त करते थे। उन्होंने आपको 'गोस्वामी' की पदवी तथा कई फरमान देकर आपका आदर सत्कार किया था। इसीलिए 'श्रीवल्लभाख्यान' में श्री गोपालदासभाई गाते हैं कि, *'चरणचांखडी वदे राणो, सरस कीधा जे हुता प्रेम पाषाण।'*

कीर्तन–संगति :

आनंद भूतल देखि विशेष।
श्रीवल्लभसुत गोपी सानुज प्रगटे श्रीविट्ठलेश॥१॥
लक्ष बत्तीस अंगीकृत कीने जबही दिये उपदेश।
पुनि बहुरूप अंस अगनित होई सबे उधारन रेस॥२॥
सबते अति उज्ज्वल यह मारग सेवन करेही व्रजेश।
धन्य भागिनिधि द्वारकेशके सेवत श्रीमथुरेश॥३॥

विप्र दारिद्र्यदावाग्नये नमः

(५७) विप्रदारिद्र्यदावाग्निः = ब्राह्मणों के दारिद्ररूपी वन के आप अग्नि हैं = *विप्रदारिद्र्यदावाग्नये नमः।*

विवरणः

विशेषेण प्रान्ति पूरयन्त्यन्यमनोरथानाशीर्भिरिति विप्रा

ब्राह्मणास्तेषां दारिद्र्यमेव द्रावो वनं, तस्याग्निर्दाहको ब्रह्मर्थयानेन नाशक इत्यर्थः नामान्तरमाहुः ।

ब्राह्मण आशीर्वाद देकर दूसरों के मनोरथ को पूरा करने वाले हैं। ऐसे ब्राह्मणों के दारिद्ररूपी वन को जलाने वाले आप अग्नि स्वरूप हैं। आप ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान देकर उनके दरिद्रता को दूर करते हैं।

भावार्थ :

'विप्र' शब्द का यहाँ एक सुंदर अर्थ बतलाया गया है जो विशेष प्रकार से दूसरों की इच्छाओं को पूर्ण करे वह 'विप्र' त्यागी, निष्काम ब्राह्मण भी अपने प्रभाव से अनेक मनुष्यों को आशीर्वाद देकर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करते आए हैं। उनको मिली हुई ऐसी वचन सिद्धि के कारण ही वे 'विप्र' कहलाते हैं। दूसरों को सुखी करने वाले ब्राह्मण बहुत करके स्वयं गरीब और दुःखी देखने में आते हैं। श्रीगुसांईजी ऐसे ब्राह्मणों को अनेक प्रकार से दान देकर उनकी दरिद्रता को दूर करते हैं। जिस प्रकार वन में प्रगट होने वाला अग्नि वन को जला देता है ऐसे ही आप उदारतारूपी अग्नि से ब्राह्मणों के दारिद्ररूपी वन को जला देते हैं। इसलिए ब्राह्मण बहुत बड़ी आशा लेकर आपके पास आते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

मध्यप्रदेश में जबलपुर के पास में गढ़ा राज्य की रानी दुर्गावती ने सोमवती अमावस्या के दिन श्रीगुसांईजी को १०८ गायों का दान किया। आपने वे सारी गायें ब्राह्मणों को दान में दिलवा दी और आपने कुछ भी नहीं रखा।

श्री महाप्रभुजी के कृपापात्र सेवक विष्णुदास छीपा

श्रीगुसांईजी की हवेली की डेली पर बैठते। वहाँ बैठकर वे 'श्रीसुबोधिनीजी' बांचते थे। तब श्रीगुसांईजी ने पूछा, 'विष्णुदासजी, आप क्या कर रहे हैं?' विष्णुदासजी ने कहा, 'महाराज, 'श्रीसुबोधिनीजी' के दर्शन कर रहा हूँ।' आपने आज्ञा की, 'यह ग्रंथ अत्यंत क्लिष्ट है, सरलता से समझा जा सके ऐसा नहीं है।' विष्णुदासजी ने कहा, 'महाराज, आपके लिए क्लिष्ट है, मुझे तो मात्र पन्ने पलटना है। 'श्रीसुबोधिनीजी' के दर्शन से ही और आपकी कृपा से उसका रहस्य समझ में आता है।' उन्होंने गाया है, 'सुबोधिनीजी ना दर्शन मात्रे विष्णुदास गुण गणित चकित भये पंडित पावन लाज।'

श्रीगुसांईजी के साथ में जो पंडित शास्त्र चर्चा करने आते उनको विष्णुदासजी निरुत्तर कर देते थे और वापस भेज देते थे। पंडित लोग विचार करते थे, 'जिनका द्वारपाल इतना विद्वान है उनके आचार्य कैसे होंगे?' पाँच-छः दिनों तक श्रीगुसांईजी के पास कोई भी पंडित नहीं आये। श्रीगुसांईजी ने विष्णुदासजी से कहा, 'आपको ब्राह्मणों को हमारे पास आने देना चाहिये, क्योंकि उनका उचित सत्कार करना चाहिये।' अपने पास आने वाले ब्राह्मणों को आप महाप्रसाद, दक्षिणा इत्यादि देकर सम्मान करके वहाँ से विदा करते थे।

कीर्तन–संगति :

दानदेंनको श्रीवल्लभप्रभु बोलबोल सबहिनकों लेत।
मणिमाणिक गहनो पट भूषण मनवांछित फल सब हि देत॥१॥
बहोर्यो गोकुल द्विज वपु धार्यो प्रकट भये निजजनके हेत।
दास गोपाल आजते सब व्रज प्रेम पुंजको बांध्यो सेत॥२॥

भूदेवाग्निप्रपूजकाय नमः

(५८) भूदेवाग्निप्रपूजकः = आप पृथ्वी, देवों और अग्नि को पूजते हैं= *भूदेवाग्निप्रपूजकाय नमः*

विवरणः

भूः पृथ्वी देवाः सुरा, भूदेवा ब्राह्मणा वा, अग्निश्च तान् यज्ञादिना प्रकर्षेण पूजयतीत्यर्थः। द्वारकेशचरित्रवन्मर्यादारक्षणा-र्थमेवैतदिति ज्ञेयम् । नामान्तरमाहुः ।

पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और अग्नि को आप यज्ञादिक के द्वारा पूजते हैं। जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने द्वारका लीला में गृहस्थाश्रम स्वीकार करके वैदिक विधि का संरक्षण करने के लिये अनेक क्रियाएं की थी, उसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी वैदिक मार्ग का रक्षण करते हैं।

भावार्थः

आपने भूतल पर तीन सोमयज्ञ और एक विष्णु यज्ञ किया था। संवत् १६२७ में उत्तरांखंड की यात्रा पूर्ण करके मथुरा पधारने के पश्चात ब्राह्मणों की ८४ जातियों को आपने ब्राह्मण भोजन करवाया था। व्रजयात्रा के प्रारंभ में अपने तीर्थ पुरोहित के रूप में पुजागर चोबे को स्थापित करके उसका पूजन करके आपने 'ब्राह्मण पूजक' का यश प्राप्त किया था। सोमयज्ञ द्वारा आपने पृथ्वी, देवों, ब्राह्मणों और अग्नि का पूजन किया था।

कीर्तन–संगतिः

जयति श्रीवल्लभ श्रुति उद्धरन त्रिभुवन फेर नंदके भवनकी केलठानी।
इष्ट गिरिवरधर सदा सेवत चरन द्वार चारों वरन भरत पानी॥१॥

वेदपथ व्याससे हनुमानदाससें ज्ञानकों कपिलसे कर्मयोगी।
साधु-लक्ष्मन निपुन मनहु व्रजराज सुत प्रकट सुखरास मानो इन्द्र भोगी॥२॥
सिंधुसम गंभीर विमल मन अति धीर प्रीतिको जल क्षीर व्रज उपासी।
ध्यानको सनकसे भक्तको फनिगसे चाहीते सद्यकीये व्रजमें वासी॥३॥
महहु इन्द्रिजीति कृष्णसों करी प्रीति निगमकी चाल नित्य अति विशेषी।
रहित अभिमान ते बडे सन्मानते शील ओर दाम गोविन्द टेकी॥४॥
सदा निर्मलबुद्धि अष्टसिद्धि नवविधि द्वारसेवत तहां मुक्तिदासी।
रामराय गिरिधरन जान आयो शरण दीनके दुःखहरन घोषवासी॥५॥

गोब्राह्मप्राणरक्षापरः सत्यपरायणः।
प्रियश्रुतिपथः शश्वन्महानखकरः प्रभुः॥१६॥

शब्दार्थ :

गोब्राह्मणप्राणरक्षापरः = गायों और ब्राह्मणों के प्राणों की रक्षा में वो तत्पर हैं, *सत्यपरायणः* = जो सत्य ज्ञान के परायण हैं, *प्रियश्रुतिपथः* = वेद मार्ग जिनको प्रिय है, *प्रभुः* = सर्व सामर्थ्यवान, *शश्वन्महामखकरः* = हमेशा महायज्ञ करवाने वाले।

गोब्राह्मणप्राणरक्षापराय नमः (५९) *गोब्राह्मणप्राण-रक्षापरः* = गायों और ब्राह्मणों के प्राणों के रक्षक = *गोब्राह्मणप्राणरक्षापराय नमः।*

विवरण :

गवां ब्राह्मणानां च प्राणरक्षायां पर उद्युक्त इत्यर्थः। सा परा उत्कृष्टा यस्य तथेति वा। सामान्यतो रक्षापरत्वं तत्तत्स्वामिनां राज्ञां वा संभवति। प्राणरक्षा तु कालनियामकादेव भवतीति विशेषख्यापनार्थं प्राणपदमिति ज्ञेयम् नामान्तरमाहुः।

आप गायों और ब्राह्मणों के प्राणों की रक्षा करने वाले हैं इसलिए गो ब्राह्मण की प्राण रक्षा में आप तत्पर हैं। सामान्य रूप से तो गायों का मालिक उनको संभालता है, परन्तु प्राणों का रक्षण काल का नियमन करने वाले श्री प्रभुचरण ही कर सकते हैं।

भावार्थ :

आपने श्री जतिपुरा में श्रीनाथजी की सेवा प्रकार का विस्तार किया। श्रीनाथजी के लिये गायों का प्रबंध करवाया।श्रीनाथजी की गौशाला में २ हजार से भी अधिक गायों का आप रक्षण एवं पोषण करते थे। इन गायों की देखरेख के लिये चार मुख्य ग्वालों को आपने सेवा सुपुर्द की थी। उनके नाम हैं -गंग, गोपाल, गोपीनाथ और कृष्णदास। इन चारों ग्वालों के साथ अन्य अनेक ग्वालों को गऊ सेवा में रखा था। इसीलिए बादशाह अकबर ने आपको 'गोस्वामी' की उपाधि प्रदान की थी। उसी का अपभ्रंश हुआ 'गुसांई'। इसलिए आप संप्रदाय में 'श्रीगुसांईजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। अकबर बादशाह ने श्रीनाथजी की गायों को सरकारी जमीन में चरने के लिये भी अनुमति दे दी थी। आपके द्वारा नियुक्त किये हुए ग्वाले गायों की सेवा में ऐसे तत्पर थे कि कृष्णदास नाम के ग्वाल ने श्रीनाथजी की गाय को सिंह के मुंह में से भी बचाया और सिंह के मुंह में अपने प्राण सौंप दिये थे।

अष्टछाप भक्तकवियों में से नंददासजी ने समग्र श्रीमद् भागवत का व्रजभाषा में अनुवाद किया था। इसे जानकर मथुरा के पंडितों ने श्रीगुसांईजी से विनती करी कि, 'महाराज ! अब धर्मप्रेमी लोग व्रजभाषा में श्री भागवत अपने आप स्वयं ही बांच लेंगे। इसलिए अब कथा कहने के लिए हमें कोई नहीं बुलाएगा।

अब हमारा निर्वाह किस प्रकार होगा ?' तब श्रीगुसांईजी ने नंददासजी को आज्ञा की, 'रासपंचाध्यायी' को छोड़कर तुम्हारा शेष समस्त भागवत श्रीयमुनाजी में पधरा दो।' इस प्रकार आपने ब्राह्मणों की भी रक्षा की थी।

जो ब्राह्मण शास्त्र चर्चा करने आते थे उन सभी ब्राह्मणों का आप बहुत अच्छी तरह से सम्मान करते थे।

कीर्तन–संगति :

गोवल्लभ गोवर्धन वल्लभ श्रीवल्लभ गुण गिने न जाई।
भूकी रेणु तरैया नभकी घनकी बूंद परत लखाई॥१॥
जिनके चरण कमल रज वंदित संतत होत सदा चितछाई।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल नंदनंदनकी सब परछांई॥२॥
गायनसों रति गोकुलसों रति गोवर्धनसों प्रीति निबाही।
श्रीगोपाल चरण सेवारति गोप सखा सब अमित अथाई॥१॥
गोवाणी जो वेदकी कहियत श्रीभागवत भलें अवगाही।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल नंदनंद की सब परछांई॥२॥

सत्यपरायणाय नमः

(६०) सत्यपरायणः = आप सत्य परायण है = *सत्यपरायणाय नमः।*

विवरण :

सत्यपरा सन्तस्ते अयनं स्थानं यस्य स तथा। सत्य परमुत्कृष्टं याचनं ज्ञानं यस्येति वा नामान्तरमाहुः।

आपका स्थान सत्य रूपी परब्रह्म में तत्पर रहने वाले भगवदीय हैं। सत्य अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान वाले हैं।

भावार्थ :

आप उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप होने से सत्य परायण हैं। आप

साक्षात् परब्रह्म स्वरूप होने से सत्य स्वरूप हैं, इसलिए आपने गायत्री के भाष्य का विस्तृत विवेचन करके टीका की रचना की है। आपने लगभग ४८ ग्रंथों की रचना की है उसमें षोडश ग्रंथ पर की टीकाएं, अणुभाष्य के शेष डेढ़ अध्याय की रचना, विद्वन्मंडन, निबंधप्रकाश, भक्तिहंस, भक्तिहेतु, शृंगार रस मंडन, श्रीकृष्णप्रेमामृत ग्रंथ की टीका, श्रीमती टिप्पणीजी, व्रतचर्या गुप्त रस, स्वामिनी प्रार्थनाष्टक, विज्ञप्तियाँ, आर्याएँ इत्यादि अनेक उत्कृष्ट, रत्नात्मक एवं भावात्मक ग्रंथों की आपने रचना की इसीलिए आपका 'सत्य परायण' यह नाम अत्यंत सार्थक है।

कीर्तन–संगति :

प्रभुता प्रकटी श्री विट्ठलनाथकी।
आन ज्ञान सब ध्यान वाम गति यह विध जगत अकाथकी ॥१॥
भक्तिभाव प्रकट्यो यह मारग कलियुग सृष्टि सनाथकी।
शरन गये सोंपत हे श्यामहि कर गही भुजा अनाथकी ॥२॥
चतुर्भुजदास आस परिपूरन छायो अंबुज हाथकी।
कृपा विशेष बिराजे नित्य प्रति जोरी श्री गिरिधर साथ की ॥३॥

प्रियश्रुतिपथाय नमः

(६१) प्रियश्रुतिपथः = आपको वेदमार्ग अत्यंत प्रिय है = *प्रियश्रुतिपथाय नमः ।*

विवरण :

प्रियः श्रुतिपथो वेदमार्गो यस्य स तथा। श्रुतियो गोप्यस्तासां पन्थाः श्रुतिपथः प्रियः यस्येति वा। प्रियः श्रीकृष्णः स श्रुतिपथे श्रवणे यस्येति वा। निरन्तरं तमेव श्रुणोतीतिभावः। नामान्तरमाहुः।

आपको वेदमार्ग अत्यंत प्रिय है। श्रुतियों का मार्ग अर्थात्

श्रुतिरूपा गोपीजनों का मार्ग, श्रुतिरूपा गोपीजनों के प्रिय श्रीकृष्ण हैं। वे सदैव आपके श्रुतिपथ में अर्थात् श्रवण में हैं अर्थात् आप श्रीकृष्ण के गुणों का श्रवण करते हैं।

भावार्थ :

यहाँ श्री देवकीनंदनजी 'श्रुति' शब्द विविध अर्थों में समझाते हैं। श्रुति अर्थात् वेद की श्रुतियाँ। आप आचार्य के रूप में प्रकट हुए हैं, इसलिए आपने वेद का रक्षण किया है। इसलिए आपको वेद मार्ग अत्यंत प्रिय है। वेद की श्रुतियों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये वेद के उत्तरांग ब्रह्मसूत्र पर श्री महाप्रभुजी के द्वारा रचना किये हुए अणुभाष्य की आपने पूर्ति की है।

श्रुतियों का साक्षात् स्वरूप अर्थात् श्रुतिरूपा गोपीजन। श्रुतिरूपा गोपीजनों के प्रिय श्रीकृष्ण हैं। श्रुतिरूपा गोपीजन जिस मार्ग से अपने प्रिय को प्रसन्न करते हैं वह सेवा का मार्ग आपको अत्यंत प्रिय है, इसीलिए आपने सेवा के स्वरूप का विस्तार किया है।

श्रुतिरूपा गोपीजनों के प्रिय श्रीकृष्ण आपको भी प्रिय हैं। अपने प्रिय के गुणों का श्रवण करना आपको अत्यंत प्रिय है, इसलिए यहाँ श्रुति शब्द का अर्थ 'श्रवण' ऐसा किया गया। प्रिय के गुणगान के श्रवण का मार्ग जिनको प्रिय है ऐसे श्रीगुसांईजी भक्त कवियों के कीर्तनों का श्रवण करके अत्यंत प्रसन्न होते हैं।

आपने आध्यात्मिक वेद रूप यज्ञ को सेवारूपी स्वरूप प्रदान करके यज्ञ का आधिदैविक स्वरूप प्रकट किया। यज्ञ कार्य में जिस प्रकार वेदि, मेखला, अग्नि, मंडप, देवताओं का आह्वान, पूजन आदि विषयों की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार यहाँ सेवा के प्रकार में भी आपने विविध भावात्मक साधनों का प्रयोग

किया है। वेदि स्वरूप में सिंहासन इत्यादि साधनों से आपने आधिदैविक पुष्टिमार्गीय यज्ञ का स्वरूप प्रकट किया है।

आपने चंद्र सरोवर पर विप्रयोग का समय व्यतीत करने के लिये श्री दामोदरदास हरसानीजी को अपने पास रखा। एवं उनके पास से श्री महाप्रभुजी के प्राकट्य का रहस्य एवं लीला के प्रकार का श्रवण किया। जो ग्रंथ संवाद के रूप में प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार आपने श्रीकृष्ण के गुणों के श्रवण में भी तत्परता बतलाई है।

कीर्तन–संगति :

मेरें नाहिन साधन आन।
श्रीविट्ठलनाथ मूल मंत्र यह पदपंकज रज धान॥१॥
श्रीगोपीजन वल्लभ स्मरत संतत हित कल्यान।
सगुण स्वरूप प्रकट पुरुषोत्तम श्री विट्ठलको ध्यान॥२॥
श्री गिरिधर गोविंद इंदु श्री बालकृष्ण गुणगान।
श्री गोकुलपत रघुपति यदुपति सुयश श्रवण पुटपान॥३॥
छहों पुत्र सरसमरथ सातों पुत्र श्री घनश्याम।
माधो चरण शरणजो राखो करहु कृपा निधान॥४॥

शश्वन्महामखकराय नमः

(६२) शश्वन्महामखकरः = आप हमेशा सोमयज्ञ इत्यादि करने वाले हैं = *शश्वन्महामखकराय नमः।*

विवरण :

मखो यागः सोमात्मकस्तं करोतीति मखकरः। महांश्चासौ मखस्तं करोतीति वा। शश्वत् नित्यं करोति तथेत्यर्थः। अनन्यागस्तु स्वर्गादिफलसाधकोभवति। नश्वरोति भवति;

एतत्कृतस्तु पुरुषोत्तमप्रापको भवतीति तस्य महत्त्वं शाश्वतिकत्वं च। उक्तफलस्य महत्वांन्नित्यवाच्च। नामान्तरमाहुः।

आप हमेशा सोमयज्ञ इत्यादि यज्ञ करने वाले हैं। यह यज्ञ साधारण यज्ञ नहीं हैं, परन्तु महायज्ञ हैं। दूसरे यज्ञ तो साधारण स्वर्ग इत्यादि का फल देते हैं वे फल नश्वर होते हैं, परन्तु इस यज्ञ का फल श्रीपुरुषोत्तम की प्राप्ति करवाने वाला है, इसीलिए वह शाश्वत और महान है। इसीलिए उसे 'महायज्ञ' कहा गया है।

भावार्थ :

आपने प्रथम सोमयज्ञ संवत् १५०४ में अडेल में किया था। दूसरा सोमयज्ञ संवत् १६०१ में गोकुल में किया, तीसरा सोमयज्ञ श्री गिरिराजजी में किया, चौथा सोमयज्ञ १६१० में चरणाट में किया। इसके सिवाय आपने श्री गिरिराजजी में एवं चरणाट में एक-एक विष्णु यज्ञ भी किया। इस प्रकार आपने महायज्ञों को करके वेदमार्ग का प्रकाश एवं प्रचार किया है।

अन्य जीव स्वर्गादि फल की कामना के लिए आधुनिक समय में यज्ञ करते हैं, जबकि आपने मात्र प्रभु की प्रसन्नता एवं भगवद् प्राप्ति के लिए ही यज्ञ किए। इसलिए इन यज्ञों का फल शाश्वत है, अतएव आपके द्वारा किए हुए यज्ञ साधारण न होकर महायज्ञ हैं।

कीर्तन–संगति :

श्री विट्ठलराजकुमार श्री गिरिधर अवलोकत मन भयो आनंद।
वेद पुराण सज्ञान साध्य सब कलियुग उद्धरण आनंदकंद॥१॥
विमल शरीर नाम यश निर्मल विमल वदनकी मुसकानमंद।
गोविंद प्रभु प्रकटित संतनहित लीलारूप धर्यो गोविंद॥२॥

प्रभवे नमः *(६३) प्रभुः = आप सर्वसामर्थ्यवान हैं = प्रभवे नमः।*

विवरण :

प्रकृष्टो भवतीति प्रभुः। सर्वसामर्थ्यवानित्यर्थः।

आप सर्वसामर्थ्यवान हैं।

भावार्थ :

'प्रभु' अर्थात् कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम्, सर्वतंत्रस्वतंत्र। आपका यह स्वरूप नीचे के वार्ता-चित्रों के द्वारा भली-भाँति समझा जा सकता है।

वार्ता-चरित्र-संगति :

श्रीगुसांईजी ने हतित-पतित जैसे भयंकर प्रेतों का उद्धार किया। उन्हें नित्यलीला में स्थान दिया। आपका यह 'कर्तुम्' स्वरूप है।

मुसलमान जाति की कुंजरी को श्रीगुसांईजी की कृपा से श्रीगुसांईजी के स्वरूप में श्री गोवर्धननाथजी सहित श्री स्वामिनीजी के दर्शन हुए, इसलिए उसे अत्यंत विरह ताप हुआ। कुछ समय के बाद उसका देह छूटा। यदि श्रीगुसांईजी ने ऐसा सोचा होता तो उसी समय उसे लीला में प्रवेश करवा सकते थे, परन्तु 'अकर्तुम्' स्वरूप में आपने आज्ञा की, 'इस कुंजरी को कुछ बाधक नहीं है, परन्तु वह दूसरा जन्म महावन में ब्राह्मण के घर लेगी और फिर नित्य लीला को प्राप्त होगी।' यहाँ आपने अपना 'अकर्तुम्' स्वरूप प्रकट किया।

राजा बीरबल ने श्रीगुसांईजी की अनेक प्रकार से सेवा की थी। बंगालियों को श्रीनाथजी की सेवा में से दूर करने में राजा टोडरमल के साथ उसने अत्यंत मदद की थी। उनकी बेटी की गिनती २५२ वैष्णवों में होती है, परन्तु उसके एकाध अपराध से श्री गुसांईजी ने नाराज होकर आज्ञा करी, 'अब बीरबल हमारे काम से गया।' आपके वचन सत्य हुए। बीरबल ने बादशाह अकबर के द्वारा स्थापित किए हुए 'दीनेइलाहि' धर्म को स्वीकार किया। यहाँ पर आपने अपना 'अन्यथाकर्तुम्' सामर्थ्य प्रकट किया है।

कीर्तन–संगति :

प्रभु श्री वल्लभ गृहप्रकट भये।
हरिलीला रससिंधु सुधानिधि वचन किरण सब ताप गये ॥१॥
मायावाद तिमिर जीवनको प्रकटनाश पायो उर अंतर।
फूली भक्ति कुमुदिनी चहुंदिश शोभित भये भक्त मानस सर॥२॥
मुदित भये कमल मुख तिनके वृथावाद नाहिं गिनत बल।
गिरिधर अन्य भजन तारागण मंर भये भागे गति चंचल॥३॥

* * *

श्री विट्ठल प्रभु जगत उद्धारण देखो भूतल आयेरी।
नखशिख सुंदर रूप कहा कहूं कोटिक काम लजाये॥१।
अनेक जीव जो किये कृतारथ श्रवण सुनत उठ धाये।
शरणमंत्र श्रवण सुनाई के पुरुषोत्तम कर गृह आये॥२॥
शेष सहस्त्र मुख निशदिन गावे तेऊ पार न पायेरी।
छीतस्वामी गिरिधन श्री विट्ठल प्रेम पतित सब धायेरी॥३॥

कृष्णानुग्रहसंलभ्यो महापतितपावनः ।
अनेकमार्गसंक्लिष्टजीवस्वास्थ्यप्रदो महान् ॥१७॥

शब्दार्थ :

कृष्णानुग्रह =श्रीकृष्ण की कृपा दिलवाने वाले, *महापतितपावनः* = महापतितों का उद्धार करने वाले। *अनेकमार्गसंक्लिष्टस्वा-स्थ्यप्रदो महान्*= अनेक उत्कृष्ट मार्गों से छुड़वाकर स्वस्थता प्रदान करने वाले आप महान हैं।

कृष्णानुग्रहसंलभ्याय नमः

(६४) कृष्णानुग्रहसंलभ्यः = आपके द्वारा श्रीकृष्ण का अनुग्रह भली-भाँति प्राप्त किया जा सकता है = *कृष्णानुग्रह-संलभ्याय नमः।*

विवरण :

कृष्णस्यानुग्रहोंगीकारः सम्यग् लब्धुं योग्यो यस्मात्स तथा। कृष्णानुग्रहेण तथेति वा नामान्तरमाहुः ।

आपकी कृपा से जीव श्रीकृष्ण की कृपा को भली-भाँति प्राप्त कर सकता है।

भावार्थ :

प्रभु की कृपा प्राप्त करने का जीव में कोई सामर्थ्य नहीं है प्रभु श्री महाप्रभु और श्रीगुसांईजी के वश में है और इसलिए श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी जिस जीव पर कृपा करे उसी को प्रभु की कृपा प्राप्त हो सकती है। आपके द्वारा ही जीव प्रभु की शरण प्राप्त कर सकता है एवं समर्पण भी कर सकता है। इसीलिए अलीखान पठान की बेटी पीरजादी इत्यादि अनेक जीवों को प्रभु ने साक्षात् दर्शन दिए फिर भी यह आज्ञा की थी कि, 'तुम

श्रीगुसांईजी के सेवक बनो उसके बाद ही तुम मेरे पूर्ण कृपापात्र बन सकोगे।'

वार्ता–चरित्र–संगति :

दिल्ली के रसखानजी एक लौकिक बालक के रूप में अत्यंत मुग्ध हो गये थे। उन्होंने एक वैष्णव के पास श्रीनाथजी के मुकुट काछनी के श्रृंगार के चित्रजी के दर्शन किए थे। उनका मन श्रीनाथजी के अलौकिक रूप में लग गया, वे तुरंत ही गिरिराज आए। वहाँ उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं मिला, क्योंकि वे जाति के यवन थे, इसलिए वे गोविंदकुंड पर श्रीनाथजी के विरह में बैठे रहे, तब श्रीनाथजी ने मुकट-काछनी का श्रृंगार करके, श्रीगिरिराजजी के शिखर पर चढ़कर वेणुनाद किया। रसखानजी ने वह वेणुनाद सुना। तब श्रीनाथजी ने गोकुल में श्री गुसांईजी को आज्ञा की, 'एक दैवी जीव तीन दिन से मेरे लिए भूखा-प्यासा बैठा है। तुम यहाँ आकर उसे शरण में लो तो मैं उसे अंगीकार करूं, मेरी प्रतिज्ञा है कि तुम जिस जीव को ब्रह्मसंबंध कराओगे उसी के साथ में बोलूंगा और उसी को मेरे अंग का स्पर्श कराऊंगा, उसी के हाथ से में आरोगूंगा।' श्रीगुसांईजी गिरिराज पधारे। रसखानजी को सेवक बनाया, तब श्रीनाथजी उनको साक्षात् दर्शन देते थे और उनके साथ खेलते भी थे।

कीर्तन–संगतिः

प्रकटे श्री विट्ठलेश सोवन फूले फूलेरी।
सुरनरमुनि व्यास आदि नाहि कोऊ समतूले॥१॥
सुखद उदार करुणानिधि भक्ति भाव देही।
भूतलमें अलभ्य लाभ व्रजके सनेही॥२॥

लीलारस सागर प्रभु गोवर्धन विलासी।

श्री वल्लभ सुवन चरणकमल गावत निज दासी ॥३॥

महापतितपावनाय नमः

(६५) महापतितपावनः = आप अनेक पतितों को भी पावन करने वाले हो *= महापतितपावनाय नमः ।*

विवरण :

महापतितान्महापातकदूषितान्पावयति पवित्रयतीत्यर्थः । महापतितान्पावयन्ति नरकेभ्य इति महापतितपाः सन्तस्तानवति रक्षतीति महापतिताः पावना यस्मादिति वा । यत्प्रसादेन पतितानामपि पावनत्वं सम्पद्यते तस्य तद्भक्तानां वा तथात्वे किं वक्तव्यमिति भावः । नामान्तरमाहुः ।

बड़े से बड़े पापी को भी आप पवित्र करते हैं। नर्क में गिरने वाले महान पापी का रक्षण करने वाले संत पुरुषों का भी श्रीगुसांईजी रक्षण करते हैं। आपके प्रताप बल से आपके पवित्र भक्त भी महान पापियों को पवित्र करने का सामर्थ्य रखते हैं।

भावार्थ :

आप साक्षात् प्रभु हैं, इसलिए चाहे जैसे दुष्ट से दुष्ट पापी जीवों का भी आप उद्धार करने का सामर्थ्य रखते हैं इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त नरक में गिरे हुए महान पापी जीवों का रक्षण करने वाले, परन्तु आपकी कृपा से आपके भक्त भी अनेक पापी जीवों का उद्धार करने में समर्थ हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक वैष्णव ने विचार किया, 'श्रीगुसांईजी पापियों का किस प्रकार उद्धार करते हैं। उसकी परीक्षा करना चाहिये, इसलिए

वह वैष्णव श्मशान में रहकर जले हुए मुर्दे की आग पर रसोई बनाकर खाते थे। कुछ समय के बाद एक राजा को कोढ निकला। बहुत दवा करने पर भी उसका रोग दूर नहीं हुआ, तब वे श्रीगुसांईजी के पास आए। श्रीगुसांईजी ने उनको आज्ञा की, 'तुम श्मशान में जाओ। वहाँ एक वैष्णव रहते हैं उनका झूठन खाओ। उसके चरित्र में किसी प्रकार का अभाव मत लाना तो तुम्हारा कोढ मिट जाएगा। राजा ने श्मशान में आकर उस वैष्णव का झूठन खाया। उससे उनका कोढ मिट गया। श्रीगुसांईजी ने इस वैष्णव का वैष्णव दास रखा। वैष्णव ने देह छोड़ने से पहले अपना सर्वस्व श्रीगुसांईजी को अंगीकार करवा दिया।

एक व्रजवासी वैष्णव की बहिन विधवा हो गई थी। वह अपना सारा द्रव्य लेकर अपने भाई के घर रहने को आ गई। उसके भाई भी अपनी बहिन की सम्पत्ति के लोभ में आ गए। उन्होंने जहर पिलाकर अपनी बहन को मार डाला। वह बहिन सर्पयोनि को प्राप्त हुई। वह गोकुल के पास घाट पर रहती थी और वहाँ से आने-जाने वाले लोगों को काट कर उनके प्राण हरण कर लेती थी। श्रीगुसांईजी वहाँ पधारे और अपने चरणप्रक्षालन का जल उस सर्प को लगा उससे उसे पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ। उसने आकर अपने फन को श्रीगुसांईजी के चरणारविंद पर रखा। आपने नाममंत्र देकर उसका उद्धार किया।

कीर्तन–संगति :

श्री विट्ठलेश चरण कमल पावन त्रैलोक

करण दरस परस सदरं वर वारवार वंदे।

समरथ गिरिराज धरण लीला निज प्रकट

करण संतन हित मानुष तनु वृंदावन चंदे।

चरणोदक लेत प्रेत ततक्षणते मुक्तभये

करुणामय नाथ सरा आनंद निधिकंदे।

वारनें भगवानदास विहरत सदा

रसिकराय जय जय यश बोलबोल गावत श्रुति छंदे।

अनेकमार्गसंक्लिष्टजीव–स्वास्थ्यप्रदो महते नमः

(६६) अनेकमार्गसंक्लिष्ट-जीव-स्वास्थ्यप्रदो महान = आप कर्म आदि अनेक मार्गों में रखड़ने वाले जीवों को निश्चिंतता अर्पित करते हैं = *अनेकमार्गसंक्लिष्टजीव-स्वास्थ्यप्रदो महते नमः।*

विवरण :

अत्र नामद्वयेनैकमेव नामोक्तं भवतीति ज्ञेयम्। अनेके बहवो ये मार्गाः कर्म ज्ञानोपासनादयस्तैः सम्यक् किलष्टाः क्लेशं प्रापिता ये जीवा स्तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यत' इति ब्रह्मवचनादभगवत्सम्बन्धाभावात् किलष्टा एव, तेषां स्वास्थ्यं नैश्चिन्त्यं प्रकर्षेण यद्रातीति तादृशो महानित्यर्थः। नह्येतादशोन्योस्तीति भावः। नामान्तरमाहुः।

कर्म, ज्ञान, उपासना इत्यादि अनेक मार्गों में भटकने वाले जीवों को शरण में लेकर आप उन्हें निश्चिंतता अर्पित करते हैं। भक्ति से रहित अन्य किसी भी मार्ग में क्लेश ही मिलता है। फोतरे को कूटने से उसका कोई फल नहीं मिलता है। आपके समान जीव को स्वास्थ्यता अर्पित करने वाला दूसरा कोई नहीं है।

भावार्थः

श्रीमहाप्रभुजी *'श्रीकृष्णाश्रय'* में आज्ञा करते हैं कि, 'इस कलियुग में सभी मार्ग नष्ट हो गए हैं और चारों ओर पाखंड फैल गया है। इस स्थिति में शास्त्रों में बतलाये हुए कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग अथवा उपासना मार्ग से भगवद् प्राप्ति करना सरल नहीं है। कलियुग में यह सभी मार्ग असाध्य हैं। अनेक जीव भगवद् प्राप्ति की भूलभूलेया में उलझ कर इन सभी मार्गों में घूमकर बहुत क्लेश प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे जीवों को श्रीगुसांईजी शरण में लेकर भक्तिरूपी सुखद सेवामार्ग बतलाते हैं। इससे जीवों को बहुत स्वस्थता प्राप त होती है। ऐसी स्वस्थता कलियुग में आपको छोड़कर अन्य कोई नहीं दे सकता है, इसलिए आप महान हैं।

कीर्तन–संगति :

श्रीमद् वल्लभ के घर प्रभु जो फिर अवतार न धरते।
तो हम सरिखे मूढ पतितजन कहो कैसे निस्तरते॥
हों बिन पाये व्रजपति पदपंकज ताकी सेवा करते।
हों श्रीगिरिराजधरण राधिकावर बिन रसना कहां उच्चरते॥
शिव सुरेश दिनमणि गनेश के होय कौन से डरते॥
अति आतुर पुनि चडे तूलसम सबन के पायन करते।
तब हबहु लोगनकी नायी घर-घर भटकत फिरते।
कर्म जोग पुनि ज्ञान उपासना दाख हि में पचि मरते।
कहा भयो निज बिरद जानिके पतित समझ उद्धरते।
रुचिर रूप बलदास नारायण तृषिण लोचन कहां डरते।

नानाभ्रमनिराकर्ता भक्ताज्ञानभिदुत्तमः ।
महापुरुषसत्ख्यातिर्महापुरुषविग्रहः ॥२८॥

शब्दार्थ :

नानाभ्रमनिराकर्ताः =अलग-अलग भ्रमों को दूर करने वाले, *भक्ताज्ञानभिदुत्तमः* = भक्तों के अज्ञान को दूर करने वाले, *महापुरुषसत्ख्यातिः*=आपकी ख्याति महापुरुषों में प्रसिद्ध हैं, *महापुरुष विग्रहः*= भक्तों के लिए ही आपका प्राकट्य है।

नानाभ्रमनिराकर्त्रे नमः

(६७) *नानाभ्रमनिराकर्ता* = आप विविध प्रकार के भ्रम को दूर करते हैं = *नानाभ्रमनिराकर्त्रे नमः ।*

विवरण :

नानाविधो यो भ्रम इतरमार्गबोधकासच्छास्त्रादिजनित-स्तस्य सर्वप्रमाणसिद्धभक्तिमार्गस्थापनेन निराकर्ता दूरीकर्तेत्यर्थः। भ्रमनिवृत्तिरपि न सर्वषां, किन्तु भक्तानामेवेति वक्तुं नामान्तरमाहुः ।

अन्य मार्ग का बोध करने वाले असत शास्त्रों से जीवों को जो भ्रम होता है उस भ्रम को आप भक्तिमार्ग का स्थापन करके दूर कर देते हैं। आप सबका भ्रम दूर नहीं करते, परन्तु केवल भक्तों का ही भ्रम दूर करते हैं। इसी बात को सूचित करने के लिए दूसरा नाम कहते हैं।

भावार्थ :

अलग-अलग जीवों के अधिकार को ध्यान में रखकर प्रभु ने अलग-अलग महापुरुषों द्वारा अलग-अलग शास्त्रों की रचना करवाई है। कई शास्त्र तो असत शास्त्र भी हैं। अलग-अलग

शास्त्रों का अध्ययन करने से सामान्य मनुष्य की बुद्धि भ्रमित हो जाए ऐसी स्थिति है। इस प्रकार जीवों में धर्म का सत्य तत्व जानने में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इन जीवों में से जो दैवी जीव हैं उनके लिए आपने भक्ति मार्ग अथवा पुष्टि मार्ग का प्रकाश करके अन्य शास्त्रों द्वारा उत्पन्न हुए भ्रम को दूर कर दिया है। आप इस जगत के सभी जीवों का भ्रम दूर नहीं करते हैं। केवल भक्तों के भ्रम को ही दूर करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी श्री ठाकुरजी को राजभोग धरके श्री यमुनाजी के किनारे संध्यावंदन कर रहे थे। उसी समय श्री गोविंदस्वामी एक वैष्णव के साथ वहाँ आ पहुंचे। श्रीगुसांईजी के दर्शन करते हुए गोविंदस्वामी के मन में एक विचार आया। 'यह तो कोई कर्मकांडी महापुरुष हैं। ऐसे कर्मकांड करने वाले को श्रीठाकुरजी कैसे मिलते होंगे ?' गोविंदस्वामी ऐसा विचार कर ही रहे थे तब आपने संध्यातर्पण करके, गोविंदस्वामी से पूछा, 'गोविंददास कब आए ?' गोविंदस्वामी ने कहा, 'महाराज ! अभी आया हूँ।'

श्रीगुसांईजी मंदिर पधारे। गोविंदस्वामी ने विचार किया, ' उन्होंने मुझे कभी देखा नहीं है तो वे मुझे कैसे जानते हैं ? गोविंदस्वामी मंदिर में गए, वहाँ राजभोग के दर्शन किए। गोविंदस्वामी को साक्षात् बाललीला के दर्शन हुए। गोविंदस्वामी के मन का संदेह दूर हुआ। हृदय का भ्रम दूर हुआ। उन्होंने विनती की, 'महाराज ! आप कपट रूप दिखते हो। आपके यहाँ साक्षात् प्रभु बिराजते हैं फिर भी आप बाहर से वेदोक्त कर्म करते हो।' आपने आज्ञा की, 'गोविंददास, भक्तिमार्ग फूल है एवं

कर्ममार्ग कांटों की बागड़ है। कर्ममार्ग की बागड़ के बिना भक्तिमार्ग के फूल की रक्षा नहीं हो सकती है और यदि रक्षा न हो तो फूल खिलेगा नहीं।' इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने गोविंदस्वामी का भ्रम दूर किया।

कीर्तन–संगति :

भजो श्री वल्लभ सुतके चरणं।
नंदकुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करणं॥१॥
दूर किये कलि कपट वेद विधि मन प्रचंड विस्तरणं।
अति प्रताप महिमा समाज यज्ञ शोकताप त्रय अघहरणं॥२॥
पुष्टि मर्यादा भजन रस सेवा निजजन पोषण भरणं।
नंददास प्रभु प्रकट रूप धर श्री विट्ठलेश गिरिवरधरण॥३॥

भक्ताज्ञानभिदुत्तमाय नमः

(६८) *भक्ताज्ञानभिदुत्तमः* = भक्त के अज्ञान को आप दूर करते हैं इसलिए आप उत्तम हैं = *भक्ताज्ञानभिदुत्तमाय नमः।*

विवरण :

भक्तनामज्ञानं भ्रममन्यथाज्ञानं च भिनत्तीति भक्ताज्ञानभित् स आसावुत्तमश्च स तथा। भक्तानामज्ञानं पूर्वदशोत्पन्नं, भक्तत्वे तदसम्भवादिति ज्ञेयम्। भ्रमनिवृत्तौ न जीवानां साधनत्वमपेक्षेत इत्युत्तमत्वम्। उत्तमः पुरुषोतम इति वा। भक्तास्तथाविधा यस्य, यस्मादिति वा। नामान्तरमाहुः।

आप भक्त के अज्ञान को दूर करते हैं, इसलिए आप सर्वोत्कृष्ट हैं पूर्व दिशा के भक्त का अज्ञान हो तो उसे भी दूर करते हैं। उत्तर दिशा में भक्त का अज्ञान संभव नहीं है। अज्ञान

दूर करने में भक्त के किसी भी साधन की आप अपेक्षा नहीं रखते हैं, इसलिए आप उत्तम पुरुषोत्तम है। आपके समान आपके भक्त भी अज्ञान को भेदने वाले हैं।

भावार्थ :

श्री महाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी ने अपने शरणस्थ जीवों का अज्ञान तीन प्रकार से दूर किया था। उत्तम दैवी जीवों को शरण में आने से पहले साक्षात् पुरुषोत्तम स्वरूप के दर्शन करवाकर के उनका अज्ञान दूर किया है। मध्यम पुष्टि जीवों को शास्त्र चर्चा द्वारा अपने ज्ञान का परिचय करवाकर शास्त्र चर्चा में पराजित करके यथार्थ शास्त्र ज्ञान करवा करके उनका अज्ञान दूर किया है, जबकि सामान्य जीव वंश परम्परा से अज्ञानवश स्थिति में आपकी शरण में आए, तब भी आपने कृपा करके उनको भक्तिमार्ग का ज्ञान करवाया है तथा उनका अज्ञान दूर किया है। भक्ति मार्ग का ज्ञान जीव अपने किसी साधन के द्वारा नहीं कर सकता है। वह केवल श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी की कृपा से ही होती है। इसीलिए भगवदियों ने गाया है कि *'जोंलो हरि आपुन पे न जनावे, तोंलो वेद मार्गको सिद्धांत पढ़े-सुने नहीं आवे।'*

श्रीगुसांईजी ने स्वयं तो भक्तों पर कृपा करके उनका अज्ञान दूर करके उन्हें ज्ञान प्रदान किया है, परन्तु अपने भक्तों में भी ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो गया है कि आपके भक्तों ने भी अन्य जीवों पर कृपा करके उनको भक्ति मार्ग का ज्ञान करवाया है और उनके संग से कई जीवों को वैष्णव बनवाया है। उदाहरण के तौर पर चाचा हरिवंशजी, उन्होंने भील जैसी जाति के अनेक जीवों को सच्ची समझ दी और श्रीगुसांईजी के सेवक बनाए।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी के एक सेवक की आगरा में कपड़े की दुकान थी। एक बार उन्हें ऐसा मनोरथ हुआ कि मैं उत्तम प्रकार का अलग-अलग प्रकार का कपड़ा लेकर गोकुल जाऊं और वहाँ श्री गुसांईजी तथा उनके परिवार को वस्त्र पहनाऊं। उन्होंने दो-तीन साल में उत्तम से उत्तम वस्त्रों के थान इकट्ठे किये। यह सब-कुछ लेकर वह गोकुल आए और उन वस्त्रों को श्रीगुसांईजी के समक्ष रखा। श्रीगुसांईजी ने प्रसन्न होकर आज्ञा की, 'यह पोटली श्री स्वामिनीजी के योग्य है ।' ऐसा कहकर वह पोटली उन्होंने श्रीयमुनाजी में पधरा दी।' दूसरी पोटली भी श्रीयमुनाजी की मध्य धारा में पधरा दी। वैष्णव मन में विचार करने लगा। दो-तीन वर्षों तक बड़ी मुश्किल से ऐसे उत्तम वस्त्र इकट्ठे किये, परन्तु मेरा मनोरथ मेरे मन में ही रह गया। खेद करते-करते उसने रात्रि व्यतीत की। उन्होंने कुछ भी खान पान नहीं किया।

श्रीगुसांईजी परम दयालु हैं। मध्यरात्रि को वे उस वैष्णव को लेकर श्रीहस्त में मेवा का डबरा लेकर श्री ठकुरानी घाट पर आए। दूसरे वैष्णवों को उन्होंने आज्ञा की, 'कोई भी हमारे साथ नहीं आएगा।' श्रीठकुराणी घाट पर आपने उस वैष्णव को आज्ञा करी, 'देखो तुम्हारे वस्त्र श्रीस्वामिनीजी ने अंगीकार किये हैं।' वैष्णव ने खुद धरे हुए वस्त्रों में शोभायमान श्री स्वामिनीजी के दर्शन किये। श्रीगुसांईजी मेवा का डबरा लेकर श्रीयमुनाजी की निकुंज में पधारे। वहाँ युगल स्वरूप को भोग धरा। इसके बाद नृत्यादि लीला हुई। इन सभी लीलाओं के दर्शन आपने उस

वैष्णव को करवाए तथा उसके अज्ञान को दूर किया।

कीर्तन–संगति :

श्रीवल्लभलाल के गुणगाऊं।

माधुरी माधुरी मूरति देखे आनंद सदन

मदनमोहन नयन चेन पाऊं॥१॥

श्रीवल्लभनंदन जगत वंदन शीतल चंदन ताप हरण

येही महाप्रभु इष्टकरण चरणन चित लाऊं।

छीत स्वामी मन वच कर्म परम धर्म येही

मेरे लाडिले लडाऊं॥२॥

महापुरुषसत्ख्यातये नमः

(६९) महापुरुषसत्-ख्यातिः = आपकी ख्याति महापुरुषों में है = *महापुरुषसत्ख्यातये नमः।*

विवरण :

महापुरुषेषु महत्सु सति वर्तमाना ख्यातिः प्रसिद्धिर्यस्य स तथा। महापुरुषाणां सति समीचीना ख्यातिर्यस्मादिति वा तेभ्यः सति समीचीना सा यस्येति वा। तेषां भगवदीयत्वेन ख्यातिरस्य भगवत्त्वेनेति भावः। नामान्तरमाहुः।

आपकी ख्याति महापुरुषों में वर्तमान समय में प्रसिद्ध है, इसी प्रकार आपसे महापुरुषों की भी ख्याति है। फिर महापुरुषों के द्वारा आपकी ख्याति विशेष प्रसिद्ध हुई है।

भावार्थ :

आपश्री के समकालीन सर्व महापुरुषों में आपकी कीर्ति

प्रसिद्ध थी। इसलिए श्रीकृष्णचैतन्य सम्प्रदाय एवं अन्य संप्रदायों के आचार्यों तथा विद्वानों, कलाकारों तथा राजा सभी आपको मिलने के लिये सामने से आते थे।

महापुरुषों की कीर्ति बढ़े इसी प्रकार से आप सबका आदर-सत्कार करते थे। जिनको-जिनको भगवद् लीलाओं का सानुभव होता था उन सबके रचे हुए पद आप श्रीनाथजी के सम्मुख कहने की आज्ञा करते थे तथा उनके पदों इत्यादि की प्रशंसा भी करते थे। अकबर के राजगवैये तानसेन के संगीत की भी आपने कदर की थी। आपके भक्तों के द्वारा आपकी ख्याति विशेष रूप से प्रसरित हो गई थी। चाचा हरिवंशजी जैसे अनेक भगवदीयों ने आपकी ख्याति को बढ़ाने में बहुत बड़ा हिस्सा बंटवाया था।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार चाचा हरिवंशजी गुजरात में पधारे थे। रास्ते में एक राजपूत अपनी बेटी को उसके ससुराल से अपने घर ले जा रहा था। वह बेटी लीला का जीव होने से चाचाजी की दृष्टिमें अलौकिक स्वरूप में दिखाई दी। चाचाजी को मनोरथ हुआ कि यह अभोग्य सामग्री श्रीनाथजी के लायक है, परन्तु श्रीनाथजी वैष्णव के बिना कैसे अंगीकार कर सकते हैं।'

राजपूत की बेटी को वैष्णव होने की उत्कंठा जागृत हुई। उन्होंने चाचाजी को विनती करी, 'हमको वैष्णव बनाओ' चाचाजी ने श्रीगुसांईजी का ध्यान करके बाप-बेटी दोनों को नाममंत्र दिया। तुलसी माला पहनाई, उसके बाद चाचाजी स्वयं उनके गाँव गये। वे चाचाजी को अपने घर ले गये। रात को चाचाजी ने श्रीनाथजी से विनती की, 'प्रभु यह अभोग्य सामग्री है। अति

उत्तम है, आप यहाँ पधारकर उसका अंगीकार करिये।'चाचाजी की विनती से श्रीनाथजी ने उसका अंगीकार किया।' उस राजपूत की बेटी को सुबह बुखार आया और वह भगवद् लीला में प्राप्त हो गई। श्रीनाथजी ने सुबह श्रीगुसांईजी को यह समाचार दिए। जब चाचाजी परदेश से वापस आये, तब श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, 'प्रभु को विनती करते हुए सेवक ने विचार करना चाहिये कि प्रभु को उसमें श्रम होगा या नहीं ?' वह राजपूतानी लीला में प्रविष्ट हुई, परन्तु श्रीठाकुरजी तो बालक हैं। उन्हें परिश्रम न हो उसका विचार करना चाहिये।'

चाचाजी जैसे समर्थ महापुरुष में आपकी ख्याति कितनी महान है। चाचाजी के अलौकिक कार्य में भी श्रीठाकुरजी के श्रम का विचार करके आपने अलौकिक शिक्षा प्रदान की। आपका ऐसा अलौकिक महापुरुषत्व चाचाजी जैसे अंतरंग भक्तों के सिवाय दूसरा कौन समझ सकता है।

कीर्तन–संगति :

बलबल हों तनक तनक कर डारों इन पर जे रहे निशदिन चरणननेरे।
जीवनमुक्त सदा तेही जन जो श्री वल्लभनंदन के चेरे॥१॥
तिनकी महिमा मोपें वरणी न जाई जिनतन हंसहंस हेरे।
चतुर कहे श्री विठ्ठलनाथ प्रभुसों हमें हूं गिनिये तिनमें भलेबुरे तो तेरे॥२॥

महापुरुषविग्रहाय नमः

(७०) महापुरुषविग्रहः = महा-पुरुषों के लिए ही आपका श्रीअंग है = *महापुरुषविग्रहाय नमः।*

विवरण :

पुरुषाणां भगवत्सम्बन्धादेव महत्वमिति महापुरुष

भक्तास्तदर्थो विग्रहः शरीरं यस्य स तथा । तदर्थं प्रकटइत्यर्थः । महापुरुषाः भक्तास्ते विग्रहो यस्येति वा । नामान्तरमाहुः ।

भगवान के संबंध में महापुरुष बने हुए भगवदियों के लिए ही आपका श्रीअंग है। भक्त के लिए ही आप प्रकट होते हैं। यदि दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा कहा जा सकता है कि भक्त ही आपके श्रीअंग हैं।

भावार्थ :

आप भक्तों के लिए ही प्रकट हुए हैं। आपको भूतल पर प्रकट होने का अन्य कोई प्रयोजन नहीं है। लीला में से बिछुड़े हुए दैवी जीवों का उद्धार करके उन्हें पुनः लीला में ले जाने के लिये ही आप इस भूतल पर पधारे हैं। आपने ही दैवी जीवों को खींचकर शरण में लेकरके प्रभु को सौंपा है। आपके द्वारा ही यह जीव महापुरुष बने हैं और भगवदियों के रूप में जगत में प्रसिद्ध हुए हैं। आपके प्रत्येक श्रीअंग में भक्त बसे हुए हैं, इसलिए आपका श्रीअंग भक्तों से ही परिपूर्ण है ऐसा भी यदि कहें तो कुछ गलत नहीं है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी श्री रुक्मणीबहुजी के साथ बातचीत कर रहे थे, तब आपने आज्ञा करी, 'सभी वैष्णव मेरे हैं। वे सब मेरे अंग के विविध रूप हैं।' तब श्रीरुक्ष्मणीबहुजी ने पूछा, 'चाचा हरिवंशजी आपके किस अंग का स्वरूप हैं ?' आपने आज्ञा करी, 'हरिवंश मेरे नेत्र की श्याम पुतली है।' कुछ दिनों के बाद श्रीगुसांईजी के नेत्र दुःखने लगे। श्रीरुक्ष्मणीबहुजी ने पूछा, 'आपके नेत्र क्यों दुःख रहे हैं?', तब आपने आज्ञा करी, 'चाचाजी को आज गुजरात प्रदेश करते हुए ठोकर लगी है, इसका दुःख है,

इसलिए मेरे नेत्र दुःख रहे हैं।' जब चाचाजी का दुःख निवृत्त हुआ, तब आपके नेत्र भी दुःखरहित बन गये। इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने श्री रुक्ष्मणीबहुजी को अपने वैष्णवों का स्वरूप प्रत्यक्ष बतलाया।

कीर्तन–संगति :

श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो न जाय।
प्रगट परमानंद गोकुल बसत है सब जगत के सुखदाय॥१॥
भक्ते मुक्ति देत सबन को निजजन को कृपा प्रेम बरखात अधिकाई।
सुखमें सुखरूप सुखद एक रसना कहां लो बरनो गोविंद बलि जाय॥२॥

दर्शनीयतमो वाग्मी मायावादनिरासकृत्।
सदाप्रसन्नवदनो मुग्धस्मितमुखाम्बुजः॥१९॥

शब्दार्थ :

दर्शनीयतमः = आप अत्यंत दर्शनीय हैं, *वाग्मी* = आप वाग् चतुर हैं, *मायावादनिरासकृत* = मायावाद का आप खंडन करने वाले हैं, *सदाप्रसन्नवदनो*= आप हमेशा प्रसन्न वदन हैं, *मुग्धस्मित-मुखांबुजः* = मुग्ध स्मितयुक्त मुखारविंद वाले हैं।

दर्शनीयतमाय नमः

(७१) दर्शनीयतमः = आप अत्यंत सुंदर हैं = *दर्शनीयतमाय नमः।*

विवरण :

द्रष्टुं योग्यो दर्शनीयः, अतिशयितो दर्शनीयः दर्शनीयतमः। नामान्तरमाहुः।

आप अत्यंत सुंदर मनोहर हैं।

भावार्थ :

आपका सौंदर्य अलौकिक मनोहर और सुंदर है। जिस किसी

ने आपके दर्शन किये हैं उन सभी के मन भ्रमर की भांति आपमें लग गये हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

नारायणदास दीवान को श्रीगुसांईजी के दर्शन की बहुत आर्ति थी। मुरारीदास ने श्रीगुसांईजी को पत्र लिखकर अड़ेल भेजा। नारायणदास नाव लेकर सामने गये। श्रीगुसांईजी भी नारायणदास को दर्शन देने के लिये सामने पधारे। श्रीगुसांईजी के दर्शन होते ही नारायणदास देहानुसंधान भूल गया। सबने नारायणदास को पकड़ रखा। नारायणदास का मन श्रीगुसांईजी में मुग्ध हो गया था। श्रीगुसांईजी ने नारायणदास के कान में अष्टाक्षर मंत्र सुनाकर उन्हें सावचेत किया। आपके निगूढ़ हृदय के आशय को कोई अनन्य भक्त ही जान सकता है। ऐसे अनन्य भक्त मात्र पद्मनाभदासजी ही हैं। उन्होंने श्रीगुसांईजी के अलौकिक स्वरूप का गान किया है।

हेली रसमय श्री वल्लभसुत प्रकट भये आज।
अंगअंग द्युति तरंग मधुरावलि केलि
प्रसंग दृग विशाल भ्रोंह भाल कमनीय साज।
लीला अमृत रसाल प्रेम भक्ति के प्रतिपल
स्मरण करे निहालभावकी बांधे पाज।
पद्मनाभ वागधीश केलि कल अखिल
अवगाहत प्रेमसिंधु व्रजजन शिरताज।

कीर्तन–संगति :

श्री विट्ठल मंगल रूप निधान।
कोटि अमृत सम हंस मृदु बोलत सबके जीवन प्राण॥१॥

करुणासिंधु उदार कल्पतरु देत अभय पददान।
शरण आयेकी लाज चहूं दिश बाजे प्रकट निशान॥२॥
तुमारे चरणकमलके मकरंद मन मधुकर लपटान।
नंददास प्रभु द्वारे रटत हें रुचत नाहि कछुआन॥३॥

वाग्मये नमः *(७२) वाग्मी = आपकी वाणी युक्तिकौशल्यपूर्ण है = वाग्मये नमः।*

विवरण :

वाग्मी युक्तिपटुरित्यर्थः। 'वाचोयुक्तिपटुर्वाग्मीति कोशात् अत एवाग्रिम नामान्तरमाहुः।

आपकी वाणी युक्ति कौशल्य से भरी हुई है। आप युक्तिपूर्वक बोलते हैं।

भावार्थ :

आपकी वाणी रहस्यपूर्ण होती है। आप अकारण कुछ भी नहीं बोलते हैं। आपकी वाणी में न्याय और तर्क विशेष प्रमाण रूप में प्रतिबिंबित होता है, क्योंकि आप वाक्पति श्रीवल्लभ के पुत्र हैं, इसलिए आप भी वाणी के ही ईश हैं। आपकी वाणी भक्तों को अमृत का स्वाद करवाती है, जबकि दूसरों को मुग्ध बना देती है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

मुगल सम्राट बादशाह अकबर ने एक बार बीरबल से प्रश्न किया, '**बीरबल**, साहिब कैसे मिले ?' अर्थात् ईश्वर किस प्रकार मिले। **बीरबल** ने कई प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु

बादशाह के मन का समाधान नहीं हुआ। इसलिए वे बीरबल पर नाराज हुए। बीरबल की बेटी ने बीरबल को उनकी उदासी का कारण पूछा। तब बीरबल ने यह हकीकत उसे कह सुनाई। बीरबल की बेटी श्रीगुसांईजी की सेवक थी। उसने कहा कि, 'मैं श्रीगुसांईजी से विनती करके पूछ लूंगी।' उसने श्रीगुसांईजी से पूछा। श्रीगुसांईजी ने आज्ञा की, 'बादशाह को मेरे पास भेजना मैं उन्हें जवाब दे दूंगा।' बीरबल ने बादशाह को यही बात कही। अकबर बादशाह उत्तर प्राप्त करने की आतुरता के कारण अकेले ही घोड़े पर सवार होकर गोकुल गये। वहाँ पर श्रीगुसांईजी से यह प्रश्न पूछा। तब श्रीगुसांईजी ने एक ही वाक्य में उन्हें जवाब दिया, 'जैसे आप मिले।' बादशाह को कुछ समझ में नहीं आया। तब आपने स्पष्टता की, 'आप दिल्लीपति सम्राट हैं। आपसे मिलने के लिये हम कितने भी साधन करें तब भी आप हमसे नहीं मिल सकते हैं, परन्तु जब आपको इच्छा हुई तो आप सामने से आकर हमसे मिले, इसी प्रकार से करोड़ों साधन करने पर भी भगवान नहीं मिलते हैं, परन्तु जब वह जीव पर कृपा करें तब उसे मिल जाते हैं।' यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। आप ऐसे वाक्चतुर हैं।

बादशाह ने श्रीगुसांईजी को एक मणि भेंट किया। उन्होंने कहा, 'यह मणि प्रतिदिन स्वर्ण देता है।' आपने तीन बार पूछा, 'आपने मणि हमको दे दिया है ?' बादशाह ने 'हाँ' कही। श्रीगुसांईजी ने उस मणि को श्रीयमुनाजी में पधरा दिया, इससे बादशाह नाराज हुआ। आपने कहा, 'आपने वह मणि मुझे दिया है, अब मैं जैसा चाहूं वैसा करूं।' आपने बादशाह से कहा, 'तुम

श्रीयमुनाजी में हाथ डालकर तुम्हारा मणि ले लो।' बादशाह के हाथ में अनेक मणियाँ आई और वह अपना स्वयं का मणि नहीं पहचान सका। आपके अपूर्व त्याग एवं वाणी की चतुराई को देखकर बादशाह उन्हें प्रणाम करके आगरा चला गया।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठलजूके चरण कमल भज रे मन जो चाहे परमारथ।
मारग वाम काम हित कारन सब पाखंड कीजे उधारथ॥१॥
देवी देव देवता हरिबीनु सब कोऊ जगत आपुन स्वारथ।
श्री भागवत् भजन रस महिमा-श्रीमुख बचन कहे जु यथारथ॥२॥
तीनलोक वंदित यह मारग जीव अनेक कीये जु कृतारथ।
सगुणदास शरण आये बिनु खोये दिन पाछले अकारथ॥३॥

मायावादनिरासकृते नमः *(७३) मायावादनिरासकृत् =* आप मायावाद को दूर करने वाले हैं = *मायावादनिरासकृते नमः।*

विवरण :

मायावादिभिः प्रतिपादितो यो वादः, सर्वं मायेत्येवं रूपः, स मायावादस्तस्य निरासकृद्, ब्रह्मवादेन निराकर्तेत्यर्थः। नामान्तरमाहुः।

मायावादियों ने जगत को माया कहा है। ऐसे मायावाद को आपने ब्रह्मवाद के सिद्धांतों से खंडन करके मिटा दिया है।

भावार्थ :

मायावादियों ने वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता, आदि ग्रंथों के अयोग्य अर्थघटन किये। परिणामस्वरूप उन्होंने कहा कि, 'ब्रह्मसत्य है, परन्तु जगत मिथ्या है, क्योंकि वह मायाजनित है।' वेदमें इसका

प्रतिपादन नहीं किया है। ऐसे भ्रामक सिद्धांत मायावादियों ने स्थापित किये थे। आपने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद प्रगट करके, मायावाद के सिद्धांतों का खंडन किया। इसके लिए आपने 'विद्वद् मंडन' जैसे ग्रंथों की रचना की है। आप समझाते हैं कि, 'वेद के अनुसार केवल ब्रह्म ही एक व अद्वितीय है, वह ही निर्गुण परब्रह्म है।' ब्रह्म में ही सब रस सर्वसत्ता, सर्व आनंद और सर्व धर्म निरंतर विद्यमान है। ब्रह्म ही स्तुति में 'सदानंद कृष्ण' से प्रसिद्ध है। यह परब्रह्म अपने अंदर स्थित अपनी अंनत शक्तियों के साथ आंतररमण करते हुए अपने आनंद का उपभोग करता है। इस रसात्मक परब्रह्म को बाह्य प्रकार से विलास करने की इच्छा हुई तब अपने अंदर रहने वाले आनंद और सौंदर्य को बाहर प्रकट किये। इस प्रकार लीलामय पुरुषोत्तम के श्रीअंग में से समस्त पुष्टि सृष्टि का आविर्भाव हुआ। निर्गुण परब्रह्म अपने अंदर रहने वाले आंतरधर्मों को बाहर प्रकट करके सगुण पुरुषोत्तम रूप में अनेक लीलाओं के द्वारा अपने ही आनंद को खुद ही भोग करने लगे। इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने साकार ब्रह्मवाद को भूतल पर प्रवर्तित किया।

कीर्तन–संगति :

जयति नाथ विठ्ठल नवल चारुलोचन
कमल अमल रस ताहिको सर्वव्यापी।
जीत मायावाद दशोंदिश विध्वंस
कर लाल गिरिधरन दृढभक्ति थापी॥१॥
जयति शुक वचन श्रुति वचन ताहिको सार
भजन विस्तार कर कृष्णजापी।
अभयदीनों लेख हरिदास वर्य भेख
कृष्णदास पंचवरण छापछापी॥२॥

सदाप्रसन्नवदनाय नमः (७४) *सदाप्रसन्नवदनः* = आपका मुखारविंद हमेशा प्रसन्न ही होता है = *सदाप्रसन्नवदनाय नमः ।*

विवरण :

सदा सर्वदा प्रसन्नं हर्षयुक्तं वदनमास्यं यस्य स तथा । सतां भक्तानांसमान्तात्प्रसन्नानि वदनानि यस्मादिति वा । तत्र हेतुभूतं नामान्तरमाहुः ।

आपका मुखारविंद सदा प्रसन्न है । आपके मुखारविंद के दर्शन करके आपके भक्तों के मुख भी प्रसन्न रहते हैं ।

भावार्थ :

'श्रीपुरुषोत्तम सहस्त्र' नाम के प्रारंभ में आज्ञा करी है कि, *'श्रीकृष्णः सच्चिदानंदः लीला विनोदकृत्'* इस प्रकार से आपकी सभी लीलाएं आनंदमय है । इसलिए आपका वदनकमल हमेशा प्रसन्न एवं प्रफुल्लित होता है । आपके प्रफुल्लित मुखारविंद के दर्शन करने से आपके भक्तों के मुख भी प्रसन्न होते हैं तथा उनके सभी प्रकार के पाप निवृत्त हो जाते हैं ।

वार्ता–चरित्र–संगति :

दो पटेल भाई श्रीगुसांईजी के सेवक थे । उनमें एक भाई इतने भोले थे कि वे श्रीगुसांईजी का नाम भी नहीं जानते थे और वे श्रीगुसांईजी को 'काकाजी' कह कर बुलाते थे । तब आप अत्यंत प्रसन्न होते थे । कई वैष्णव उन्हें टोकते भी थे, 'अपन लोग श्रीगुसांईजी को काकाजी नहीं कह सकते, कृपानाथ कहना चाहिये ।' परन्तु उस भोले वैष्णव का सरल भाव देखकर आपका हृदय अत्यंत द्रवित होता था । वे वैष्णवों को आज्ञा करते थे,

'इस भोले वैष्णव को कोई मत रोकना। आप उसके साथ में गुजराती में ही बात करते थे। उस भोले वैष्णव की वार्ता अत्यंत रसपूर्ण और आनंददायक है। वैष्णवों को यह वार्ता साहित्य में से पढ़ने की सलाह दी।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठलनाथ आनंदकंद।
प्रकट पुरुषोत्तम श्रीव्रज में देख द्विजवर चंद॥१॥
तब व्रज यशोदा नंद कहियत अब श्री वल्लभनंद।
तब धर्यो नटवर भेख गिरिधर अवनि श्रुतिपथ छंद॥२॥
जब बकी आदि अनेक चारति भेट सब दुःखद्वंद।
अब कृपाकर हरे प्रभु पाप माणिकचंद॥३॥

मुग्धस्मितमुखाम्बुजाय नमः

(७५) मुग्धस्मित-मुखाम्बुजः = आपका मुख कमल सुंदर हास्य वाला है = *मुग्धस्मितमुखाम्बुजाय नमः।*

विवरण :

मुग्धं सुन्दरं स्मितं हसितं यस्मिन्, तादृशं मुखाम्बुजं मुखकमलं यस्य स तथा। एतादृशमुखनिरीक्षणेन भक्तानां प्रसन्नवदनत्वं युक्तमेव। मुग्धेषु भक्तेषु तथेति वा। क्वचिद् भक्तानां मौग्ध्यमपि दृष्ट्वा प्रहसितवदनो भवतीत्यर्थः। नामान्तरमाहुः।

आपका मुख कमल सुंदर हास्य वाला है। मुग्ध हास्यवाले मुख कमल के दर्शन करते हुए भक्तों के हृदय प्रसन्न होते हैं। कभी-कभी आप भी भक्तों की मुग्धता को देखकर हास्य करते हैं।

भावार्थ :

आप जब अत्यंत प्रसन्न होते हैं तब केवल मंद स्मित न करते हुए हास्य करते हैं। तब आपका मुख कमल अत्यंत मुग्ध मालूम पड़ता है। आपकी प्रसन्नता के दर्शन करके भक्तों के हृदय प्रसन्न होते हैं। आपके पास आने वाले कई भक्त भी मुग्ध स्थिति में होते हैं। उनकी मुग्धता को देखकर आप हास्य करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

कायस्थ जाति के एक बाप-बेटे दिल्ली में बादशाह की नौकरी करते थे। वे किसी काम से गोकुल आए। वहाँ ठकुरानी घाट पर उन्हें श्रीगुसांईजी के दर्शन हुए। उन दोनों को देखकर आप कुछ मुस्कुराये। तब बाप-बेटे ने पूछा, 'हमें देखकर आप क्यों मुस्कुराये ?' आपने आज्ञा करी, 'हम तो हमारे सेवकों के साथ बातें करते हुए हंस रहे थे।' फिर भी कायस्थ पिता ने कारण जानने का आग्रह जारी रखा। तब आपने कृपा करके आज्ञा करी, 'तुम तुम्हारे मूल स्वरूप को भूल गये हो। इसीलिये तुम अपने जन्म को इस प्रकार व्यर्थ में नष्ट कर रहे हो। यह देखकर हमें हंसी आ गई। आपने कायस्थ पिता-पुत्र को उनके स्वरूप का भान करवाया। उनको शरण में लिया। वे आगे चलकर उच्च कोटि के भगवद् भक्त बने और उन्हें इसी देह से लीला का अनुभव होने लगा। इस प्रकार आपके मुग्ध स्मित में ही जीवों को भगवद् प्राप्ति करवाने का अतुलित सामर्थ्य विद्यमान है।

कीर्तन–संगति :

श्रीविठ्ठलनाथ पालने झूले मात अक्काजू झुलावे हो।
निरख निरख मुख कमल मनोहर आनंद उर न समावे हो॥१॥

कबहुँक सुरंग खिलोना ले ले बहु विध लाल खिलावे हो।
निरखि निरखि मुसिकाय श्रीविट्ठल द्वे दतियां दरसावे हो॥२॥
सहज तिलक मृगमद लिलाट पर कठुला कंठ बनावे हो।
माधोदास चरणरज वंदित द्वारे सदा गुण गावे हो॥३॥

प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः क्षितिमण्डलमण्डनः।
त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिर्धवलीकृतमेचकः॥२०॥

शब्दार्थ :

प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः = आपके विशाल नेत्र प्रेमभीनी दृष्टि वाले हैं, *क्षितिमण्डलमण्डनः* = आप पृथ्वी के शृंगार हैं, *त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिर्धवलीकृतमेचकः* = तीनों लोकों में व्याप्त अपनी सत्कीर्ति से आपने पापमलिन जीवों को शुद्ध किया है।

प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षाय नमः

(७६) प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः = आपके विशाल नेत्र प्रेम से भीगी हुई दृष्टि वाले हैं = *प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षाय नमः।*

विवरण :

प्रेमार्द्रा दृशः येषां ते प्रेमार्द्रदृशस्तेष्वायते विशाले करुण्या उन्मुकुलीकृते अक्षिणी नेत्रे येन स तथा। मुखाम्बुजदर्शनेन प्रेमार्द्रदृशो भक्तान्वीक्ष्य कमप्यनिर्वचनीय तदेकवेद्यं रसं प्रयच्छतीति भावः। एतन्नामतात्पर्यं न मुखेन कर्तुं शक्यं न वा लिखितुमनुभवैकवेद्यत्वात्। अतो येन यथानुभूतं तेन तथैवानुसन्धेयमिति ज्ञेयम्। नामान्तरमाहुः।

प्रेमभीनी दृष्टि वाले भक्तों पर आप अपने दया से भरे हुए नेत्र खोलते हैं। आपके मुखारविंद को देखकर प्रेमभीनी दृष्टि वाले भक्तों को देखकर आप अवर्णनीय रस का दान करते हैं।

आपकी दृष्टि ही ऐसी है कि जिस पर दृष्टिपात हो जाए वह अलौकिक रस के लिए भाग्यशाली बन जाता है। इस नाम का तात्पर्य मुख से बोला नहीं जा सकता है, लिखा भी नहीं जा सकता है। उसे तो महान अनुभवी ही जान सकते हैं। इस दृष्टि के रस को जिन भाग्यशालियों ने अनुभव किया है वे ही उसे जान सकते हैं।

भावार्थ :

श्रीदेवकीनंदनजी इन नेत्रों का वर्णन करने के लिये अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं। वे अनुभवैक वेद्य हैं। इसलिए उनका वर्णन नहीं हो सकता है।

कीर्तन–संगति :

प्रकटे श्रीविट्ठलेश करुणारस भीनेरी।
निरखत वदनारविंद कोटि मदन हीने॥१॥
नंदनंदन मनमें अभिलाख यह विचार्यो।
यह सुख विलसनकों भूतल वपु धार्यो॥२॥
पेहेलें निज विरहीतन भूतल प्रकटाई।
तिनके ये कुंवर प्रकटे भय हरण सुखदाई॥३॥
अति उदार गिरिवरधर फूले हनमांही।
अपरसपरस करत केलि व्रजजन मनमाई॥४॥
केसेंके वरनो गुण रसना मति थोरी।
वारवार दास कहे चिरजीयो यह जोरी॥५॥

क्षितिमंडलमंडनाय नमः

(७७) क्षितिमंडलमंडन : =आप पृथ्वी के आभूषण स्वरूप हैं = *क्षितिमंडलमंडनाय नमः।*

विवरण :

क्षितिमण्डलस्य भूवलयस्य मण्डनमलंकरणं यस्मात्स तथा। क्षितिमण्डलं मण्डयति भूषयतीति वा। नामान्तरमाहुः।

आपसे यह पृथ्वी शोभायमान हुई है। आपने इस पृथ्वी मंडन का शृंगार किया है, उसे सुशोभित किया है।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी का स्वरूप भूमिभाग्य है। आप भी श्रीमहाप्रभुजी का स्वरूप होने से आप भी पृथ्वी के आभूषण रूप हैं। आपने छः बार गुजरात का प्रवास करके, गुजरात की भूमि को सनाथ बनाया है। इसी प्रकार भारत के अन्य प्रदेशों में भी अनेक बार पधारकर अनेक दैवी जीवों को शरण में लिया है। आपके पधारने से वहाँ की शोभा बढ़ी है। आप आधिदैविक भूमिरूप ब्रजमंडल में बिराजे हैं। इस भूतल पर आपकी २८ बैठक प्रकट रूप में बिराजमान है। इन स्थानों में आप आज भी विरही जनों को साक्षात् दर्शनामृत का आनंद दे रहे हैं और आज भी वे बैठकजी में अपने भक्तों की सेवा को अंगीकार करते हैं। आपके बैठकजी पृथ्वी के सौभाग्यरूप हैं एवं वैष्णवों के हृदय रूप हैं। आपने जहाँ-जहाँ श्रीमद् भागवत का पारायण किया, वहीं-वहीं आपके बैठकजी प्रकट बिराज रहे हैं।

कीर्तन–संगति :

ब्रज में श्री विट्ठलनाथ विराजे।
जिनको परम मनोहर श्रीमुख देखत हि अघ भाजें॥१॥
जिनके पद प्रताप तेजते सेवक जन सब गाजें।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रकट भक्त हित काजें॥२॥

भक्ति श्रीगोकुलतें प्रकट भई।
पेहलें करी श्रीवल्लभ नंदन तब ओरन सिखई॥१॥
चार्यो वरण शरण कर आपने विधसों बांट दई।
श्रीविट्ठलनाथ प्रताप तेजतें तीन्यों ताप गई॥२॥
अब देखतही जीव प्रेत व्है तिनहूं मांगि लई।
अब उध्धरे कहेत अपने मुख पत्री लिख पठई॥३॥
श्री वल्लभ श्री विट्ठल गिरिधर तीन्यों एक सही।
नवप्रकार आधार नारायण घोषलोक निवही॥४॥

त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्ति-धवलीकृतमेचकाय नमः

(७८) त्रिजगद्व्यापि-सत्कीर्ति-धवलीकृतमेचकः = आपने तीनों जगत में व्याप्त आपकी सद्कीर्ति से पापी जीवों को पवित्र किया है = त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिधवली-कृतमेचकाय नमः।

विवरण :

त्रयाणां जगतां समाहारस्त्रिजगत्तत्र व्याप्तुं शीलं यस्याः सा त्रिजगद्व्यापिनी तादृशी सती निर्दृष्टा यथा कीर्तिस्तया-धवलीकृता निर्मलीकृता मेचकः पापादिमलिना जीवा येन स - तथा। तया धवलीकृत उज्ज्वलीकृतो मेचकः श्यामः पदार्थो ये नेति वा। यत्र कुत्रापि मालिन्यं कीर्तिद्वारा नाशयतीति भाव-। 'गंगीयत्यसितापगा फणिगण शेषीयती' त्यादिवत्।

तीनों जगत में व्याप्त आपकी निर्दोष और उज्ज्वल कीर्ति से पापादि से मलीन हुए जीवों का उद्धार हुआ है, जिस प्रकार श्याम पदार्थ उज्ज्वल होते-होते श्वेत हो जाते हैं। इसी प्रकार

पापी जीव भी आपकी कीर्ति से उज्ज्वल बने हैं। सर्वस्व अपनी कीर्ति के द्वारा आप मलिनता को दूर करते हैं।

भावार्थ :

तीनों जगत में श्रीगुसांईजी सबकी मलिनता को दूर करते हैं। स्वर्ग में गंगा मंदाकिनी के नाम से प्रसिद्ध है। इस पृथ्वी पर भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध है तथा पाताल में भोगवदी नदी के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे त्रिजगद्व्यापिनी गंगाजी जिस प्रकार अपने पुण्य जल से सबके पापों को दूर करती हैं। उसी प्रकार से श्रीगुसांईजी भी सब जीवों के पापों को दूर करते हैं। श्रीगुसांईजी के चरण स्पर्श करके गंगाजी भी और अधिक पुण्यशाली बनने के लिये मनोकामना करती हैं।

त्रिजगत का एक दूसरा अर्थ भी है : आपके तीन प्रकार के भक्त हैं, सात्विक, राजस और तामस। आपकी कीर्ति को सुनकर यह आपकी शरण में आए और पाप मुक्त हुए हैं। त्रिजगत का एक और अर्थ है : आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैवक तथा आधिदैविक जगत के त्रिविध ताप जो आपकी कीर्ति से शमित हुए हैं।

बैठक–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी का प्राकट्य चरणाट में हुआ। जब आप एक महीने के हुए तब विधि के अनुसार गंगापूजन किया गया। आप जब श्री अक्काजी की गोद में गंगाजी के घाट पर बिराजते थे, तब आपके चरण स्पर्श करने के लिये श्री गंगाजी का जल बहुत बढ़ा। घाट तक गंगाजी आए और आपके चरण स्पर्श करके पुनः नीचे उतर गये। गंगाजी आधिदैविक स्वरूप से वहाँ पधारे।

उन्होंने श्री महालक्ष्मीजी को विनती करी, 'हे देवी ! आप बड़भागी हैं, क्योंकि आपके पति भी पूर्ण पुरुषोत्तम हैं तथा पुत्र भी पूर्ण पुरुषोत्तम है। आपके वंश में सभी पुरुषोत्तम प्रगट होंगे।' इतना कहकर श्री गंगाजी अंतर्ध्यान हो गये। इस प्रकार आपके प्राकट्य से ही आपकी कीर्ति भूतल में व्याप्त हो गई थी।

कीर्तन–संगति :

श्रीवल्लभ चरणकमल शरण पावन त्रैलोक करन।
जन मन संताप हरत निरखत सुख रोम रोम परसत अघ हरन ॥१॥
सुर नर मुनि मन चकोर निरखत
नख चंद और करत अमिपान ध्यान एक टरन।
गोविंद प्रभु गोकुलेश राजत श्री वल्लभगृह
प्रकट भये श्री विट्ठलेश गोवर्धनधरण ॥२॥

वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तःकरण शत्रुतापनः ।
भक्तसम्प्रार्थितकरो दासदासीप्सितप्रदः ॥२१॥

शब्दार्थ :

वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तःकरण = आपके वचन मात्र से आपने भक्तों के अंतःकरण को वश किया है, *शत्रुतापनः* = आप शत्रुओं को तपाते हैं, *भक्तसंप्रार्थितकरः* = जो भक्त ने माँगा है उसे आप सिद्ध करते हैं, *दासदासीप्सितप्रदः* = जो कुछ दास-दासी ने इच्छा की है उसे आप भली-भाँति देते हैं।

वाकसुधाकृष्टभक्तांतः–करणाय नमः

(७९) वाक्सुधाकृष्ट-भक्तान्तः-करणः = आपके वचनामृत से आपने भक्तों के अंतःकरणों को वश में किया है = *वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तः करणाय नमः ।*

विवरण :

वागेव सुधा अमृतं तयाऽऽकृष्टानि वशीकृतानि भक्ताना-मन्तः करणानि येन स तथा । नामान्तरमाहुः ।

आपके वचनामृत सचमुच में अमृत के समान हैं उनको श्रवण करते-करते भक्तों के अंतःकरण आपके वशीभूत हो जाते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार ऋषिकेशजी किसी काम के प्रसंग से आगरा में रूपचंद नंदा के यहाँ आये थे। उसी दिन श्रीगुसांईजी भी आगरा पधारे थे, तब ऋषिकेशजी ने श्रीगुसांईजी के दर्शन किये। आपने ऋषिकेशजी की तरफ दृष्टि करी और ऋषिकेशजी से कहा, 'ऋषिकेश, अब किस लिये देर कर रहे हो ?' इतना कहते ही ऋषिकेशजी को आपके मुखारविंद में साक्षात् भगवद् स्वरूप के दर्शन हुए और उन्हें मूर्च्छा आ गई। वे उस स्वरूप को धारण नहीं कर सके। मूर्च्छा निवृत्त होते ही उन्होंने श्रीगुसांईजी से विनती करी, 'महाराज ! मेरा अंगीकार करिये।' आपने उनको नाम निवेदन देकर जिस स्वरूप से दर्शन दिये थे ऐसा ही स्वरूप सेवा में पधरा दिया। इस प्रकार आपने केवल एक ही वचन से ऋषिकेश जैसे अनेक भक्तों के अंतःकरण जीत लिये हैं।

कीर्तन–संगति :

श्री विट्ठलनाथ अनाथके तारण।
श्री वल्लभगृह प्रकट रूप यह धर्यो भक्तहित कारण॥१॥
दीनबंधु कृपा सिंधु सहजही भक्ति विस्तारण।
दास चतुर्भुज प्रभु के निजमत चलत लाल गिरिधरण॥२॥

शत्रुतापनाय नमः *(८०) शत्रुतापनः* = आप शत्रुओं को तपाते हैं = *शत्रुतापनाय नमः ।*

विवरण :

शत्रून्तापयति स्वप्रतापेनेत्यर्थः । शत्रोर्भावः शत्रुता, भक्ति-मार्गविरुद्धता, जीवेभ्यस्तामपनयतीति वा । नामान्तरमाहुः ।

आप अपने प्रताप से शत्रुओं को तपाते हैं। जिन जीवों में भक्ति मार्ग से विरोधीपना हो उनके विरोधीपने को आप दूर करते हैं तथा भक्ति मार्ग में प्रवेश करवाते हैं।

भावार्थ :

आपके वचन भक्तों के लिये अमृत की वर्षा के समान हैं। वे ही वचन भक्ति मार्ग के विरोधियों के लिये अग्नि के समान हैं। जो मायावादी पंडित आपके साथ शास्त्र चर्चा करने आते हैं वे आपके वचनों से जलन महसूस करते हैं। जिनमें भक्तिमार्ग से विरुद्ध विचार रहे हैं उन सब के विचारों को आप अपने ताप से दूर करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

दिल्ली में एक पठान का बेटा था। उसे किसी वैष्णव का संग हुआ। उसको दैवी जीव समझकर के वैष्णव ने कहा, 'भाई तू वैष्णव हो जाए तो तेरा जन्म कृतार्थ हो जाए।' पठान ने कहा, 'वैष्णव किस प्रकार हो सकते हैं ?' तब वैष्णव ने कहा, 'इस समय यहाँ निगमबोध घाट पर श्रीगुसांईजी बिराजते हैं। उनके पास जाकर यदि नाममंत्र ले आवे तो तू वैष्णव हो सकता है।' पठान का बेटा श्री गुसांईजी के पास आया। आपने उसे नाममंत्र दिया और वह वैष्णव बना।

उन दिनों मुगल बादशाह कट्टर मुस्लिम धर्म पालने वाले थे। हिन्दु धर्म के प्रति उनके रोम-रोम में दुश्मनी भरी हुई थी। ऐसे राज्य में एक पठान का बेटा हिन्दू बन जाए यह मुसलमान कैसे सहन कर सकते हैं ? उस पठान के पिता भी बहुत बड़े अमलदार थे। उन्होंने बादशाह से फरियाद की कि, 'मेरा बेटा हिन्दू बन गया है।' बादशाह ने उसको बुलाकर हिन्दू धर्म छोड़ने के लिए समझाया, परन्तु वह एक से टलकर दो नहीं हुआ। बादशाह ने उसके गले में तुलसी की माला और ललाट में तिलक देखा, तब वे खूब नाराज हुए, फिर भी पठान का वह बेटा अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहा। आखिर में बादशाह ने कहा, 'मेरी तलवार लाओ, आज मैं इसको खत्म कर दूंगा।' पठान के बेटे ने अपनी स्वयं की तलवार बादशाह को दी। बादशाह ने कहा, 'अब मैं देखता हूँ कि तेरी रक्षा कौन करता है ?' पठान के बेटे ने कहा, आपको जो करना हो सो करिये। तुलसी की माला और तिलक मेरे सिर के बदले में है।' श्रीगुसांईजी के सामर्थ्य बल से बादशाह उस पठान के बेटे का एक बाल भी बांका नहीं कर सका। आप ऐसे शत्रुतापन नाशन है।

कीर्तन–संगति :

तुमारे चरण कमलके शरण।
राखो सदा सर्वदा जनको विट्ठलेश गिरिधरण॥१॥
तुम बिन ओरनहीं अबलंबन भवसागर दुस्तरण।
भगवानदास जाय बलिहारी त्रिविध ताप उरहरण॥२॥

भक्तसंप्रार्थितकराय नमः

(८१) भक्तसंप्रार्थितकरः = भक्त ने माँगा हुआ आप सिद्ध कर देते हैं = *भक्तसंप्रार्थितकराय नमः।*

विवरण :

भक्तैः सम्यक् स्वोचितप्रार्थितं करोतीत्यर्थः। भक्तास्तादृशा यस्येति वा। नामान्तरमाहुः।

भक्त ने माँगा हुआ आप सिद्ध करते हैं। आपके भक्त भी मनोरथ सफल करते हैं।

भावार्थ :

पुरुषोत्तम स्वरूप में आप भक्त मनोरथपूरक हैं, इसलिए भक्तों की इच्छा परिपूर्ण करने के लिए आप सदा ही तत्पर हैं। अपने भक्तों में भी आपने ऐसा सामर्थ्य रखा है कि वे भी दूसरों के मनोरथ पूर्ण करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

गुजरात का एक पटेल वैष्णव अत्यंत अकिंचन था। वह मजदूरी करता था और अपना निर्वाह करता था। एक बार गुजरात के संघ के साथ में वह भी श्रीगुसांईजी के दर्शन करने के लिये निकला। वह संघ श्रीनाथद्वारा आया। सभी ने दर्शन करके रुद्रकुंड पर मुकाम किया। सभी ने श्रीगुसांईजी को भेंट करने के लिये भेंट की रकम निकाली। यह वैष्णव विचार करने लगा, 'गुरु के पास खाली हाथ से नहीं जाना चाहिए, मेरे पास तो एक कोड़ी भी नहीं है, फिर मैं क्या भेंट धरूं ?' उसको पूरी रात नींद नहीं आई। वह चलने लगा। रास्ते में एक बगीचे में जाई के पुष्प (जुही के पुष्प) खिले थे। उसके पास अपना कहा जा सके ऐसा एक मात्र अंगोछा था। उसने माली को अपना अंगोछा दिया तथा उसके बदले में थोड़े फूल मांगे। माली ने अत्यंत प्रसन्न होकर उसकी इच्छा हो उतने फूल लेने के लिये कहा। उस

वैष्णव ने फूल बीनकर माला सिद्ध करी। उसके मन में एक ही विचार था 'यह माला मैं किस समय श्रीगुसांईजी के कंठ में धराऊंगा?' श्रीगुसांईजी के चरण कमल का ध्यान करते हुए वह आगे निकल गया। श्रीगुसांईजी से इस पटेल वैष्णव की आर्ति सहन नहीं हो सकी। आप श्रीनाथजी के शृंगार करके घोड़े पर सवार होकर के जल्दी-जल्दी उस पटेल के समक्ष पधारे बाद में आपको संघ भी मिला। सभी ने विनती करी, 'आप रुकिये हमें भेंट करनी है।' आपने आज्ञा करी, 'पटेल वैष्णव माला लेकर आ रहा है, वह जहाँ होगा वहीं मैं अपने घोड़े को रुकवाऊंगा।' आपने उस वैष्णव के पास अपने घोड़े को रुकाया। पटेल वैष्णव ने आपके श्रीकंठ में माला धराई तथा आपके स्वरूपानंद में मग्न होते ही वह मूर्च्छावश हो गया। आपने कृपा करके उसको सचेत किया। उस वैष्णव को आपने श्रीनाथजी के फूलघर की सेवा अर्पित की।

कीर्तन–संगति :

धनधन श्री वल्लभ जूके नंदन श्री विट्ठलचरण सदा निज पालन।
जुगपद कमल विराजमान अति महिमा बहुत सदा गुण गावत॥१॥
सेवा करो भजो मति दृढ होई त्रिविध भांतके ताप नसावन।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल बरखत कृपा सबे जीय भावन॥२॥

दासदासीप्सितप्रदाय नमः

(८२) दासदासीप्सिप्रदः = दास दासियों के द्वारा इच्छित वस्तु को आप भली-भाँति दे देते हैं = *दासदासीप्सितप्रदाय नमः।*

विवरण :

दासाश्च दास्यश्च दासदास्यस्तासामीप्सितमभिलषितं।

प्रकर्षेण भावानुसारेण ददातीत्यर्थः । 'ये यथा मां प्रपद्यन्त' इति वचनात् ।

आप दासदासियों के मनोरथ को भली-भाँति पूरा करते हैं। जो भक्त जिस प्रकार से भजते हैं भगवान उस भक्त के मनोरथ को उसी प्रकार से पूरा कर देते हैं। ऐसी भगवान की प्रतिज्ञा है।

भावार्थ :

भगवान की प्रतिज्ञा श्रीगुसांईजी स्वयं भगवान होने से परिपूर्ण करते हैं, इसलिए भक्तों के मनोरथों को भक्तों के इच्छा करते ही आप विशेष रूप में परिपूर्ण कर देते हैं।

वार्ता-चरित्र-संगति :

एक वैष्णव को श्रीगुसांईजी ने स्वरूप पधरा दिया। उस वैष्णव ने अपने देश में जाते समय आपसे विनती करी, 'मुझे जो स्वरूप आपने पधराकर दिया है उसका नाम क्या है ?' उस समय एक व्रजवासी वहीं पर हाजिर था। उसकी भी श्रीठाकुरजी को पधराकर सेवा करने की इच्छा थी वह बार-बार श्रीगुसांईजी को विनती करता था। श्रीगुसांईजी ने उस वैष्णव से कहा, 'तुम्हारे ठाकुरजी का नाम मदनमोहनलाल है।' यह सुनकर व्रजवासी ने फिर से श्रीगुसांईजी से पूछा, 'मेरे ठाकुरजी का नाम क्या है ?' तब आपने उससे कहा, 'परे' अर्थात् दूर है। आपकी मात्र वाणी से भी भगवद्स्वरूप प्राकट्य हो इसलिए आपके सामर्थ्य को यहाँ दर्शाया गया है।

उस व्रजवासी को परे स्वरूप में साक्षात् प्रभु के दर्शन होने लगे। परे स्वरूप में प्रभु उसके साथ सूरत तक भी पधारे और एक ही दिन में श्रीनाथजी की भेंट लेकर गिरिराज पुनः लौट आए।

इस प्रकार केवल श्रीगुसांईजी की कृपा से उस व्रजवासी को परे स्वरूप में श्रीठाकुरजी की प्राप्ति हुई।

श्रीगुसांईजी के सेवक एक सेठ की बेटी साठ वर्ष की उम्र तक उसके घर में रहकर श्री मदनमोहनलालजी की सेवा करती थी। उसने अपने जीवनभर में और किसी स्वरूप के दर्शन ही नहीं किये थे। एक बार एक विरक्त वैष्णव अपने श्रीबालकृष्णलालजी श्री ठाकुरजी को पधराकर इस बाई के यहाँ आये। ठंड के दिन थे, इसलिए उस बाई को विचार आया, 'इतनी ठंड में श्रीठाकुरजी के हाथ-पैर अकड़ गये हैं' इसलिए उसने तो प्रेमपूर्वक श्री ठाकुरजी को शीत काल की सामग्रियाँ अरोगाई। गादी इत्यादि धरे। तेल मर्दन किया जब श्रीबालकृष्णलालजी ने श्रीमदनमोहनजी का स्वरूप धारण करके उस बाई को दर्शन दिये तब उसके मन का समाधान हुआ।

श्रीगुसांईजी के ऐसे उच्चतम कोटि के भक्तों का सामर्थ्य अवर्णनीय है। उनके मनोरथ के अनुसार श्रीठाकुरजी अपना स्वरूप धारण करते हैं। यह आपकी भक्त वत्सल्ता और महान उदारता है।

कीर्तन–संगति :

श्री विट्ठल सुखसागर आगर जगत उजागर पायेरी।
भक्तनके हित कारण आली अति आतुर उठि धाये॥१॥
ताको भाग्य कहांलों वरणों जो वल्लभ गुण गाये।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल आनंद रस बरखाये॥२॥

अचिन्त्यमहिमामेयो विस्मयास्पदविग्रहः।
भक्तक्लेशासहः सर्वसहो भक्तकृते वशः॥२२॥

शब्दार्थ :

अचिन्त्यमहिमामेयः =आपकी महिमा अचिंत्य है, *विस्मयास्पदविग्रहः* =आपके श्रीअंग को निरखने से विस्मय होता है, *भक्तक्लेशासहः* =आप भक्तों के दुःख को सहन नहीं करते हैं, *सर्वसहः* =आप सब कुछ सहन करते हैं, *भक्तकृते वशः* =भक्त के द्वारा किये हुए कार्य में आप वशीभूत होते हैं।

अचिन्त्यमहिमामेयाय नमः

(८३) अचिंत्यमहिमामेयः = आपकी महिमा अचिंत्य है = *अचिंत्यमहिमामेयाय नमः।*

विवरण :

अचिन्त्यो न केनापि चिन्तयितुमपि योग्यो महिमा तेनामेयः, न यथावज्ज्ञातुं शक्य इत्यर्थः। महिम्नैव सर्व ज्ञायन्ते स एव यस्याचिन्त्यो भवति तंस्यामेयत्वे कः सन्देह इति भावः। अमेयत्वे हेत्वन्तरज्ञापकमग्रिमं नामान्तरमाहुः।

आपकी महिमा भक्त के अतिरिक्त कोई अन्य विचार भी नहीं सकता है। आपके यथार्थ स्वरूप को कोई अन्य समझ नहीं सकता है। महिमा के द्वारा ही सबका स्वरूप समझा जा सकता है, परन्तु जिसकी महिमा का ही विचार न किया जाए उसके स्वरूप को किस प्रकार मापा जा सकता है ?

भावार्थ :

स्वरूपज्ञान के लिए गुण और लीला का ज्ञान जरूरी है। गुण तथा लीला के द्वारा ही स्वरूप ज्ञान हो सकता है। गुण तथा लीला का ज्ञान अर्थात् माहात्म्य का ज्ञान भक्ति की व्याख्या देते हुए ऐसा कहा गया कि माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ तथा सबसे अधिक स्नेह के लिये भी माहाम्त्य ज्ञान आवश्यक है। अन्य

महापुरुषों के माहात्म्य ज्ञान को जानकर उनके स्वरूप को समझने का प्रयत्न होता है, परन्तु श्रीगुसांईजी का माहात्म्य ज्ञान ही ऐसा अलौकिक है कि आपके भक्तों के सिवाय और कोई भी उसे नहीं समझ सकता है। इसीलिए दूसरे लोग आपके अलौकिक पुरुषोत्तम स्वरूप को नहीं जान सकते हैं।

बैठक–चरित्र–संगति :

राधाकृष्ण कुंड के ऊपर गौड़ीय संप्रदाय के मठाधीश श्रीरघुनाथ-दासजी हो गये। वे महान भगवद् भक्त थे। जब श्रीगुसांईजी का मुकाम राधाकृष्ण कुंड पर था। तब वे श्रीगुसांईजी के पास आये। उन्होंने श्रीगुसांईजी से पूछा, 'आपके मार्ग में आप श्रीस्वामिनीजी को स्वकीया स्वरूप में मानते हो या परकीया स्वरूप में मानते हो ? हम तो श्री राधिकाजी को परकीया स्वरूप में मानते हैं।' श्रीगुसांईजी ने शास्त्र सम्मत रीति से श्रीस्वामिनीजी के स्वरूप को समझाया। फिर भी उन्होंने प्रत्यक्ष प्रमाण के लिये आग्रह किया। तब श्रीगुसांईजी ने एक कोरा कागज लेकर राधाकृष्ण कुंड में पधराया और कहा कि, 'श्रीराधिकाजी जो लिखकर भेजेंगे वह आपको प्रमाण मानना पड़ेगा।' वह कोरा कागज श्री ललिताजी के हाथ में आया। उन्होंने वह पत्र श्री स्वामिनीजी को दिया। श्री स्वामिनीजी ने स्वयं श्रीहस्त से उस पर उत्तर लिखा और उस पत्र को जल में छोड़ दिया। वह तैरते-तैरते ऊपर आया। वह अलौकिक पत्र भींगा नहीं। उसमें नीचे का श्लोक लिखा हुआ था :

जयति वृषभानुकुल कौमुदी राधिका,
जयति कृष्णः सदानंदःकुल चंद्रमा

इसको पढ़कर श्रीरघुनाथदासजी ने श्रीगुसांईजी को प्रणाम करके विनती की, 'आपके सम्प्रदाय की भावना यथार्थ है। वैसे आपकी महिमा अन्य किसी से समझी नहीं जा सकती है।

कीर्तन–संगति :

पौष निर्दोष सुख कोश सुंदर मास कृष्णनौमी सुभग नवघरी दिन आज।
श्रीवल्लभ सदन प्रकट गिरिवर धरन चारु विधु वदन छबि श्रीय विट्ठलराज॥१॥
भीर मागध भई पढ़त मुनिजन वेद ग्वाल गावत नवल बसन भूषण साज।
हरद केसर दही कीचको पार नही मानो सरिता वही नीर निर्झर बाज॥२॥
घोष आनंद त्रिय वृंद मंगल गावे बजत निर्घोष रस पुंज कल मृदुगाज।
विष्णुदास श्रीहरि प्रकट द्विजरूप धर निगम पंथ दृढथाप भक्त पोषण काज॥३॥

विस्मयास्पदविग्रहाय नमः

(८४) विस्मयास्पद-विग्रहः = आपके श्री विग्रह को निरखने से विस्मय होता है = *विस्मयास्पदविग्रहाय नमः।*

विवरण :

विस्मयस्य संशयस्याश्चर्यस्य वास्पदं स्थानभूतं विग्रहो वपुर्यस्य स तथा। इच्छावपुरपि तादृशमेव धृतं येन विस्मयो भवत्येव। तथैव इच्छासद्भावादिति भावः। नामद्वयेपि, इतरेषा-मिति शेषः। भक्तानां न विस्मयो भवितुमुचितस्तदर्थमाविर्भूत-त्वात्। नहि यो यदर्थमागच्छति, स तमेव विस्मापयतीति युक्तम्। आगमनस्य वैयर्थ्यापत्तेः विगतः स्मयो दर्पो येषां ते विस्मयाः सन्तस्तेषामास्पदमाश्रयभूतो विग्रहो यस्येति वा। नामान्तरमाहुः।

आपने सन्मनुष्याकृति स्वरूप स्वेच्छा से धारण किया है।

उसको निरखने से विस्मय ही होता है। आपके श्रीअंग की सुंदरता आश्चर्य कैसे न उत्पन्न करे जो भक्त माया से विमुख हुए हैं उन्हें विस्मय नहीं होता है, परन्तु जिन भक्तों के लिए आप प्रकट हुए हैं उन्हें आपके दर्शन से विस्मय उत्पन्न होता है। आपका श्रीअंग निरभिमानी भक्तों का आश्रय स्थान है। आपके दर्शन से भक्त को विस्मय नहीं होता है, क्योंकि भक्त के लिये ही आप प्रकट हुए हैं। जो जिसके लिये प्रकट होता है, वह उसे विस्मय नहीं करवाता है। यदि विस्मय करवावे तो वह प्राकट्य व्यर्थ हो जाए।

भावार्थ :

आप स्वइच्छा से मनुष्य देह धारण करके प्रकट हुए हैं। आपकी मनुष्याकृति भी इतनी सुंदर है कि दर्शन करने वाले को आश्चर्य होता है। माया से मोहित भक्त आपके दर्शन करके आश्चर्य व्यक्त करते हैं, परन्तु जिन भक्तों के लिये आप प्रकट हुए हैं, जिन भक्तों को आपने अलौकिक स्वरूप में दर्शन दिए हैं उनके लिये तो आप आश्रय स्थान हैं। ऐसे भक्त आपके दर्शन करके निरभिमानी बनते हैं। उनको इसमें किसी प्रकार का विस्मय नहीं होता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीमहाप्रभु के सेवक कपूर क्षत्रिय जलघरिया को किसी अपराध के कारण एक जन्म का अंतराय हुआ। दूसरे जन्म में वे एक शैव ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। परन्तु पूर्व जन्म का ज्ञान होने के कारण वे न कुछ बोलते थे और न रोते थे, न किसी प्रकार का खान-पान करते थे। जब वे एक वर्ष के हो गए, तब 'श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी' ऐसा बोले। उनके माता-पिता तथा उनके सगे-

संबंधी उनकी इस वाणी को नहीं समझ सके। दूसरी वर्षगाँठ पर वे 'श्री आचार्यजी महाप्रभुजी, श्री गुसांईजी' यह दो नाम बोले। तीसरी वर्षगाँठ पर उन दो नामों के साथ में 'श्रीनाथजी' का नाम भी बोले। चौथी वर्षगांठ पर इन तीनों के नाम के साथ 'श्रीनवनीतप्रियजी' का नाम भी बोले। उनके पिता को बहुत आश्चर्य हुआ। पिता ने पुत्र से उसका कारण पूछा। तब उन्होंने जमीन पर लिखकर कहा, 'मुझे गोकुल ले जाओ।' पिता-पुत्र को गोकुल ले आए। श्रीठकुरानी घाट पर श्रीगुसांईजी के दर्शन किये। नेत्रों में से अश्रुओं का प्रवाह चला, तब आपने कहा, 'अब तू क्यों रोता है ? अब तू हमारे पास आ गया है तू चिंता मत कर आगे से तू सावधान रहना।' आपने श्री नवनीतप्रियजी के सन्मुख नाम निवेदन करवाया। उसके बाद उनको बाहर जाने को कहा है, परन्तु उन्होंने मंदिर के दरवाजे की सांकल पकड़ रखी। भीतरिये ने जोर करके दरवाजे की सांकल छुड़वा ली। चौक में जाते ही उनके प्राण छूट गये, परन्तु श्रीगुसांईजी ने उस बेटे के देह में पुनः प्राण भरकर मंदिर की सिंह पोल के बाहर कुए के पास उनको पहुंचाया, जिससे मंदिर की अपरस एवं मर्यादा छू नहीं जाए (अपवित्र न हो जाए)। वहाँ पहुँचते ही उनके प्राण छूट गये और उनका लीला में प्रवेश हो गया। उनके पिता वेद शास्त्र के ज्ञाता थे, परन्तु वे दैवी जीव नहीं थे। इसलिए प्रकट चमत्कार को देखने पर भी वे शरण में नहीं आए और वहाँ से काशी चले गये।

यादवेन्द्रदास श्रीगुसांईजी के सेवक थे। वे श्रीगुसांईजी की अत्यंत सेवा करते थे। श्रीगुसांईजी उन पर बहुत प्रसन्न रहते थे। आप सम्प्रदाय का सारा रहस्य उनको कहते थे। एक दिन आगरा से श्रीगुसांईजी श्रीनाथद्वारा पधारते थे। मार्ग में आप

पोढ़े थे। तब यादवेन्द्रदास को श्रीस्वामिनीजी और श्रीगोवर्धननाथजी के युगल स्वरूप के दर्शन हुए। दोनों ही स्वरूप परस्पर श्रीकंठ में भुजा लपेटकर पधारे हों तथा हास्य विनोद कर रहे हों ऐसे उनको दर्शन हुए। इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने कृपा करके अपने स्वरूप में ही यादवेन्द्रदास को श्रीस्वामिनीजी स्वरूप तथा श्रीपुरुषोत्तम स्वरूप के एक साथ दर्शन करवाये। ऐसा विस्मयास्पद विग्रह स्वरूप आपने निज भक्तों के लिए धारण किया है।

कीर्तन–संगति :

दक्षण गति तरण अति सुखद हेमंत
ऋतु पोष शुभ मास मध्य पक्ष अंध्यारो।
पोस नौमी युगल याम गत वृष लग्न
वार भृगु योग सुहस्त तारो ॥१॥
धन भवन देव गुरु सहज बैठयो
राहु सुभग सुत भवन मध्य वारनिधि बारो।
शुक्र शनि भौमजाहमित्र तनु पुष्टिकरि
भानु युत बुध वसु ग्रहसारो ॥२॥
धर्मको केतु यह हेतु सुखदेत हे
तरण भव जलधिको सेतभारो।
भक्त दुःख दमन द्विजराज वल्लभ
सुवन प्रकट व्रजइश यशुमति दुलारो ॥३॥

भक्तक्लेशासहाय नमः

(८५) भक्तक्लेशासहः = आप भक्तों के दुःख को सहन नहीं करते हैं = *भक्त-क्लेशासहाय नमः।*

विवरण :

भक्तानां क्लेश दुःखं क्षणमात्रमपि न सहते, शीघ्रमेव तत्प्रतीकारं करोतीत्यर्थः । भक्तास्तादृशा यस्येति वा ।

भक्तेरज्ञात्वापराधे कृतेपि तद्दण्डत्वेनापि तेषु न तं (क्लेशं) सहत इति वक्तुं नामान्तरमाहुः ।

आप भक्तों के क्लेश को सहन नहीं करते हैं। आप शीघ्र ही उसका उपाय करते हैं। उसी प्रकार भक्तों के लिये आप क्लेश को सहन नहीं करते हैं। भक्त अज्ञान से अपराध करें तो भी उनको दंड देना पड़ता है। यह क्लेश भी आप सहन नहीं कर सकते हैं।

भावार्थ :

आपका हृदय माखन जैसा कोमल है। इसलिए आप भक्तों का क्लेश सहन नहीं कर सकते हैं। फलस्वरूप भक्तों के ताप निवारण के लिए आप सदा उद्यम शील हैं। भक्त भी आपको क्लेश हो यह सहन नहीं कर सकते हैं। इसलिए वे सदा आपकी प्रसन्नता के लिए ही चिंतित रहते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

शाकभाजी बेचने वाली एक कुंजरी मथुरा से आगरा जा रही थी। उष्णकाल के दिन थे। गर्मी से व्याकुल होकर वह एक वृक्ष के नीचे गिर गई। प्यास के कारण वह बेहोश हो गई थी। इतने में श्रीगुसांईजी श्रीनाथद्वारा पधार रहे थे। रास्ते में आपने इस कुंजरी के प्राण तड़फ रहे थे यह देखा। आपने खवास को आज्ञा करी, 'मेरे झारी के जल से उसके प्राण बचाओ।' खवास ने विनती करी, 'महाराज ! वह म्लेच्छ है, झारी सोने की है।

उससे उसको जल पिलायेंगे तो झारी छोवा जाएगी (अपवित्र हो जाएगी)।' आपने आज्ञा करी, 'झारी दूसरी आ जाएगी, परन्तु उसके प्राण कहाँ से आएंगे ?' खवास ने जल पिलाया। कुंजरी ने सचेत होकर दर्शन किये। उसे नंदनंदन स्वरूप में दर्शन हुए। उसने कहा, 'कन्हैया के विषय में सुना था आज प्रत्यक्ष में दर्शन हुए हैं।' वह कुंजरी गोकुल आकर रही। प्रतिदिन नए-नए मेवा और शाकभाजी लाती थी और कम पैसों में बेच देती थी। इस प्रकार उसने अपने जमा किये हुए १ हजार रुपये खर्च कर डाले। इसके बाद उसका देह अशक्त हो गया। उसने अन्न-जल छोड़ दिया। अब कोई नए शाकमेवा नहीं लाता था। श्रीगुसांईजी ने इस बात को जाना, तब आप सामने से पधारे। कुंजरी के मुख में चरणोदक दिया एवं तुलसी की माला दी। नाम मंत्र दिया। कुंजरी को साक्षात् श्रीयुगल स्वरूप के दर्शन हुए। उसका विरह ताप बढ़ जाने से कुछ ही क्षणों में उसने देह त्याग कर दिया।

कीर्तन–संगति :

अग्रिकुल प्रकट श्रीविट्ठलाधीश्वर पुष्टिमार्ग सुगम जन दिखायो।
भाव भावित सकल गोपिका प्रकट भुवि ताहिको हेतु जिन श्रुतिन गायो॥१॥
नित्य लीला ललित गोकुलाधीशकी आपईसेवा विविधकर बताये।
स्वीयजन हेत अज्ञान हारक सबन कपट पट दूर कर सुकृत लाये॥२॥
शास्त्र श्रुति स्मृतिनमें कहि कह्यो सार यह नंदगृह प्रकट जिय सबन भायो।
तेई अब वल्लभाधीश पथ प्रकटको सरसरंगी सबे रंग छायो॥३॥

सर्वसहाय नमः

(८६) सर्वसहः = आप सबको सहन करते हैं = सर्वसहाय नमः।

विवरण :

सर्वमेव भक्तकृतापराधमात्रं सहते न तद्दण्डं प्रयच्छतीत्यर्थः। यत्रापराधेपि कृते तत्क्लेशासहनं तत्रान्यदा तु न तत्सम्भावनापीति भावः । नामान्तरमाहुः ।

भक्त अनजाने में अपराध करे तो भी उसे दंड देकर यह भक्त को क्लेश नहीं होने देते हैं। आप स्वयं ही सब कुछ सहन करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक ब्राह्मण बाई श्रीनवनीतप्रियजी की रसोई की सेवा में प्रचारिका थी। एक दिन बर्तन मांजते हुए दाल के बर्तन में एक काला दाग रह गया। दूसरे दिन श्रीनवनीतप्रियाजी ने श्रीगुसांईजी से फरियाद की, तब आपने सारी सामग्री गायों को खिला दी तथा नई सामग्री सिद्ध करवाई और भोग धरा। आपने उस ब्राह्मणी को बुलाकर ठपका दिया। तब उसने अविवेक से जवाब दिया, 'अनजाने में काला दाग रह जाए तो उसमें मैं क्या करूँ ?' वह अपने गुरु के सम्मुख दीनता से नहीं बोली तथा अपनी भूल को स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्होंने अपने आदमी को आज्ञा करी, 'इस बाई को अड़ेल के घाट पर रख आओ।' वह बाई वहाँ पर झोपड़ी बनाकर रहने लगी। आने-जाने वाली बेलगाड़ियों के बैल का गोबर एकत्रित करके कंडे थापने लगी। एक बार बारिश के दिनों में श्रीगुसांईजी के यहाँ सूखी लकड़ियां या कंडे नहीं थे, तब आपने आज्ञा की, 'प्रयाग जाकर सूखे कंडे ले आओ।' एक व्रजवासी घाट पर आया। उसने उस बाई के पास कंडे देखे। उसने उन कंडों की मांग करी तब उस बाई ने कहा, 'यह सभी कंडे श्रीगुसांईजी के ही हैं आप खुशी से ले जाओ।' उस व्यक्ति ने इस

हकीकत को श्रीगुसांईजी से कहा। तब श्रीगुसांईजी ने प्रसन्न होकर उस बाई को बुलवाया और उसका अपराध क्षमा करके उसको सेवा में रखा। श्री नवनीतप्रियजी भी उसे फिर से सानुभव जताने लगे।

वि.सं. १६२९ की साल में आपके काका केशवपुरी गोकुल आये। अपने उत्तराधिकारी के रूप में मठ के लिये किसी बालक की माँग करी। किसी भी बालक ने हाँ नहीं की तब उनके पौत्र श्री कल्याणरायजी छोटे थे। उन्होंने विचार किया, 'कदाचित् मुझे दे देंगे।' इसलिए वे श्रीनाथजी के निज मंदिर में जाकर 'हों ब्रज मागनों जू' इस पद को गाकर रुदन करने लगे। तब श्रीनाथजी ने अपना श्रीहस्त उनके मस्तक पर रखकर उन्हें अभयदान दिया। केशवपुरी ने क्रोध में आकर श्रीगुसांईजी को दो शाप दिये, 'तुम्हारी बेटी तुम्हारे घर में ही रहेगी, तुम्हारे सिर पर बहुत कर्ज बढ़ जायेगा।' आपने उसी को अनुग्रह मानकर अंगीकार कर लिया। इस प्रकार से आप सब कुछ सहन करने के लिये समर्थ हैं।

भक्तकृतेवशाय नमः

(८७) भक्तकृते वशः = भक्त के द्वारा किए हुए कार्य के आप वश में रहते हैं = *भक्तकृतेवशाय नमः।*

विवरण :

भक्तकृते भक्तार्थे वशः, स्वातन्त्र्याभावेन तदधीन इत्यर्थः। भक्तकृते कार्ये वश इति निमित्तसप्तमी। अन्यथा तत्कार्यं न सिद्ध्येदिति भावः। 'अहं भक्तपराधीन' इतिवचनात्। नामान्तरमाहुः।

भक्त के द्वारा किये हुए कार्य में आप वश रहते हैं। आप भक्ति के वश हैं तथा भक्त के आधीन हैं। भगवान की भी

प्रतिज्ञा है कि 'मैं भक्त के आधीन हूँ।' आपकी भक्त वात्सल्यता अवर्णनीय है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

राजा आशकरणजी व्यसन अवस्था में गोकुल में आकर रहे थे तब श्रीगुसांईजी ने गोकुल के सभी सेवकों को आज्ञा की थी कि 'आशकरणजी जब भी आवें तब जो कोई सामग्री तैयार हो वह उन्हें लेवा (खिला) देना।' एक दिन श्रीनवनीतप्रियाजी के लिए राजभोग की सामग्री सिद्ध हो गई थी, तब आसकरणजी अचानक आ पहुंचे। सत्यभामा बेटीजी ने राजभोग का थाल राजा आशकरण के समक्ष रख दिया। उसको महाप्रसाद समझकर राजा ने भोजन किया और चले गये। सत्यभामा बेटीजी ने राजभोग की दूसरी सामग्री सिद्ध करी। श्रीनवनीतप्रियजी को भोग धरा। भोग सराने के समय श्रीगुसांजी पधारे। श्रीनवनीतप्रियजी ने प्रसन्न होकर श्रीगुसांईजी से कहा, 'आज मैंने दुगुना राजभोग अरोगा है।' तब श्रीगुसांईजी अत्यंत प्रसन्न हुए। आपने आज्ञा करी, 'भगवद् भक्तों के स्वरूप को भगवद् स्वरूप मानकर किए हुए कार्य भगवद्कृत हैं।'

कीर्तन–संगति :

जयति श्रीवल्लभ श्रुति उद्धरन त्रिभुवन फेर नंदके भवनकी केलठानी।
इष्ट गिरिवरधर सदा सेवन चरन द्वार चारोंवरन भरत पानी॥
वेदपथ व्याससे हनुमानदाससे ज्ञानकों कपिलसे कर्मयोगी।
साधु लक्ष्मन निपुन मनहु व्रजराज सुत प्रकट सुखरास मानो इन्द्र भोगी॥
सिंधु सम गंभीर विमल मन अति धीर प्रीतिको जल क्षीर व्रज उपासी।

ध्यानको सनकसे भक्तको फनिगसे याहीते सद्य किये व्रजमें वासी ॥
मनहु इन्द्रियजीती कृष्णसों करी प्रीति निगमकी चाल नित्य अति विशेखी।
रहित अभिमानते बढ़े सन्मानते शील और दाम गोविंद टेकी ॥
सदा निर्मलबुध्दि अष्टसिध्दि नवनिधि द्वारसेवत तहां मुक्तिदासी।
रामराय गिरिधरन जाय आयो शरण दीनके दुःखहरण पोषवासी।

आचार्यरत्नं सर्वानुग्रहकृन्मंत्रवित्तमः ।
सर्वस्वदानकुशलो गीतसङ्गीतसागरः ॥२३॥

शब्दार्थ :

आचार्यरत्नम् = आप श्रीमहाप्रभुजी के रत्न हैं, *सर्वानु-ग्रहकृतमंत्रवित्तमः* = आप सभी जीवों पर अनुग्रह करने वाले हो, *सर्वस्वदानकुशलः* = आप सर्वस्व दान करने में कुशल हैं, *गीतसंगीतसागरः* = आप गीत-संगीत के सागर हैं।

आचार्यरत्नाय नमः

(८८) *आचार्यरत्नम्* = आप श्रीमहाप्रभुजी के रत्न हैं = *आचार्यरत्नाय नमः ।*

विवरण :

आचार्यस्य श्रीवल्लभस्य रत्नं पुत्रत्वस्नेहभाजनमित्यर्थः । यद्वा, आचार्याणां भक्तिमार्गप्रकाशकानां मध्ये रत्नं तदपेक्षयोत्कृष्टमार्गप्रकाशक इत्यर्थः। यद्यपि पूर्वं बहव एवाचार्या बभूवुस्तथापि न तैरेतादृशे भक्तिमार्गः प्रकटीकृत इति भावः । नामान्तरमाहुः ।

आप श्रीमद् आचार्यजी के रत्न हैं। पुत्ररूप में स्नेह के पात्र हैं। आचार्यों में आप रत्न के समान हैं। भक्ति का प्रकाश करने वाले आपके समान अन्य कोई आचार्य नहीं है। पहले कई आचार्य

हो गए, परन्तु उन्होंने आपके समान भक्ति मार्ग प्रकट नहीं किया।

भावार्थ :

भक्ति मार्ग स्वयं भगवद् रूप होने से उसका प्रकाश और प्रचार भगवद् स्वरूप के सिवाय संभव नहीं है, इसलिए पुष्टि मार्ग के प्राकट्य के लिये स्वयं भगवान आचार्य रूप में इस भूतल पर प्रकट हुए हैं। भगवद् अवतार, अंश, कला, विभूति, आवेश रूप में कार्य करने के लिये प्रकट होते हैं। इसी प्रकार अलग-अलग आचार्य भी अंश, कला, विभूति, आवेश रूप अवतार हैं। परन्तु, श्रीगुसांईजी पूर्ण पुरुषोत्तम होने से स्वयं आचार्य हैं। अन्य आचार्य वेद में दर्शाई हुई भक्तिमार्गीय उपासना एवं पूजा मार्ग में से अपने सेवकों को मुक्तिपर्यंत ले जाते हैं। जबकि 'स्वयं आचार्य श्रीगुसांईजी निज भक्तों को रसानंद श्रीकृष्ण के स्वरूपानंद का अधिक संयोग कराते हैं, इसलिए आप अन्य आचार्यों में रत्नपदक के समान हैं।

जगत में प्रसिद्ध रूप मे तो उसी को आचार्य कहते हैं जो ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करे। श्रीगुसांईजी ने भी इसी लिए ब्रह्मसूत्र के आखिरी डेढ़ अध्याय पर श्रीमहाप्रभुजी ने बाकी रखे हुए भाष्य परिपूर्ण किये।

पुष्टिमार्ग के आचार्य तीन भाव से बिराजते हैं : आचार्य भाव, भक्त भाव, ईश्वर भाव। आचार्य भाव से आप पुष्टि मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। शास्त्रार्थ करके अन्य मार्ग का निरास करते हैं। प्राणीमात्र को शरण में लेते हैं। श्रीगुसांईजी को ऐसा नित्य नियम था कि जिस दिन कोई भी जीव शरण में न आवे उस दिन आप प्रसाद ग्रहण नहीं करते थे। भक्त भाव से आप प्रभु की

सेवा करते हैं। बाल भाव, किशोर भाव से विशिष्ट प्रकार से आप सेवा में तत्पर है तथा प्रभु के सुख का विचार करते हैं। अनवसर में आप विप्रयोग का अनुभव करते हैं। सभी इंद्रियों के स्वाद का त्याग करके निर्वाह के लिये सूक्ष्म भोजन करते थे तथा चाचाजी जैसे भक्तों के साथ सत्संग करते थे। ईश्वर भाव से आप सेवकों की वस्तुओं को आप स्वतंत्र रूप में अंगीकार करते थे। आचार्य में ईश्वरत्व की स्थिति शास्त्र सिद्ध है। श्रीमहाप्रभुजी ने स्वयं वैश्वानर वाक्पतिस्वरूप स्वमुख से बतलाया है। श्रीगुसांईजी साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम रूप में सिद्ध हैं। कई भक्तों को इस स्वरूप से अनुभव भी करवाया है। इसीलिए नागजी भट्ट ने उत्तम वस्त्र तथा बंगाल के वैष्णव ने भी उत्तम वस्त्र आपको अंगीकार करवाये हैं।

कीर्तन–संगति :

जे जन शरण आये ते तारे।

दीनदयाल प्रकट पुरुषोत्तम श्री विट्ठलनाथ ललारे॥१॥

जितनी रवि छायाकी कणिका तितने दोष हमारे।

तुमारे चरण प्रताप तेज ते तेऊ ततछिन टारे॥२॥

माला कंठ तिलक माथे धर संख चक्र वपु धारे।

माणिकचंद प्रभु के गुण ऐसे महापतित निस्तारे॥३॥

सर्वानुग्रहकृन्मंत्रवित्तमाय नमः

(८९) *सर्वानुग्रहकृन्मंत्रवित्तमः* = आप सभी जीवों पर अनुग्रह करने वाले हैं = *सर्वानुग्रहकृन्मंत्रवित्तमाय नमः।*

विवरण :

सर्वेषां जीवानामनुग्रहमंगीकारं करोतीति सर्वानुग्रहकृत्, मन्त्रं वेत्तीतिमन्त्रविद् । अतिशयितो मन्त्रविद्, मन्त्रवित्तमः । सर्वानुग्रहकृच्चासौ मन्त्रवित्तमश्च स तथा । अनेकप्रकारेण सर्वे भगवन्तं प्राप्स्यन्तीति विचारो मन्त्रपदेनोच्यत इति । अन्ये आचार्या मन्त्रविदो मोक्षप्रापकत्वादयं ततोप्यतिशयति, साक्षात्पुरुषोत्तमप्रापकोवेति भावः । यद्याचार्योपदिष्टवाक्यं मन्त्रपदेनोच्यते । तत्रापि पूर्ववदेव तारतम्यं ज्ञेयम् । नामातरन्माहुः ।

सभी जीवों पर आप अन्य अनुग्रह करने वाले हैं । आप मंत्र को भली-भाँति जानते हैं । मंत्र अर्थात् 'तुम ऐसा करोगे तो ही प्रभु को प्राप्त कर सकोगे' इस रहस्य को बतलाना । अन्य आचार्य जो मंत्र देते हैं उसका फल मोक्ष होता है, जबकि श्रीगुसांईजी जो मंत्र देते हैं वह साक्षात् पुरुषोत्तम की प्राप्ति करवाता है । श्री आचार्यचरण ने जो उपदेश दिया है वह मंत्ररूप है । उसे आप यथार्थ रीति से जानते हैं ।

भावार्थ :

मंत्र वेदों में प्रसिद्ध है । ऋषि-मुनि भी मंत्र कर्ता और मंत्र दृष्टा थे । यह मंत्र अधिक से अधिक स्वर्गादिक और अधिक से अधिक मोक्षपर्यंत का फल दे सकते हैं, जबकि श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी ने श्री अष्टाक्षर महामंत्र तथा श्रीनिवेदन मंत्र दिये । यह मंत्र स्वयं भगवद् स्वरूप होने से जब जीव को मंत्र का दान किया जाता है, तब जीवों की स्वरूपविस्मृति रूपी विद्या दूर हो जाती है । इससे जीव को अपना मूल स्वरूप तथा भगवद् स्वरूप का ज्ञान होता है ।

अन्य आचार्यों के द्वारा दिए हुए मंत्रोपदेश से इस लोक की नाशवंत अल्प सिद्धि प्राप्त होती है अथवा अधिक से अधिक मोक्ष प्राप्ति हो जाती है, जबकि पुष्टिमार्ग की मंत्र दीक्षा से जीव इस लोक में इस देह से साक्षात् पुरुषोत्तम की तनुवित्तजा सेवा करते हुए फलरूपा मानसी सेवा प्राप्त कर सकता है। उसका नित्य लीला में प्रवेश होने से नूतन अलौकिक देह से वह भगवद् सेवा का साक्षात अधिकारी बनता है।

श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी ने कई जीवों को केवल नाममंत्र की दीक्षा दी है, जिसमें यवन, बलाई, चोर, ठग, शिकारी, प्रेत इत्यादि का समावेश होता है। आपके प्रताप बल से नाममंत्र की दीक्षा द्वारा भी उन जीवों को आपने साक्षात् भगवद् स्वरूप का अनुभव करवाकर उनका उद्धार किया है। अष्टाक्षर मंत्र के प्रताप बल से चाचा हरिवंशजी श्रीयमुना जल के ऊपर चलकर पार उतरे थे। मोहनभाई ने अष्टाक्षर मंत्र से मृत पुत्र को सजीवन किया था। कुरुक्षेत्र के घने जंगल में रहने वाले वैष्णव स्त्री-पुरुष ने उनकी गाय के कान में अष्टाक्षर मंत्र सुनाकर उसे निर्भय बना दी थी, जिससे सिंह भी उस गाय को देखकर भाग जाता था।

यह महामंत्र अन्य शरणमंत्र जैसा सकाम मंत्र नहीं है, वह ज्ञान की प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति या पाप निवारण इत्यादि के लिये नहीं है, इस शरण मंत्र के द्वारा 'कृष्ण ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं' ऐसी जीव की अनन्यता सिद्ध होती है। अन्यता यह भगवद् स्वरूप होने से यह महामंत्र भगवद् स्वरूप है। श्रीगुसांईजी ने इस महामंत्र के अलौकिक स्वरूप को जानकर कृपा करके इस मंत्र के द्वारा जीवों पर महान अनुग्रह किया है। यह अष्टाक्षर महामंत्र अलौकिक अष्ट सिद्धि को देने वाला एवं रसरूप है।

इस प्रकार इस रसात्मक महामंत्र द्वारा आप रसात्मा-रसो-वै-सः परब्रह्म के साथ जीव का संबंध जोड़ देते हैं।

रसात्मा रसरीतज्ञो रसलीलापरायणः।

रसात्मक गोपीरसिकः सकृष्णः शरणं मम॥

स्वकीयं श्रीवल्लभीयं मायानंदनिधिर्हरिः।

निःस्वधनं च वृणुते स कृष्णः शरणं मम॥

कीर्तन–संगति :

सेवककी सुख रास सदा श्रीवल्लभ राजकुमार।

दरसनही प्रसन्न होत मन पुरुषोत्तम अवतार॥

सुदृष्टि चिते सिद्धांत बतायो लीला जगविस्तार।

यह तजि अन्य ज्ञानकों ध्यावत भूल्यो कुमति विचार॥

छीतस्वामी उद्धरे पतित श्रीविठ्ठल कृपा उदार।

इनके कहें गही भुज दृढ़ करि गिरिधर नंददुलार॥

सर्वस्वदानकुशलाय नमः

(९०) सर्वस्वदानकुशलः = आप सर्वस्व का दान करने में कुशल हैं *= सर्वस्वदानकुशलाय नमः।*

विवरण :

सर्वस्वं भगवत्स्वरूपं तद्दाने कुशलः प्रवीण इत्यर्थः। भक्तेभ्य इति शेषः। सर्वेभ्यो भक्तेभ्यः स्वस्य स्वरूपदाने कुशलः इति वा। नहि कोपि सर्वस्वमन्यस्मै प्रयच्छत्ययं तु तदपि भक्तेभ्यः प्रयच्छतीत्यदेयदातेति भावः नामान्तरमाहुः।

सब भक्तों को अपने स्वरूप का दान करने में आप कुशल हैं। इसी प्रकार आप भगवद् स्वरूप का दान करने में भी कुशल हैं। सामान्य रूप से कोई भी अपना सर्वस्व दूसरे को नहीं दे देता

है, जबकि आप अपने भक्तों को अपना सर्वस्व दे देते हैं।

भावार्थ :

श्रीमहाप्रभुजी का भी यह नाम है अदेयदानदक्षश्च महोदारः चरित्रवान्। श्रीगुसांईजी का भी यही स्वरूप है। आप अपने अलौकिक स्वरूप का दान भक्तों को करते हैं। आप स्वयं अपने विषय में कुछ भी कहे बिना अपने अलौकिक स्वरूप का दर्शन करवाकर भक्तों की अपने आप में स्वरूपा शक्ति है। इसी प्रकार से शरण में आये हुए जीवों को ब्रह्मसंबंध के बाद भगवद् सेवा की आज्ञा करके आप भगवत् को स्वरूप का दान करते हैं। आप अपने प्रत्येक सेवक को आज्ञा करते हैं कि, 'हम हमारा सर्वस्व आपको पधरा देते हैं।' सामान्य रीति से लौकिक मनुष्य सर्वस्व दूसरों को देते नहीं हैं। श्रीमहाप्रभुजी 'बालबोध' में आज्ञा करते हैं 'लौकिक मनुष्य और देव भी अपने को अत्यंत प्रिय हो ऐसी वस्तुएं दूसरे को देते नहीं हैं, खुद को जिन वस्तुओं की जरूरत न हो उसका ही दान करते हैं।' जबकि आप अपने सर्वस्व ऐसे भगवद् स्वरूप का भक्तों को दान करते हैं। आपकी यह महान उदारता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी द्वारका पधार रहे थे। रास्ते में एक गाँव के बाहर आपने मुकाम किया, वहाँ एक माँ-बेटे को आपने नाम मंत्र दिया। उन्होंने ब्रह्मसंबंध के लिये विनती करी, तब आपने आज्ञा करी, 'श्रीगोकुल आना, वहाँ मैं तुम्हें ब्रह्मसंबंध दूंगा।' वे द्रव्यपात्र तो थे ही, इसलिए व्रज में गये, वहाँ उन्होंने ब्रह्मसंबंध के लिये विनती करी, 'आपने उनको ब्रह्मसंबंध करवाया। कुछ ही दिनों के बाद अपने देश में वापस जाते हुए

उन्होंने श्रीगुसांईजी से विनती करी, 'हमारा मन आपकी सेवा करने का है।' आपने पूछा, 'तुम हमारी सेवा कौन सी रीति से करोगे ?' माँ-बेटे ने कहा, 'जिस प्रकार हम श्री ठाकुरजी की सेवा करते है, उसी प्रकार आपकी सेवा करेंगे।' श्रीगुसांईजी भक्त इच्छा पूरक हैं, इसलिए आपने आज्ञा की कि, 'तुम इस सेवा प्रकार को गुप्त रखना तो हम तुम्हारे घर पधारेंगे, परन्तु यदि किसी को मालूम हो जाएगा तो हम एक क्षण भी वहाँ नहीं बिराजेंगे।' उन माँ-बेटे ने श्रीगुसांईजी के स्वरूप को हृदय में पधराया। अपना द्रव्य लौकिक कार्य में खर्च न हो इसलिए उस बेटे ने विवाह भी नहीं किया। अपने घर में श्री ठाकुरजी के मंदिर जैसी सब व्यवस्था करवाई। कुआ भी घर के अंदर ही बनवाया। वे प्रेमपूर्वक श्रीगुसांईजी की सेवा करने लगे। वे प्रतिदिन सामग्री सिद्ध करके श्रीगुसांईजी के जिस स्वरूप का उन्हें दर्शन हुआ था उस स्वरूप का ध्यान करके आरोगने के लिये विनती करते थे। श्रीगुसांईजी साक्षात् कृपा करके आरोगने पधारते थे।

इस प्रकार आपने अपने स्वरूप का दान इन वैष्णव माँ-बेटे को किया था।

अपने सेव्य श्री ठाकुरजी के स्वरूप का दान आपने अनेकों को किया है। आपने अपनी सम्पत्ति का दान जगदीश यात्रा के दरम्यान संवत १६१३ के महासुद तेरस के दिन श्री जगदीश को सर्वसमर्पित करके किया था।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठल प्रकटे व्रजनाथ।
नंदनंदन कलियुग में आये निजजन किये सनाथ॥१॥

तब असुरनको नाश कियो हरि अब मायामत नाशे।
तब गोपीजनकों सुखदीनों सब निजभक्त ऐसे ॥२॥
तबकें वेद पथ छोड रास रमि नानाभाव बताये।
अब स्त्री शूद्रादिक सबकों ब्रह्मसंबंध कराये ॥३॥
यह विध प्रकट करी निजलीला वल्लभराज दुलारे।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल इनको वेद पुकारे ॥४॥

गीतसंगीतसागराय नमः

(९१) गीतसंगीतसागरः = आप गीत-संगीत के सागर हैं = *गीत-संगीतसागराय नमः।*

विवरण :

गीतं च संगीतं च गीतसंगीते, तयोः सागरस्तद्रसपूर्ण इत्यर्थः। गीतं लौकिकं, संगीतं शास्त्रीयमिति तयोर्भेदस्तत्सागरोत्वो-कृत्या यथा तत्र निरन्तरं तरंगा उत्पद्यन्ते तथात्र लोकशास्त्राती-ततत्प्रकारविशेषा जायन्ते। ते च नान्येनाकलयितुं शक्य इति व्यज्यते। नामान्तरमाहुः।

आप लौकिक गीत और शास्त्रीय संगीत में कुशल हैं। जिस प्रकार सागंर में नित्य तरंगें आती हैं, उसी प्रकार यहाँ गीत-संगीत में भी लोक शास्त्र से अतीत कई प्रकार चलते हैं। वे भक्त के सिवाय अन्य कोई नहीं समझ सकता है।

भावार्थ :

पुष्टिमार्गीय सेवाप्रणालिका में राग, भोग और श्रृंगार का विनियोग प्रभु की प्रसन्नता के लिए बहुत ही सुंदर रीति से किया जाता है। राग, भोग और श्रृंगार का विस्तार श्रीगुसांईजी के द्वारा विशेष प्रकार से हुआ। आप स्वयं भी गीत और संगीत के

कुशल कलाकार थे। इसी प्रकार देश के कोने-कोने से आने वाले कलाकारों के आप कदरदान भी थे।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी बाल्यावस्था से ही बीन बजाने में अत्यंत कुशल थे। आपकी बीन सुनकर अडेल के आजूबाजू के वन विस्तार में से कई हिरण दौड़कर आते थे। एक बार श्रीमहाप्रभुजी ने बीन बजाते हुए खुरदरी हुई आपकी अंगुलियों पर हाथ घुमाकर आज्ञा की कि, 'इन अंगुलियों से सेवा करने से श्रीठाकुरजी को परिश्रम होता है।' तब से आपने बीन बजाने का काम बंद कर दिया। आपने संस्कृत में अनेक स्तोत्रों और पदों की रचना की थी। इसके उपरांत कई छंदों का विनियोग भी आपके ग्रंथों में किया है। आपके ग्रंथों की संख्या ४८ निकली है। आपने व्रजभाषा में भी ललिता, सहजप्रीत आदि संकेतात्मक छाप से कीर्तनों की रचना की है, इस प्रकार से आप गीतसागर हैं।

आपने अष्टछाप के कवियों की स्थापना की और उनके द्वारा श्रीनाथजी के अष्ट समय के कीर्तनों की सुंदर प्रणालिका सिद्ध की। इन अष्ट छाप के कवियों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय के भक्त कवियों जैसे कि-हरिवंश, व्यासदास इत्यादि की रचनाओं को भी आपने श्रीनाथजी के सन्मुख अंगीकार करवाया। आपने ऋतु, समय एवं उत्सवों के अनुसार राग-रागिनियाँ अंगीकार करवाई, ध्रुपद शैली के शुद्ध भारतीय संगीत की सुरक्षा आपने की। इस प्रकार आप संगीतसागर भी हैं।

एक बार बादशाह अकबर का राज गवैया तानसेन श्रीगुसांईजी के पास अपनी संगीत कला को प्रदर्शित करने आया था। उसका संगीत सुनकर आपने उस को एक हजार रुपयों की

थैली एवं एक कोड़ी ईनाम में दी। तानसेन को बहुत नवाई (आश्चर्य) हुआ। उसने पूछा, 'महाराज ! मुझे यह एक कोड़ी क्यों दी गई ?' तब आपने आज्ञा करी, 'तुम बादशाह के राज गवैये हो, इसलिए तुमको एक हजार रुपये की थैली दी है, परन्तु हमारे कीर्तनकारों के पास संगीत की दृष्टि से आपकी कीमत एक कोड़ी के बराबर है।' यह सुनकर तानसेन मन में बहुत अकुला गया। उसने कहा, 'मुझे आपके वचन की खातरी करवाइये।' तब आपने अपने सेवक गोविंदस्वामी को बुलवाकर कीर्तन गाने के लिये कहा। गोविंद स्वामी के मुख से कीर्तन सुनकर तानसेन झुक गया। उसने हाथ जोड़कर कहा, 'आप सच्चे कला पारखी हैं। आज मेरा गर्व दूर हो गया है।'

कीर्तन–संगति :

प्रकटे रसिक श्री विट्ठलराय।
भक्तन हित अवतार लीनो बहुरि व्रज में आय॥१॥
शिव ब्रह्मादिक ध्यान धरत हे निगम जाकों गाय।
शेष सहस्त्र मुख रटत रसना यश न वरन्यों जाय॥२॥
पीत पट कटि काछनी कर मुरली मधुर बजाय।
मोर चंद्रिका मुकुट मस्तक भाल तिलक बनाय॥३॥
मकर कुंडल गंड मंडित देख मदन लजाय।
ग्वालनीके संग विलसत रासमंडल मांय॥४॥
अंगअंग अनंग सुंदर कहूं कहा बनाय।
प्राणपतिकी निरख शोभा चतुर्भुज बल जाय॥५॥

गोवर्धनाचलसखो गोपगोगोपिकाप्रियः।
चिन्तितज्ञो महाबुद्धिर्जगद्वन्द्यपदाम्बुजः॥२४॥

शब्दार्थ :

गोवर्धनाचलसखः =श्री गिरिराजजी में सदा बिराजने वाले श्रीगोवर्धनधर आपके सखा हैं, *गोपगोगोपिकाप्रियः*=आपको गोप, गाय एवं गोपिकाएँ प्रिय हैं , *चिंतितज्ञः* = आप भक्तों के विचारों को जानते हैं, *जगद्वंद्यपदाम्बुजः* = जगत में आपके चरणकमल प्रणाम करने योग्य हैं।

गोवर्धनाचलसखाय नमः

(९२) गोवर्धनाचलसखः = श्री गिरिराजजी में सदा बिराजने वाले श्री गोवर्धनधर आपके सखा हैं= *गोवर्धनाचलसखाय नमः ।*

विवरण :

गोवर्धनेचलः सर्वदा स्थिर श्रीगोवर्धनधरः सखा यस्य स तथा गोवर्धनाचला गोवर्धनाः द्रिःसखा यस्येति वा । गोवर्धनादिस्तु हरिदासवर्यो भवति अयमपि तथेति सखित्वम् । यद्वा, स स्वोत्पन्ना कन्दमूलाद्वा भगवदुपभुक्तं करोतीति तथायमपि स्वदेहेंद्रियादिकं करोतीति सखित्वम् । यद्वा, तस्य कन्दरायां प्रभुः क्रीडार्थं वृष्टि निवारणार्थं तिष्ठति तथैतद्वद्हृदकन्दरायां तिष्ठतीति सखित्वम् । तद्वा, यथा तदाश्रितानां पुलिन्दीनां प्रभुप्राप्तिर्जाता तथैव तदाश्रितानां जीवानां तत्प्राप्तिर्भवतीति सखित्वम् । सखित्वसूचकं नामान्तरमाहुः ।

श्री गिरिराजजी में सदा स्थिर रहने वाले श्री गोवर्धनधर आपके सखा हैं अथवा श्री गोवर्धन पर्वत आपके सखा हैं। श्री गिरिराज हरिदासवर्य कहलाते हैं। आप भी हरिदासवर्य हैं। इसलिए आप दोनों सखा हुए। श्री गिरिराज अपने में उत्पन्न होने वाले कंदमूल इत्यादि भगवान को अंगीकार करवाते हैं आप भी अपना देह, इंद्रियां इत्यादि को प्रभु को अंगीकार कराते

हैं। इसलिए दोनों एक-दूसरे के सखा हुए। श्री गिरिराजजी की गुफा में भगवान क्रीड़ा करने के लिये तथा मेघवृष्टि का दुःख निवारण करने के लिये सदा बिराजते हैं। इसी प्रकार से आपकी हृदयकंदरा में भी भगवान सदा बिराजते हैं, इसलिए भी आप दोनों सखा हुए। श्री गिरिराजजी का आश्रय करने से भील स्त्रियों को प्रभु की प्राप्ति हुई। इस प्रकार आपका आश्रय करने से जीवों को प्रभु की प्राप्ति होती है। इसलिए भी आप श्री गिरिराज के सखा हैं।

भावार्थ :

संस्कृत में कहावत है कि *'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्'* समान स्वभाव और व्यसनों को लेकर मित्रता बंधती है। श्री गिरिराजजी एवं श्रीगुसांईजी के स्वभाव में साम्य यहाँ बतलाया गया है। ऊपर के विवरण में दोनों स्वरूपों के बीच में साम्य बतलाकर विवरणकार दोनों स्वरूपों का सख्य सिद्ध करते हैं।

जिस प्रकार श्री गिरिराजजी और श्रीगुसांईजी भक्त स्वरूप में सखा है उसी प्रकार श्रीगुसांईजी और श्रीनाथजी भगवद् स्वरूप में भी सखा हैं, इसलिए जब रसखानजी ने यह देखा कि श्रीगुसांईजी घोड़े को मारते हुए तेजी से पधार रहे हैं तथा उनके नेत्र श्रीनाथजी के मंदिर की ध्वजाजी पर लगे हुए हैं, तब उन्होंने उत्सुकता से पूछा, 'तुम श्यामसुंदर के सखा हो ना ?'

इसीलिए तो अनवसर के समय में श्यामढाक पर क्रीड़ा करते हुए प्रभु को अरोगने के लिये भर ग्रीष्मकाल में आपने सामग्री सिद्ध की, सामग्री की छाब मस्तक पर लेकर आप खुल्ले चरणारविंद से श्यामढाक पधारते। प्रतिदिन भी आप गोकुल से गिरिराज श्रीनाथजी की सेवा के लिये पधारते थे, क्योंकि आप श्रीनाथजी के बिना रह नहीं सकते थे।

वार्ता–चरित्र–संगति :

सं. १६६९ में आपके सप्तम पुत्र श्री घनश्यामजी के विवाह के बाद श्रीजीद्वार पधारकर आपने अनेक मनोरथ किये । एक दिन श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की राजभोग आरती करके श्री गिरिराजजी को भोग धरने पधारे । वहाँ विलंब होने से आपके बालक भूख से व्याकुल हो गये । आपके ज्येष्ठ कुमार श्री गिरिधरजी ने विनती करी, 'काकाजी ! कल से श्री गिरिराजजी को भोग धरने मैं जाऊंगा ।' दूसरे दिन श्री गिरिधरजी भोग धरने पधारे तो वहाँ देखते हैं कि श्री गिरिराजजी को भोग धरने के लिये असंख्य स्वामिनियां क्रमानुसार उपस्थित हैं उनकी बारी आखिरी में आई । श्री गिरिराजजी को भोग धराने में बहुत विलंब हुआ । श्री गिरिधरजी भोग धराकर जब वापस आए तब श्रीगुसांईजी ने विलंब होने का कारण पूछा । श्री गिरिधरजी लज्जायुक्त बनकर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे । श्रीगुसांईजी को श्री गिरिराजजी की इस नित्य लीला का साक्षात्कार सदा है ।

कीर्तन–संगति :

गायनसों रति गोकुलसों रति गोवर्धनसों प्रीति निवाही ।
श्री गोपाल चरण सेवारति गोप सखा सब अमित अथाई ॥ १ ॥
गोवाणी जो वेदकी कहियत श्री भागवत भले अवगाही ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल नंदनंदकी सब परछांई ॥ २ ॥
गोवल्लभ गोवर्धन वल्लभ श्री वल्लभ गुण गिने न जाई ।
भुकी रेणु तरैया नभकी धनकी बूंद परत लखाई ॥ १ ॥
जिनके चरन कमल रज वंदित संतत होत सदा चितचाई ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल नंदनंदकी सब परछांई ॥ २ ॥

गोपगोगोपिकाप्रियाय नमः

(९३) गोपगोगोपिकायप्रियः = आपको गोप, गाय और गोपिकाएँ प्रिय हैं = *गोपगोगोपिकाप्रियाय नमः।*

विवरण :

गोपाश्च गावश्च गोपिकाश्च गोपगोगोपिकास्ताः प्रिया यस्य स तथा। गोवर्द्धना चलस्य गोपप्रियत्वं क्रीडोपयोगिस्थलत्वात् गोप्रियत्वं तृणादिमत्त्वात्। गोपिकाप्रियत्वं कन्दराद्रिमत्वेन रहोब-त्वात्। स त्रयमस्य प्रियमिति सखित्वम्।

गोप गाय और गोपिकाएँ आपको बहुत प्रिय हैं। श्री गिरिराजजी में श्रीठाकुरजी के सखा श्री गोपप्रभु साथ में खेलते हैं, इसलिए आपको सखा प्रिय लगते हैं। श्री गिरिराजजी में एकांत कंदरा में गोपिकाओं को प्रभु सुखदान करते हैं, इसलिए श्री गिरिराजजी गोपिकाओं को भी प्रिय लगते हैं। जिस प्रकार इन तीनों को श्री गिरिराजजी प्रिय हैं उसी प्रकार ये तीनों भी आपको प्रिय हैं। आप श्री गिरिराजजी के सखा हैं। उसका एक यह भी कारण है।

भावार्थ :

आपने सारस्वत कल्प में रसात्मक कृष्ण स्वरूप में गोप, गोपी, ग्वाल और गायें सभी कों निरोध का दान किया है। आपने सभी को अपने स्वरूपानंद का अनुभव करवाया है। आपको यह तीनों अत्यंत प्रिय हैं, इसलिए उनके स्वभाव का परिवर्तन किये बिना आपने उनके अनुकूल बनकर क्रीड़ा करी और उनका निरोध सिद्ध करवाया है, इसी प्रकार इस समय भी पृथ्वी पर श्रीगुसांईजी के स्वरूप में लीला के यह सभी स्वरूप जो भक्त रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं उनके स्वभाव को अनुकूल बनकर भक्तों को

निरोध सिद्ध करवाया है एवं आपने भक्तों में स्वयं का निरोध सिद्ध किया है ऐसे परस्पर में एक गाढ प्रियत्व का स्थापन किया है।

ऐसे परस्पर में एक गाढ प्रियत्व का स्थापन किया है।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठलेश प्रभु भये न व्हेहं।

पाछें सुने न आगे देखे फिर यह छबि न बनेहे ॥१॥

मनुष्य देह धर भक्तनहित कलि काल जन्मकों लेहें।

को कृतज्ञ करुणा सेवक तन कृपा सुदृष्टि चितेहें ॥२॥

को कर कमल सीसनपर धर अधमन वैकुंठ पठेहें।

भूषण वसन गोपाललालके कोन शृंगार सिखेहे ॥३॥

को आरती वारती श्रीमुख पर आनंद प्रेम बढेहे।

चतुर्भुजदास आस इतनी इन स्मरत जन्म सिखेहे ॥४॥

श्रीवल्लभकें आनंद भयो प्रकट भये श्री विट्ठलनाथ।

आनंदे व्रजवासी सकल गुण भक्त मित्र मिल गावहि साथ ॥१॥

आनंदे त्रैलोक अमरगण पुष्प वृष्टि करे अनुसार।

आनंदे गोवर्धन गिरिधर कृष्णदास कीनो बलिहार ॥२॥

चिंतितज्ञाय नमः

(९४) चिंतितज्ञः = आप भक्तों के विचारों को जानते हैं = *चिंतितज्ञाय नमः।*

विवरणः

भक्तानां चिन्तितं जानातीत्यर्थः। प्रभुचिन्तितं वा। अत एव नामान्तरमाहुः ।

आप भक्तों का चिंतन जानते हैं तथा आप प्रभु के विचारों को भी समझते हैं।

भावार्थ :

आप अंतर्यामी हैं, इसलिये अपने भक्तों के विचारों को आप बिना कहे ही समझ जाते हैं। इसी प्रकार आप प्रभु के हृदय को भी भली-भाँति जानते हैं और इसीलिये प्रभु की इच्छा के अनुसार ही आप सारे मनोरथों को अंगीकार करवाते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

मधुसूदनदास नाम के एक सेवक लाहोर में रहते थे। वे वहाँ के राजा के लिये घोड़े खरीदने के लिये आगरा आए, वहाँ उन्हें श्रीगुसांईजी के दर्शन हुए। आपने आज्ञा की, 'हमें भी एक घोड़ा खरीदने की इच्छा है।' तब मधुसूदनदास ने विनती की, 'आप वहाँ पधारें तो मैं आपको भेंट करूं और यदि आप आज्ञा करें तो मैं यहीं ले आऊं।' आपने आज्ञा करी, 'हम वहीं आएंगे, तब तुम्हें सेवक बनावेंगे और घोड़ा भी देखेंगे।' मधुसूदनदास ने विनती करी, 'जीवन का कोई भरोसा नहीं है। आप यदि न पधारें तो मेरा तो जीवन व्यर्थ जाए।' आपने आज्ञा की, 'हमारा वचन है हम तुम्हें शरण में लेने के लिये जरूर आवेंगे।' इस बात को बहुत समय व्यतीत हो गया। एक वैष्णव ने पश्चिम का प्रदेश घूमने की विनती करी, तब आपने आज्ञा की, 'हमारी इच्छा नहीं है, परन्तु हमें मधुसूदनदास के लिये आना पड़ेगा।' मधुसूदनदास की इच्छा पूर्ण करने के लिये आप लाहोर पधारे, वहाँ उनको सेवक किया। मधुसूदनदास ने एक सुंदर घोड़ा आपको भेंट किया।

कीर्तन–संगति :

बंदूनाथ श्री विठ्ठलेश।

भक्त हित अवतार भूतल प्रकट देव दिनेश॥१॥

सुभग सुंदर श्रीगिरिधर गोविंद रसिक शिरमोर।

एक जिह्वा कहत न आवे उपमाको नहि ओर॥२॥

श्रीबालकृष्ण वल्लभ वंदे धीर श्रीरघुनाथ।

भजन जन सुखरासी वंदे श्यामघन यदुनाथ॥३॥

श्रीवल्लभ नंदन जगत वंदन जीव किये सनाथ।

भगवानदास निवास चरणन गावत गुणगण साथ॥४॥

महाबुद्धये नमः *(९५) महाबुद्धिः* = आप महाबुद्धिशाली हैं = *महाबुद्धये नमः।*

विवरण :

महती बुद्धिर्यस्य स तथा। महतां बुद्धिर्यस्मायिति वा। नामान्तरमाहुः

आप महान बुद्धिशाली हैं। आपके द्वारा ही महापुरुषों को बुद्धि प्राप्त हुई है।

भावार्थ :

आप साक्षात् भगवद् स्वरूप हैं, इसलिए आप सबसे श्रेष्ठ बुद्धि धारण करते हैं। यह स्वाभाविक भी है। आपके दर्शन मात्र से जीव की अविद्या दूर होती है और जीव को ज्ञान और विद्या की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पारसमणि के संग से लोहा सोना बन जाता है उसी प्रकार आपके संग से जीव भी महान बन जाता है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

सुरत के साहुकार के बेटे की स्त्री का प्रसंग बहुत सुपरिचित है। उनको एक म्लेच्छ अपने कब्जे में करके ले जाने की इच्छा रखता था। उनके सामने का केस दिल्ली में अकबर बादशाह के दरबार में चलता था, तब आपने बीरबल को आज्ञा की, 'अकबर जैसे न्यायशील बादशाह के दरबार में ऐसा घोर अन्याय हो यह उचित नहीं है।' बीरबल ने बादशाह से बात की। बादशाह ने श्रीगुसांईजी को पुनः न्याय करने की विनती करी। आपने उस बाई को और मुसलमान सैनिक को दोनों को दो अलग-अलग पिंजरों में रात को रखा और एक विश्वास पात्र मनुष्य को उनकी बात को लिख लेने के लिये कहा। दूसरे दिन वह विश्वासपात्र व्यक्ति ने अपनी दर्ज की हुई बात को दरबार में जाहिर की। आपने मुसलमान को दंड देकर उस स्त्री को छुड़वा दी थी। आप ऐसे बुद्धिमान हैं। इसका प्रभाव बादशाह पर बहुत अधिक हुआ। बादशाह ने आपको न्यायाधीश की सत्ता प्रदान की और राजकीय सम्मान भी किया।

कीर्तन–संगति :

यह कलि परम सुभग जन धन्य श्री विठ्ठलनाथ उपासी।
जो प्रकटे व्रजपति श्रीविठ्ठल तो सेवक व्रजवासी ॥१॥
व्रजलीला भूल्यो चतुरानन व्रत टार्यो बलरासी।
अबलों शठ नहीं गिनत अभागे करत परस्पर हांसी ॥२॥
आत्मा सहित आप भये हित अंतर दियो प्रकाशी।
देखियत लोक समाज अलौकिक ज्यों गंगा सरितासी ॥३॥
धर हरि सदन सदा यश गावत भक्ति मुक्तिसी दासी।
वदत न कछू भीम अब वैभव भजनानंद उपासी ॥४॥

जगद्वंद्यपदाम्बुजाय नमः *(९६) जगदवंद्यपदाम्बुजः =* जगत में आपके चरणकमल प्रणाम करने योग्य हैं *= जगद्वंद्यपदाम्बुजाय नमः*

विवरण :

जगति वन्द्यं वन्दनीयं पदाम्बुजं यस्य स तथा । जगद्वन्द्यं यस्मास्तादृशं पदाम्बुजं यस्येति वा । एतच्चरणसम्बन्धेन जगदेव वन्दनीयमभूदिति भावः । जगत्पदेन भक्तप्रपंच एवोच्यत इति ज्ञेयम् ।

आपके चरणकमल इस जगत में प्रणाम करने योग्य हैं। आपके चरणारविंद के प्रभाव से जगत भी वंदन करने लायक है। जगत का दूसरा अर्थ है भक्त का प्रपंच। भक्त का गृहस्थाश्रम वृत्रासुर ने भी मांगा था, क्योंकि मोक्ष की अपेक्षा भी भक्त का गृहस्थाश्रम अधिक आनंद प्रदान करता है।

भावार्थ :

जगत शब्द यहाँ दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एक तो आधिभौतिक जगत, जिसे हम सब अपनी दृष्टि से देख रहे हैं। इस जगत में रहने वाले सभी जीव आपके चरणारविंद को प्रणाम करते हैं। जगत का दूसरा अर्थ है अलग-अलग प्रकार के जीवों के संसार। प्रवाही दृष्टि का जगत आधिभौतिक जगत है। मर्यादा जीवों का जगत आध्यात्मिक जगत है तथा पुष्टिजीवों का जगत आधिदैविक जगत है। इन तीनों ही जगतों का आप उद्धार करते हैं, इसीलिए श्रीमहाप्रभुजी ने आज्ञा की कि, 'भक्त का गृहस्थाश्रम भगवद् सेवा के लिये है। घर में रहकर भगवद् सेवा न बने तो घर का त्याग कर दो। इस प्रकार दैवी जीवों के गृहस्थाश्रम रूपी

जगत सेवा द्धारा भक्तों को आनंद अर्पित करते हैं ।

संसार में आपके चरणारविंद की प्रसिद्धि व्यापक है ।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी का मुकाम असारवा में था । तब एक बाज बहादुर नाम के अमलदार ने बादशाह से चुगली की कि, 'आपकी रानी लाछाबाई एक फकीर के साथ में मिलकर रहती है। बादशाह ने बाजबहादुर को ही श्रीगुसांईजी के पास भेजा । आपके दर्शन करते ही बाजबहादुर बहुत प्रभावित हुआ । आपने उसके साथ यवन भाषा में बात करी, उससे वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने विनती की, 'देश में बहुत अकाल है ।' आपने आज्ञा करी, 'तुम राज महल में वापस जाते हुए ही भीग जाओगे' आपश्री का वचन सत्य सिद्ध हुआ । इस प्रकार बाज बहादुर जैसा स्वभाव से चुगलखोर भी आपके चरण में झुक गया ।

कीर्तन–संगति :

हों चरणात पत्रकी छैयां ।
कृपासिंधु श्रीवल्लभनंदन वहयो जात राख्यो गहि बहियां ।।१।।
नव नखचंद्र शरद मंडल छबि हरत ताप स्मरत मन महियां ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विठ्ठल
सुयश बखान सकल श्रुतिनहियां ।।२।।

★★★

वंदे श्री विठ्ठल चरणं ।
दशनखशिव उद्यात देशीादशी ।नशीदन अचली तिमरहरंण ।।१।।
घोषसंध्या आगम श्रीगोकुल संग सखा तांडवकरणं ।
दरशन तृषित विथकी व्रजबाला ज्वालायामिनि उद्धरणं ।।२।।

कुच कुंकुम रंजित रसपूरण मोचक नित्यप्रति अनुकरणं।

गौचारण मिष व्रजवीथनमें विरह आधि मन त्रियहरणं ॥३॥

शेषसहस्त्र मुख पार न पावत ध्यान धरत शुक मुनि शरणं।

खटदश चिह्न सुभगता सीमा जनगोविंद शिर आभरणं ॥४॥

***

वंदे श्री विठ्ठल चरणं।

नख राशि विमल कोटि किरणावलि जनमन कुमुद विकस करणं ॥१॥

ध्वज व्रजांकुश चाप चंद्र नभ रेखा कलश यवाभरणं।

यत्कुरुते मंगलमय दृष्टं ध्यात्वा भववारिधि तरणं ॥२॥

दैवी सकल कामना पूरण भाव संपत गता शरणं।

ते कुर्वंतु वसो मम चेतसि गोविंद प्रभु गिरिवर धरणं ॥३॥

***

भजो श्रीवल्लभसुत के चरणं ॥

नंदकुमार भजन सुखदायक पतितन पावनकरणं ॥१॥

दूर किये कलि कपट वेद विधि मत प्रचंड विस्तरणं।

अति प्रताप महिमा समाज यश शोकताप त्रय अघहरणं ॥२॥

पुष्टि मर्यादा भजन रस सेवा निजजन पोषण भरणं।

नंददास प्रभु प्रकट रूप धर श्री विठ्ठलेश गिरिवरधरणं ॥३॥

***

°भज श्रीविठ्ठलविमल सुचरणं।

तापशोक भय मोह माया लपटी

विपति सब टरन दुख दूरिहरणं ॥१॥

भक्तहित प्रगट भव दुख दुरिकरन
घोखपति रसिक रसविदाति करणं।
अमित माया जलद शोक सवीय
नृप निगम पथनर भुवन सुदृढ हरणं ॥२॥
वचन पीयूष मधु चरति करुणा
उदधी दरस परस सुमिरन त्रिविध तरणं।
अमर नरकोक पुर दुरयस मता
नही जन चतुर्भुज अधिक मलय शरणं ॥३॥

जगदाश्चर्यरसकृत् सदाकृष्णकथाप्रियः ।
सुखोदर्ककृतिः सर्वसन्देहछेददक्षिणः ॥२५॥

शब्दार्थ :

जगदाश्चर्यरसकृत = आप आसुरीजनों को आश्चर्यचकित करते हैं, *सदाकृष्णकथाप्रियः* = आपको हमेशा कृष्ण कथा प्रिय है, *सुखोदर्ककृतिः* = आप सुखद लीलाओं को करने वाले हैं, *सर्वसंदेहच्छे ददक्षिणः* = आप सब के संदेहों को छेदन करने में कुशल हैं।

जगदाश्चर्यरसकृते नमः

(९७) जगदाश्चर्यरसकृत् = आप आसुरीजनों को आश्चर्यचकित करते हैं = *जगदाश्चर्यरसकृते नमः ।*

विवरण :

जगत आसुरप्रपंचस्याश्चर्यरसमेव करोतीत्यर्थः । लौकिक-प्रकारेण लौकिककार्य प्रदर्शनेन तेषामयं लौकिक इव दृश्यते, कथमलौकिकं करोतीत्याश्चर्ययुक्तमेवेति भावः । नामान्तरमाहुः ।

आप आसुरीजनों को तो आश्चर्य ही पैदा करते हैं। आप

लौकिक प्रकार से अलौकिक कार्य क्यों दिखाते हैं ? आसुरीजनों को आप लौकिक स्वरूप में दिखते हैं, जबकि आप कार्य अलौकिक करके बतलाते हैं, इसलिए उन्हें आश्चर्य होता है।

भावार्थ :

श्रीगुसांईजी लौकिक प्रकार से अलौकिक कार्यों को करके बतलाते हैं, इसलिये जीवों को आश्चर्य रस प्रकट होता है। विविध रसों में से अद्‌भुत रस को आप इस प्रकार करते हैं। कृष्णप्रादुर्भाव के समय की कारिका में श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'एकं भगवतः कार्यंबह्वर्थानां च साधकम्।' प्रभु एक कार्य द्वारा अनेक कार्य सिद्ध करते हैं। उसी प्रकार श्रीगुसांईजी भी एक कार्य के बहाने से अनेक कार्यों को करके जगत में आश्चर्य प्रकट करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी छोटी उम्र में ही कुंभनदास इत्यादि भक्तों के साथ हांसी-खेल खेल रहे थे, तब श्री दामोदरदास हरसानीजी ने कहा, 'कृपानाथ, यह मार्ग हांसी-खेल का नहीं है, परन्तु ताप-क्लेश का है।' श्रीगुसांईजी ने दामोदरदासजी से कहा, 'तुमने योग्य ही कहा है, तुम्हारे द्वारा श्रीमहाप्रभुजी ने ही मुझे यह शिक्षा दी है।' श्रीगुसांईजी के हांसी-खेल जगत के लौकिक जीव नहीं समझ सकते, क्योंकि आप सामान्य वैष्णवों के साथ हांसी खेल नहीं करते थे। उस समय आपके पास कुंभनदास, गोविंद स्वामी जैसे भक्तिरसप्रचुर महानुभाव बैठे हुए थे।

कुंभनदासजी ने टोड के धना के प्रसंग में नीचे का पद गाया था :

भावे तोहि टोकको धनो,
कांटा लगे गुखरू चूमे फाटयो जाय यह तनो
सिंहको क्या लोंकडीको डर यह नयी बानिक बन्यो,
कुंभनदास तुम गोवर्धनधर वह कोन रांड ढेढणीको जन्यो

श्रीकुंभनदासजी की ऐसी हांसी से श्रीनाथजी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। इसी प्रकार से श्रीगुसांईजी भी ऐसे अलौकिक हांसी खेल में मग्न बन जाए तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं है।

जब सं. १६२५ में श्रीकृष्णदास अधिकारी ने श्रीगुसांईजी को श्रीनाथजी की सेवा में जाने से रोका तब आप छः मास तक चंद्र सरोवर पर महान-विरह में बिराजे। आप प्रतिदिन श्रीनाथजी को एक-एक विज्ञप्ति लिखकर भेजते थे। छः महिने के बाद एक बार बीरबल श्रीगोकुल आये। उन्हें यह समाचार मालूम हुए। इसलिए एकदम क्रोध में आकर ५०० सैनिक भेजकर कृष्णदास अधिकारी को पकड़ कर मंगवा लिया। श्रीगुसांईजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी ने चंद्र सरोवर पर जाकर श्रीगुसांईजी से यह हकीकत कही। आपने आज्ञा की, 'श्रीमहाप्रभु के सेवक कृष्णदासजी को कैद कर लिये है ? बहुत बुरा हुआ। वे जब तक स्वयं छूट कर अधिकारी स्वरूप में मुझे मंदिर में जाने की आज्ञा नहीं करेंगे, तब तक मैं नहीं जाऊंगा और जो जल लेता हूं वह भी नहीं लूंगा।' श्रीगिरिधरजी ने मथुरा जाकर बीरबल को यह समाचार सुनाए। बीरबल ने कृष्णदासजी को मुक्त किया। कृष्णदास ने चंद्र सरोवर पर आकर खुद के अपराध की क्षमा मांगी। श्रीगुसांईजी को मंदिर में पधराने की विनती करी। आपने फिर से उन्हें अधिकारी का पद सुपुर्द किया।

इस प्रकार आपके हांसी खेल में और लौकिक कार्य में भी अलौकिक कार्य समाया हुआ है।

कीर्तन–संगति :

परमकृपाल श्रीवल्लभनंदन, करत कृपा निज हाथ दे माथे।
जे जन शरण आय अनुसरही ग्रही सोंपत श्रीगोवर्धननाथे।
परम उदार चतुर चिंतामणि राखत भवधारा बहु जाते।
भज कृष्णदास काज सब सरहि जे जाने श्रीविट्ठलनाथ।

सदाकृष्णकथाप्रियाय नमः

(९८) सदाकृष्णकथाप्रियः = आपको हमेशा कृष्ण कथा प्रिय है = *सदाकृष्णकथाप्रियाय नमः।*

विवरण :

सदा निरंतर कृष्णकथैव प्रिया यस्य स तथा। नामान्तरमाहुः।

आपको हमेशा कृष्ण की कथा प्रिय है।

भावार्थ :

आप भगवद् कथा के महान अनुरागी हैं। यह हकीकत नीचे के वार्ता-प्रसंग से समझी जा सकती है।

वार्ता–चरित्र–संगतिः

एक बार श्रीगुसांईजी लघुशंका करने के लिये चोक में पधारे। चोक में चाचा हरिवंशजी खड़े थे। श्रीगुसांईजी चाचाजी के साथ भगवद् वार्ता करने लगे। कथा में दोनों ही अपने देहानुसंधान भूल गये। श्रीगुसांईजी के श्रीहस्त में एक बड़ी झारी थी। उसका वजन भी आपको अनुभव नहीं हुआ। चाचाजी को भी भान नहीं रहा कि आपके श्रीहस्त में से मैं झारी ले लूं। भगवद् वार्ता में

बहुत रात व्यतीत हो गई। सुबह होने आया। खवास ने आकर विनती करी, 'महाराज ! ठाकुरजी को जगाने का समय हो गया है। आप तुरन्त ही देहकृत्य करके, स्नान करके,सेवा में पधारें। सेवा के तमाम कार्यों में उस दिन आपको भगवद् वार्ता का ही आवेश रहो।

कीर्तन–संगति :

व्रजमे बाजत आज वधाई प्रकट भये भूतल श्रीविट्ठल गोकुलपति सुखदाई।।
प्रफुल्लित भये सकल दैवीजन, मनहु रंकनिधि पाई।
भक्ति कल्पतरुकी सब शाखा नव अंकुरित बनाई।।२।।
गृहगृह तोरण ध्वजा पताका मंगलचार सुनाई।
सुनत श्रवण आनंद भयो अति गिरिधरकेलि कराई।।३।।

सुखोदर्ककृतये नमः

(९९) सुखोदर्ककृतिः = आप सुखद लीला करने वाले हैं = *सुखोदर्ककृतये नमः।*

विवरण :

सुखमदर्क उत्तरं फलं यस्याः सा सुखोदर्का सुखोत्पादिका, तादृशी कृतिर्लीलायस्य स तथा। 'उदर्कः फलमुत्तरमि'तिकोशात्। निरन्तरं भक्तानां स्वलीलया सुखमेवोत्पादयतीति भावः। नामान्तरमाहुः।

जिसका उत्तर फल सुख है, उसकी सुख देने वाली लीला आप करते हैं। भक्तों को लीला से निरंतर सुख प्रदान करते हैं।

भावार्थ :

आपकी सब लीलाएं भक्तों के लिये सुखद हैं। आप अपनी

लीलाओं से भक्तों को अलौकिक सुख का दान करते हैं। भक्तों के हृदय सदैव आपकी लीला में ही लगे रहते हैं। उसी से भक्त प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार नागजी भट्ट गोधरा से सुंदर केरियां लेकर श्रीगुसांईजी के पास आये। श्रीगुसांईजी द्वारका के मार्ग में रहने वाले गागागुरगढ़ नाम के स्थान में बिराजते थे। नागजी भट्ट ने चारसो केरियां श्रीगुसांईजी के समक्ष धरी, तब श्रीगुसांईजी ने आज्ञा करी, 'नागजी, तुम इन कोरियों को श्री रनछोड़जी के मंदिर में क्यों नहीं लाए ?' नागजी भट्ट ने विनती करी, 'महाराज! हम अन्य सब कुछ छोड़कर केवल आप की शरण में आए हैं, इसलिए आप हमारा अंगीकार करिये।' आपने यह देखा की केरियाँ बहुत सुंदर हैं, इसलिए आपने नागजी भट्ट को आज्ञा की, 'यह केरियाँ श्रीनाथजी के लायक हैं, इसलिए श्रीनाथजी को अंगीकार करवाए बिना हम इन्हें कैसे लें ?' तत्काल नागजी भट्ट ने एक सांढनी किराये से ली और केरियाँ लेकर गिरिराज गये। वहाँ दो सौ केरियाँ पधराई और वहाँ से पहुंच लेकर गोकुल आए। तब श्री नवनीतप्रियाजी के मंदिर में दूसरी दो सौ केरियाँ पधराई और पहुंच लेकर वे सतत् रात-दिन प्रवास करते थे। तीसरे दिन श्रीगुसांईजी के पास वापस आये। नागजी भट्ट ने दो सौ केरियों का अमरस चार कटोरे में साजा और सौ केरियों के नाके करके वह सामग्री श्रीगुसांईजी के पास धरी। नागजी भट्ट ने श्रीगुसांईजी को दोनों पहुंच बतलाई, तब आपने आज्ञा की, 'श्रीनाथजी और श्रीनवनीतप्रियजी अरोगते हैं वहां मैं भी आरोगता हूं, तू सभी केरियां वहाँ देकर क्यों नहीं आया ?' तब श्रीनागजी भट्ट ने विनती करी, 'महाराज ! श्रीनाथजी को और श्री

नवनीतप्रियाजी को बतलाने वाले आप है इसलिए हमारे तो आप सर्वस्व हैं। आप आरोगे तो हमें सुख हो, क्योंकि हम आपके चरणकमल के दास हैं।' आपने वह सामग्री रसोई में पधराई, भोग धरी फिर आरोगे। आपके ऐसे लीला चरित्र भक्तों को सुख देने वाले हैं।

कीर्तन–संगति :

श्रीमद् वल्लभके घर प्रभुजी फिर अवतार न धरते।
तो हम सरिखे मूढ पतित जन कहो कैसे निस्तरते ॥१॥
बिन पाये व्रजपति पदपकंज काकी सेवा करते।
श्री गिरिधरन राधिका वर विन रसना कहा उच्चरते ॥२॥
शिव सुरेश दिनमणि गणेशके होय कनोंडे डरते।
अति आतुर पुन अर्क तूलसे सबनके पायन परते ॥३॥
जब हमहुं लोगनकी न्याई घरघर भटकत फिरते।
कर्म योग पुर ज्ञान उपासन इनहीमें पचि मरते ॥४॥
कहा भयो निज बिरदजानके पतित जान उद्धरते।
रुचिर रूप बर दास नारायण तृषित नयन क्यों ठरते ॥५॥

सर्वसंदेहच्छेददक्षिणाय नमः

(१००) सर्वसंदेहछेददक्षिणः = भक्त के सभी संदेहों को दूर करने में आप कुशल हैं = *सर्वसंदेहछेददक्षिणाय नमः।*

विवरण :

सर्वेषां भक्तानां सन्देहाः, सर्वे च ते तत्सन्देहास्तेषां छेदने द्विधाकरणे दक्षिणः प्रवीण इत्यर्थः। वाङ्मात्रेणैव सर्वसन्देह-निवारकत्वं दक्षिणत्वम्। सर्वे भक्तास्तादशा यस्येति वा। नामान्तरमाहुः।

सभी भक्तों के संदेहों को छेदने में आप कुशल हैं। वाणी मात्र से ही सारे संदेहों को दूर करने वाला प्रवीण कहलाता है। आपके समान आपके भक्त भी सभी संदेहों को दूर करने वाले हैं।

भावार्थ :

भक्त को जब-जब संदेह होता है, तब तब आप भक्त के सभी संदेहों को खूब कुशलता से दूर करते हैं। इससे भक्त की श्रद्धा अधिक दृढ़ होती है। आपके जैसा ही सामर्थ्य आपके भक्तों में भी है, इसलिए भक्त भी दूसरों के संदेहों को दूर करने में समर्थ हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

व्रज में मोटे कृष्णदास बहुत चतुर थे। वे संत-महंतों की परीक्षा लिया करते थे। वे श्रीगुसांईजी की परीक्षा लेने के लिये गोकुल आये। वे श्रीनवनीतप्रियाजी के मंदिर में आए। तब श्री नवनीतप्रियाजी पलने झूल रहे थे और आप उन्हें झुला रहे थे। मोटे कृष्णदास को ऐसे दर्शन हुए कि किसी समय तो श्रीठाकुरजी झूलते हैं और श्रीगुसांईजी झुलाते हैं और किसी समय श्रीगुसांईजी झुलते हैं और श्रीठाकुरजी झुलाते हैं। वे विचार करने लगे कि 'इनमें श्रीठाकुरजी कौन और श्रीगुसांईजी कौन ?' कुछ समय के बाद श्रीगुसांईजी राजभोग धरकर बाहर पधारे, तब उनको श्रीगुसांईजी के रोमरोम में श्री नवनीतप्रियाजी के दर्शन हुए। उन्होंने विनती करी, 'कृपानाथ ! मैं परीक्षा लेने आया था, परन्तु आपने तो मेरी परीक्षा ली।' उनकी विनती से आपने उनको नाम निवेदन करवाया, तब से ही कृष्णदास को प्रभु की लीला का सानुभव होने लगा। कृष्णदास को वसंतविहार के

दर्शन हुए, तब उन्होंने जो पद गाया उसे सुनकर श्रीगुसांईजी ने प्रसन्न होकर आज्ञा करी, 'अब तुम्हें लीला की स्फुर्ति हुई है, इसलिए तुम व्रज में घूमो तथा मानसी में मग्न रहो।' इस प्रकार श्रीगुसांईजी ने उनके संदेहों को दूर किया तथा उन्हें इसी देह से साक्षात् पुरुषोत्तम के स्वरूपानंद का अनुभव करवाया।

कीर्तन–संगति :

जबते श्रीविट्ठलनाथजू नयनन भर देंखे।
जन्म सुफल भयो आपनों करी कृपा विशेखे ॥१॥
कलियुग जान प्रकट भये करुणा विस्तारी।
भजनानंद दिखायकें भक्तन हितकारी ॥२॥
सगुण ब्रह्म थापन किये दे श्रुति सब साखी।
माणिकचंद प्रभु सर्वदा भक्तन पतरखी ॥३॥

स्वपक्षरक्षणे दक्षः प्रतिपक्षक्षयंकरः ।
गोपिकाविरहाविष्टः कृष्णात्मा स्वसमर्पकः ॥२७॥

शब्दार्थ :

स्वपक्षरक्षणे दक्षः = अपने भक्तों का रक्षण करने में आप चतुर हैं, *प्रतिपक्षक्षयंकरः* = आप शत्रु पक्ष का नाश करने वाले हैं, *गोपिकाविरहाविष्टः* = गोपिकाओं के विरह रस से आप व्याप्त है, *कृष्णात्मा* = आपका अंतःकरण श्रीकृष्ण में ही है, *स्वसमर्पकः* = आप अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित करते हैं।

स्वपक्षरक्षणे दक्षाय नमः

(१०१) स्वपक्षरक्षणे दक्षः = अपने भक्तों का रक्षण करने में आप चतुर हैं = *स्वपक्षरक्षणे दक्षाय नमः ।*

विवरण :

स्वस्य पक्षः पक्षपातो येषु स्वस्मिन्येषामिति वा ते स्वपक्षा

भक्तास्तेषां रक्षणे दक्षश्चतुरः समर्थ इत्यर्थः । नामान्तरमाहुः

आपका पक्षपात आपके भक्तों में है, भक्तों का पक्षपात आपमें है, इसीलिये आप भक्तों का रक्षण करने में चतुर हैं।

भावार्थ :

श्रीभगवद् गीता में भगवान आज्ञा करते हैं, 'मैं सभी भूतों में समान हूँ। मेरा कोई द्वेषपात्र नहीं है अथवा मुझे कोई भी प्रिय नहीं है तो भी जो मुझे भक्ति पूर्वक भजते हैं वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूं।' भगवान निर्दोष ब्रह्म होने से आपमें विषमता नहीं है, फिर भी आपको भक्त प्रिय होने से आप भक्तों की ओर पक्षपाती हैं।

वार्ता–चरित्र–संगति :

मेडता के वणिक हरिदास श्रीगुसांईजी के सेवक थे। वहाँ के राजा जयमल शैव थे। उन्हें पता चला कि हरिदास शैव मंदिर में दर्शन करने नहीं आते हैं और वैष्णव धर्म को पालते हैं। राजा ने हरिदास को बुलाकर उनको ठपका दिया। हरिदास शांत रहे, तब राजा ने गुस्से में कहा, 'मेरे राज्य में रहना हो तो मेरा धर्म पालना पड़ेगा।' हरिदास ने निर्भयतापूर्वक जवाब दिया, 'तुम्हारे जैसे अनेक राजा हमारे प्रभु के दर्शन करने के लिये उनके द्वार पर पड़े रहते हैं। मैं अपने प्रभु का धर्म छोड़कर तुम्हारा धर्म किस लिए पालुं ?' ऐसा जवाब सुनकर राजा को बहुत क्रोध आया। उन्होंने सैनिकों को हुकुम किया, 'हरिदास को मार डालो।' सैनिक हरिदास को ले जा रहे थे, तब जयमल की बहन जो श्रीगुसांईजी की सेवक थी उसने हरिदास को अपने महल में बुलवाकरके सम्मान पूर्वक आसन पर बैठाया। राजा को इस बात का पता चला। श्रीगुसांईजी के प्रताप बल से राजा को भी

अपनी भूल समझ में आई और वह श्रीगुसांईजी का सेवक हुआ।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठल सुखसागर आगर जगत उजागर पायेरी।
भक्तनके हित कारण आली अति आतुर उठिधाये ॥१॥
ताको भाग्य कहांलों वरणों जो वल्लभ गुणगाये।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल आनंद रस बरखाये ॥२॥

प्रतिपक्षक्षयंकराय नमः

(१०२) प्रतिपक्षक्षयंकरः = आप शत्रु पक्ष का नाश करने वाले हैं = *प्रतिपक्ष-क्षयंकराय नमः।*

विवरण :

प्रतिपक्षस्य शत्रुपक्षस्य क्षयं नाशं करोतीत्यर्थः। नामान्तरमाहुः।

आप शत्रु पक्ष का नाश करने वाले हैं।

भावार्थ :

प्रभु की प्रतिज्ञा है कि, 'जो मेरे भक्तों को दुःख देता है, वह मेरा शत्रु है और मैं उनका नाश करता हूँ, क्योंकि मैं अपने भक्तों के वशीभूत हूँ।' भगवान भक्त के वश में है। मर्यादा साधन रूपा भक्ति जो भक्त स्वसुख के लिये करते हैं, उसके वश में भगवान नहीं है। उनसे तो वे उदासीन हैं, परन्तु प्रेमात्मिका पुष्टि भक्तों के प्रभु वश में हैं क्योंकि वे भगवद् सुखात्मक हैं। भगवान के पुष्टि भक्त एक-दूसरे के साथ में ताने-बाने के समान गूंथ गये हैं, इसलिये प्रतिपक्ष अर्थात् शत्रुओं का संहार प्रभु सहज रीति से करते हैं। प्रभु अपने भक्तों को निर्भय बनाकरके भक्ति मार्ग में रखते हैं। श्रीगोपालदास भाई 'वल्लभाख्यान' में गाते हैं, 'भक्ति पक्ष वैभव सुदृढ़ कीधो।'

वार्ता–चरित्र–संगति :

लाड़बाई तथा धारबाई नाम की दो बहनों का विवाह सिरोही के राजा के साथ हुआ था। वे श्रीगुसांईजी की सेवक थीं। इस समय काशी में बिराजने वाले श्री गोपाललालजी की वे सेवा करते थे। सिरोही का राजा महा शैवी था। उसे पता चला कि लाडबाई और धारबाई अन्य की सेवा करते हैं। इसलिए तलवार लेकर वह उन्हें मारने के लिये आया, तब दोनों बहने तलवार लेकर सामने जाकर खड़ी रही। जब राजा आया, तब निडरता से उन्होंने कहा, 'संभाल कर आगे आईयेगा, हम भी राजपूतानियां हैं।' राजा डर कर अपने महल में चला गया, फिर दोनों बहने श्रीठाकुरजी को पधराकर काशी आकर रही।

इस प्रकार प्रभु भक्तों को अपने दुश्मन से अभय देते हैं।

कीर्तन–संगति :

वेदपंथ बाजत तुर निशान।
जन मनमोद मयाद मगनता पुनि प्रगटे कलि कान्ह॥१॥
करुणानिधि भक्तहित प्रगटे श्रीविट्ठल अभिधान।
मायामत तम रासि मथनको श्रीवल्लभ अखिल दृगमान॥२॥

गोपिकाविरहाविष्टाय नमः

(१०३) गोपिकाविरहाविष्टः = गोपिकाओं के विरह रस से आप व्याप्त हैं = *गोपिकाविरहाविष्टाय नमः।*

विवरण :

गोपिकानां व्रजसीमन्तिनीनां विरहो विरहकाले प्रादूर्भूतो योऽनिर्वचनीयो रसस्तेनाविष्ट आसमन्ताद्व्याप्त इत्यर्थः। नामान्तरमाहुः।

श्रीगोपीजनों के वियोगरस से आप व्याप्त हैं। विरह समय के अवर्णनीय रस से आप व्याप्त हैं।

भावार्थ :

विरह अर्थात् जिसमें एकांत नहीं है, ऐसा विप्रयोग अथवा जिसमें विशेष एकांत है ऐसा संयोग इन उभय दलों से विशिष्ट शृंगाररसात्म प्रभु भक्तों को द्विविध रस का दान करते हैं। व्रजांगनाओं के संयोग-विप्रयोग रस से श्रीगुसांईजी परिपूर्ण हैं एवं सदा ही उसमें लीन है। आप श्रुतिरूपा यूथाधिपति श्री चंद्रावलीजी स्वरूप हैं, इसलिए विरह रस में सदा आविष्ट हैं। आप प्रतिदिन गोकुल से गिरिराज श्रीनाथजी की सेवा के लिये जो श्रम लेकर पधारते हैं उसमें संयोग रस प्रकट होता है, जबकि चंद्र सरोवर के विरह में बैठकजी में छः मास तक बिराज कर आपने विप्रयोग रस का अनुभव किया है और इस स्वरूप में भक्तों को दर्शन भी दिये हैं।

कीर्तन–संगति :

फिर व्रजवसो श्रीविठ्ठलेश
कृपा कर दर्शन दिखावो वह लीला वहवेश ॥१॥
गाय बछरा लाय गोकुलगाम करो प्रवेश।
नंदनंदन आय प्रकटे अति उदार नरेश ॥२॥
भक्तिमारग प्रकट कर कीयो जननकों उपदेश।
रच्यो रासविलास सुखनिधि गिरिगोवर्धनेश ॥३॥
श्रीवल्लभनंदन असुर निकंदन विदित श्रुति सुरेश।
चतुर्भुज प्रभु घोष कुलको ह्यर्यो सकल क्लेश ॥४॥

कृष्णात्मने नमः (१०४) ***कृष्णात्मा*** = आपका अंतःकरण श्रीकृष्ण में ही है = *कृष्णात्मने नमः ।*

विवरण :

कृष्णस्य आत्मा स्वरूपमित्यर्थः । कृष्णे आत्मान्तःकरणं यस्येति वा । तस्य स यस्मिन्निति वा । नामान्तरमाहुः ।

आपका अंतःकरण श्रीकृष्ण में ही है, अतः श्रीकृष्ण का अंतःकरण आपमें है आप श्रीकृष्ण स्वरूप ही हैं ।

भावार्थ :

सनत्कुमारसंहिता में आपके स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया है कि :

करुणारसभावज्ञो लीलाकारण तत्परः ।
सदानंदमयो देवो यशोदानंदनो हरिः ॥

अन्य पुराणों में भी इसी प्रकार श्रीगुसांईजी पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु का प्राकट्य हैं ऐसा स्पष्ट उल्लेख है ।

वार्ता–चरित्र–संगति :

श्रीगुसांईजी ने श्रीनाथजी का एक लाख स्वर्ण मुद्राओं का एक वर्ष का नेग बांधा था, फिर जब आप भोजन करने बिराजे, तब शाक में एक तिनका आया । प्रभु के सुख का विचार करते हुए आपको बहुत क्लेश हुआ । आप बिना भोजन किये ही उठ गये । श्री गिरिधरजी को आपने आज्ञा करी, 'मेरे वस्त्र भगवा रंग से रंगकर सुखा दो ।' श्री गिरिधरजी जब वस्त्र रंगते थे, तब श्रीनवनीतप्रियजी वहाँ पधारे । आपने भी अपने वस्त्रों को भगवे रंग में रंगने की आज्ञा दी । आपने दोनों की आज्ञा का पालन किया, परन्तु आपको बहुत दुःख हुआ कि 'श्रीगुसांईजी और श्री नवनीतप्रियाजी हमारा त्याग

करेंगे ?' श्रीगुसांईजी और श्रीनवनीतप्रियजी की हकीकत को जान लिया, इसलिए संन्यास का विचार त्याग दिया।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठलनाथ आनंद कंद।
प्रकट पुरुषोत्तम श्रीव्रज में देख द्विजवर चंद ॥१॥
तब व्रज यशोदानंद कहियत अब श्रीवल्लभनंद।
तब धर्यो नटवर भेख गिरिधर अबनि श्रुतिपथ छंद ॥२॥
जब बकी आदि अनेक आरति मेट सब दुखद्वंद।
अब कृपाकर हरे प्रभु पाप माणिकचंद ॥३॥

स्वसमर्पकाय नमः

(१०५) स्वसमर्पकः = आप अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित करते हैं = *स्वसमर्पकाय नमः।*

विवरण :

स्वमात्मधनादिकं भगवते समर्पयति निवेदयतीत्यर्थः। स्वभक्तानिति वा। नामान्तरमाहुः।

आप अपने आत्मा और धन इत्यादि को भगवान को समर्पित करते हैं। आपकी आज्ञा से आपके भक्त भी सब कुछ प्रभु को समर्पित करते हैं। आप अपने भक्तों का भी प्रभु के साथ संबंध करवाते हैं।

भावार्थ :

आप पुरुषोत्तम स्वरूप होने पर भी भूतल पर आचार्य स्वरूप में प्रकट हुए हैं इसलिए नाम निवेदन मंत्र देकर भक्तों को ब्रह्म का संबंध करवाते हैं। एकादश स्कंध में भगवान उद्धवजी के प्रति आज्ञा करते हैं कि, 'देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण, स्त्री, घर, पुत्र,

कुटुंब, धन, आलोक, परलोक एवं आत्मा ऐसे लोक-वेद के सभी पदार्थ एवं भावनाएं अहंता-ममतापूर्वक भगवान को निवेदन करने से अहंता-ममता के सभी दोषों की निवृत्ति तथा जीव में दासत्व प्रकट होता है। 'हे कृष्ण ! मैं आपका हूँ, ऐसे भगवदीय भाव के लिये जीव अधिकारी बनता है। ऐसी सर्व समर्पण की भावना श्रीगुसांईजी ने जीवों को समझाई।

वार्ता–चरित्र–संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी श्रीनाथद्वारा बिराज रहे थे, तब धोंधी ने श्रीनवनीतप्रियाजी के सम्मुख एक पद गाया। श्रीनवनीतप्रियाजी ने बहुत ही प्रसन्न होकर ताल दिया, इससे श्री गिरिधरजी ने अपने श्रीहस्त के रत्नजडित कड़े श्रीनवनीतप्रियाजी को न्योछावर किये और धोंधी को पहना दिये। श्री गुसांईजी को जब यह हकीकत मालूम हुई तब आपश्री गिरिधरजी पर बहुत ही प्रसन्न हुए और आज्ञा की, 'श्रीनवनीतप्रियाजी प्रसन्न हुए तो तुमने सर्वस्व न्योछावर क्यों नहीं कर दिया ?'

एक क्षत्राणी बाई श्रीगुसांईजी के पास नाम मंत्र लेने आई। आपने उसे श्रीअष्टाक्षर मंत्र बुलवाया, परन्तु उसे बोलना नहीं जमा, तब आपने आज्ञा की, 'तुझे मेरा नाम आता है ?' क्षत्राणी ने कहा, 'हाँ' आपने आज्ञा की, 'तु हमेशा मेरा नाम लेती रहना।' यह क्षत्राणी श्रीगुसांईजी के सिवाय और कुछ भी नहीं जानती थी। श्रीनाथजी उस पर बहुत प्रसन्न होते और उसे दर्शन देते थे।

कीर्तन–संगति :

श्रीविट्ठल प्रकटे व्रजनाथ।
नंदनंदन कलियुग में आये निजजन किये सनाथ ॥१॥

तब असुरनको नाश कियो हरि अब मायामत नाशे।
तब गोपीजनकों सुख दीनों सब निजभक्तन ऐसे ॥२॥
तबके वेद पथ छोड़ रास रमि नानाभाव बताये।
अब स्त्री शूद्रादिक सबकों ब्रह्मसंबंध कराये ॥३॥
यहविधि प्रकट करी निजलीला वल्लभराज दुलारे।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल इनको वेद पुकारे ॥४॥

निवेदिभक्तसर्वस्वः शरणाध्वप्रदर्शकः।
श्रीकृष्णानुगृहीतैकप्रार्थनीयपदाम्बुजः ॥२७॥

शब्दार्थ :

निवेदिभक्तसर्वस्वः = निवेदित भक्तों का आप सर्वस्व हैं, *शरणाध्वप्रदर्शकः* = शरण मार्ग के आप दर्शक हैं, *श्रीकृष्णानुगृहीतैक-प्रार्थनीयपदाम्बुजः* = श्रीकृष्ण के द्वारा अंगीकार किये हुए जीव ही आपके चरण कमल की प्रार्थना कर सकते हैं।

निवेदिभक्त-सर्वस्वाय नमः

(१०६) निवेदिभक्तसर्वस्वः = निवेदित भक्तों का आप सर्वस्व हैं = *निवेदिभक्तसर्वस्वाय नमः।*

विवरण :

स्वस्मिन्स्वेन वा भगवति कृतनिवेदना भजतास्तेषां सर्वस्वं प्राणप्रिय इत्यर्थः। ते सर्वस्वं यस्येति वा। नामान्तरमाहुः।

जिन भक्तों ने भगवान के चरणकमल में आत्म निवेदन किया है, उन भक्तों के आप सर्वस्व हैं तथा भक्त ही आपके भी सर्वस्व हैं। भक्त भी आपको प्राणप्रिय हैं।

भावार्थ :

निवेदन द्वारा जीवों को अधिकार के अनुसार भगवद् प्राप्ति

अवश्य होती है, परन्तु आप अपने प्रमेय बल से मात्र निवेदन करवाकर, स्वरूपज्ञान करवाकर तुरंत ही भगवद् प्राप्ति करवा देते हैं।

वार्ता-चरित्र-संगति :

एक बार श्रीगुसांईजी सिंहनंद पधारे, वहाँ जर्नादनदास कायस्थ ने नाम निवेदन मंत्र लिया। आपने जनार्दनदास को निवेदन का स्वरूप समझाया। आपने आज्ञा करी, 'प्रभु सर्वतंत्र स्वतंत्र हैं, साधनों से सर्वथा अप्राप्य हैं। जो भक्त मन, वाणी और कर्म से प्रभु की शरण में जाते हैं, उनके ऊपर प्रभु की कृपा होती है। तुमको यह उपाय हृदय में धारण करना चाहिये। **जनार्दनदास को** निवेदन मंत्र का इतना उपदेश करने से उन्होंने **अपना सर्वस्व समर्पण** कर दिया। वे हमेशा निवेदन के अनुसंधान में रहने लगे, उन्हें तुरंत ही भगवद् स्वरूपानंद का अनुभव होने लगा।

कीर्तन-संगति :

प्रभुता प्रकटी श्रीविट्ठलनाथ की।
आन ज्ञान सब ध्यान वाम गति यह विध जगत अकाथकी॥१॥
भक्तिभाव प्रकट्यो यह मारग कलियुग सृष्टि सनाथ की।
शरण गये सोंपत हे श्यामहि करगही भुजा अनाथकी॥२॥
चतुर्भुजदास आस परिपूरन छायो अंबुज हाथ की।
कृपा विशेष विराजे नित्य प्रति जोरी श्रीगिरिधर साथकी॥३॥

शरणाध्व-प्रदर्शकाय नमः

(१०७) शरणाध्वप्रदर्शकः = शरण मार्ग के आप दर्शक हैं = *शरणाध्वप्रदर्शकाय नमः।*

विवरण :

शरणरूपो योऽध्वा मार्गः। 'सर्वधर्मान्परितज्य मामेकं शरणं व्रजेति भक्तवदुक्तस्तस्य प्रदर्शकः । स्वभक्तेभ्यः प्रकर्षेण दर्शयतीत्यर्थः। नामान्तरमाहुः ।

आप शरण मार्ग के दर्शक हैं। 'सब धर्मों का त्याग करके तू मेरी शरण में आ जा।' भगवान ने शरण मार्ग का दिया हुआ यह उपदेश आप भक्तों को स्पष्ट रीति से बतलाते हैं।

भावार्थ :

शरण मार्ग दो प्रकार का है-मर्यादा और पुष्टि मर्यादा। मर्यादा शरण मार्ग सकाम है। वह फल प्राप्ति की इच्छा से सेवन करने में आता है, इसलिए उपनिषद कहते हैं कि मुक्ति के लिये शरण लेना कभी-कभी ज्ञान के लिये शिष्य गुरु की शरण लेता है। कभी-कभी शर्त के अनुसार शरण भी स्वीकार की जाती है, कभी कभी माया से पार हो जाने के लिये जीव प्रभु की शरण लेता है, कभी-कभी पाप या शोक को दूर करने के लिये भी जीव शरण प्राप्त करता है। मर्यादा शरण मार्ग में रक्षण रूपी साधन के लिये जीव प्रभु की शरण स्वीकार करता है। पुष्टि शरण मार्ग में शरणभावना प्रभु के अनन्य आश्रय रूप है, इसलिए वह फलात्मक है अतएव पुष्टि का शरण मार्ग पृथक शरण मार्ग है। श्री महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि, 'इस लोक या परलोक में किसी भी स्थिति में केवल प्रभु ही अपनी शरण है। पुष्टि भक्ति मार्ग में यह साधन भी है और यह शरण ही फलरूप भी है इसलिए श्री अष्टाक्षर मंत्र यह ही अपना साधन भी है और साध्य भी है।' अनेक भक्तों ने आपकी ऐसी शरण स्वीकार की है।

कीर्तन–संगति :

तुमारे चरण कमलके शरण।
राखो सदा सर्वदा जनकों विट्ठलेशगिरिधरण ॥१॥
तुम बिन ओर नहीं अवलंबन भवसागर दुस्तरण।
भगवानदास जाय बलिहारी त्रिविध ताप उरहरण ॥२॥

श्रीकृष्णानुगृहीतैक–प्रार्थनीयपदाम्बुजाय नमः

(१०८) श्रीकृष्णानुगृहितैक-प्रार्थनीयपदाम्बुजः = श्रीकृष्ण के द्वारा अंगीकार किये हुए जीव ही आपके चरणकमल की प्रार्थना कर सकते हैं = *श्रीकृष्णानुगृहितैकप्रार्थनी-यपदाम्बुजाय नमः।*

विवरण :

श्रीकृष्णानुगृहीता अंगीकृता ये जीवास्त एवैके तैः प्रार्थनीयं प्रार्थितुं योग्यं पदाम्बुजं चरणकमलं यस्य स तथा। भगवदनुग्रहं विना नैतत्प्राप्तिरितिभावः। श्रीकृष्णश्चासावनुगृहीतश्चैकः प्रार्थनीयपदाम्बुजश्चेति वा। स्वयं श्रीकृष्ण ऐवेति फलितम्।

श्रीकृष्णचंद्र के द्वारा अंगीकार किये हुए जीवों के द्वारा ही आपके चरण कमल की प्रार्थना हो सकती है। भगवान् के अनुग्रह के बिना श्री प्रभु चरण के चरणारविंद की प्राप्ति संभव नहीं है। आप साक्षात् श्रीकृष्ण हैं इसलिए आपकी कृपा को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करने के योग्य आपके चरणारविंद ही हैं।

भावार्थ :

आपकी कृपा हुई यह कैसे जाना जाए ? जब जीव श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी की शरण में आवे और उनके चरणारविंद को प्राप्त करे। प्रभु की कृपा के बिना अलौकिक गुरु

की प्राप्ति अशक्य है। आप ही साक्षात् भगवद् स्वरूप हैं, इसलिए आपके चरणारविंद भगवद् चरणारविंद हैं। इन चरणारविंदों की सेवा करने से उभय स्वरूपों की प्राप्ति शक्य होती है।

वार्ता–चरित्र–संगति :

दिल्ली से रसखानजी श्रीनाथजी के दर्शन करने गिरिराज आए। तीन दिनों तक विरह में गोविंद कुंड पर पड़े रहे। श्रीनाथजी ने उनको दूर से दर्शन दिये। वे श्रीनाथजी को पकड़ने के लिये दौड़े, तब प्रभु अंतर्ध्यान हो गये। आपने श्रीगुसांईजी को गोकुल में आज्ञा करी, 'आप गिरिराज आकर रसखान को सेवक बनाओ।' श्रीनाथजी ने श्रीगुसांईजी के संबंध के बिना रसखान को दर्शन दिये, परन्तु स्पर्श नहीं करवाया, क्योंकि श्रीनाथजी सर्वसमर्थ और स्वतंत्र होने पर भी वे श्रीगुसांईजी के वश में हैं। श्रीगुसांईजी की कृपा के बिना भगवद् प्राप्ति सर्वथा असंभव है।

आप महोदार, सर्वगुण सम्पन्न, अदेयदानदाता हैं तो जीव आपकी क्या प्रार्थना कर सकता है ? वह इतनी ही विनती कर सकता है कि, 'आपके चरणकमल में मुझे नित्यवास देना।' श्रीरघुनाथजी भी इस स्तोत्र के अंत में इस नाम के द्वारा यही विनती करते हैं।

कीर्तन–संगति :

परम मनोहर श्रीगोकुलगाम।
प्रगटे श्रीविट्ठल पुरुषोत्तम पतित पावन बिरदहे नाम ॥१॥
नंदनंदन श्रीवल्लभनंदन श्रुति भागवत भूषण अभिराम।
चौदह लोकते अधिक अधिक छबि नित्य विहार व्रज वैकुंठ धाम ॥२॥
आनंद कोटि विमल यश गावत दाता सदा सकल सुखकाम।
सगुणदास श्रीविट्ठलके मन कर्म वचन चरण विश्राम ॥३॥

एवं नामाष्टोत्तरशतं निरूप्याग्रे फलस्तुतिमाहुः सार्द्धेन श्लोकेन।

इस प्रकार हमें श्रीगुसांईजी के १०८ नाम ज्ञात हुए। अब श्री रघुनाथजी डेढ़ श्लोक के द्वारा इस श्लोक का फल बतलाते हैं।

इमानि नामरत्नानि श्रीविट्ठलपदाम्बुजम्।
ध्यात्वा तदेकशरणो यः पठेत्स हरिं लभेत्॥२८॥
यद्यन्मनस्यभिध्यायेत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम्॥२८½॥

अर्थ :

श्रीविट्ठल प्रभु के चरण कमल का ध्यान करके उनके ही शरण में तत्पर होकर जो इन नाम रत्नों का जप करता है, जो परम भाग्यवान जीव इन १०८ नाम रत्नों को बोल ले अथवा जप लेता है उसे अवश्य ही श्रीठाकुरजी और श्रीगुसांईजी की प्राप्ति होती है। उसे प्रभु प्राप्ति होने के अलावा उसके जो-जो मनोरथ हैं वे भी सब सफल होते हैं।

विवरण :

यः परमभाग्ययुक्तो जीव इमानि पूर्वोक्तानि नामरत्नानि नामान्येव रत्नानि सुदुर्लभानि पठेदुच्चरेत्स हरिं श्रीकृष्णं श्रीविट्ठलेश्वरमेव वा लभेत् प्राप्नुयादित्यर्थः। लभनं लभ इति व्युत्पत्त्या लभं करोत्याचरतीति वा कृत्वा लभेदिति परस्मैपदं ज्ञेयम्। किंकृत्वेत्याकांक्षायामाहुः।

श्रीविट्ठलस्य पदाम्बुजं चरणकमलं ध्यात्वेति। ध्याने विशेषणमाहुः तदेकशरणं इति। स : श्री विट्ठलेश एवैकः शरणं यस्य, तादृशः संन्निधि कर्तृविशेषणम्। तदेकशरणो भूत्वा तत्पदाम्बुजं ध्यात्वा तन्नामानि यः पठेत्तं प्राप्नुयादिति भावः। एवं मुख्यफलमुक्त्वाऽऽनुषांगिकफलमाहुः यद्यदिति। यद्यदेव मनस्यभिध्यायेदिच्छेत्तदेवाप्नोति लभत इत्यर्थः सद्यः प्राप्ति-

ज्ञापनार्थं वर्तमान-प्रयोगः । पूर्वोक्तं सर्वमेवासंशयं सन्देह-रहितमित्यर्थः । असंशयं यथा स्यात्तथाऽऽप्नोतीति क्रिया विशेषणं वा ।

यह नाम रत्न सुदुर्लभ है, उनका पाठ जो परम भाग्यवान जीव करता है, वह हरि ऐसे श्रीकृष्ण और श्री विट्ठलनाथजी को प्राप्त करता है। यह पाठ किस प्रकार करना चाहिये इसके जवाब में कहते हैं कि, 'श्रीगुसांईजी के चरणकमल का ध्यान करके पाठ करना चाहिये, ध्यान किस प्रकार करना चाहिये, इसके लिये यह विशेषण कहा कि, 'श्रीगुसांईजी की अनन्य शरण ग्रहण करके ध्यान करना चाहिये, 'श्रीगुसांईजी ही एकमात्र मेरी शरण हैं, ऐसा चिंतन करते हुए आपके चरण कमल का ध्यान करके आपके नामों का जो कोई पाठ करता है उसे आपकी प्राप्ति होती है। इस पाठ का यह मुख्य फल है। अब इस पाठ का अनुषंगिक फल बतलाते हैं।

जीव मन में जो जो अभिलाषाएं करता है, वे सभी उसे तुरंत ही प्राप्त हो जाती है। उसकी इच्छाएं तुरंत ही पूरी हो जाती है। यही बतलाने के लिये यहाँ वर्तमान काल का प्रयोग किया गया है। इन दोनों फलों में पूर्व में कहे हुए कोई भी संशय अथवा संदेह नहीं रखना चाहिये। सारे संशय भी यहीं दूर हो जाते हैं।

एवं फलस्तुतिमुक्तवा स्वयं प्रार्थयन्ति नामरत्नाभिधमिति ।

इस प्रकार फल का निरूपण करके श्रीरघुनाथजी स्वयं श्रीगुसांईजी को प्रार्थना करते हैं।

नामरत्नाभिधमिदं स्तोत्रं यः प्रपठेत्सुधीः ।
त्वदीयं तं गृहणाशु प्रार्थ्यमितन्मम प्रभो ॥२९॥

अर्थ :

हे प्रभु ! मेरी यह प्रार्थना है कि, जो बुद्धिमान भक्त इस नामरत्नाख्य स्तोत्र का श्रद्धापूर्वक पाठ करे उसे आप शीघ्र ही

आपका करके स्वीकार कर लीजिये, क्योंकि आप प्रभु हैं, सर्वसमर्थ हैं।

विवरण :

हे प्रभो ! ममैतत्प्रार्थ्यमितिपदसम्बन्धः। तत्किमित्याकांक्षायामाहनामरत्नमित्यभिधानं यस्य तादृशमिदं मदुक्तं स्तोत्रं तव स्तुतिरूपं यो जनः।

सुधीर्बुद्धिमान्यपठेत् प्रकर्षेण पूर्वोक्तप्रकारेण श्रद्धादियुक्तः पठेत्, तस्याशु शीघ्रमेव तं त्वदीयं गृहाणे स्वीकुर्वित्यर्थः। प्रभो इति सम्बोधनं सामर्थ्यज्ञापनार्थम्।

हे प्रभु ! मेरी यही प्रार्थना है कि यह नामरत्न स्तोत्र जिसे मैंने आपकी स्तुति रूप में कहा है, उसका पाठ जो बुद्धिमान पुरुष श्रद्धापूर्वक करे, उसे आप तत्काल अपना समझ कर स्वीकार कर लेना, यहाँ श्रीगुसांईजी के लिये 'प्रभो' संबोधन कहा है, जो यह सूचित करता है कि आप सर्व समर्थ होने से आपके अपने प्रमेयबल से ऐसे जीवों का उद्धार कर सकेंगे।

एवं प्रार्थ्यमानेन प्रभुणा तथैव कृतामिति वक्तुं स्वकृतेः सफलत्माहुः।

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए प्रभु ने उनकी प्रार्थना सुनी। इसलिए इस नामरत्न स्तोत्र के पाठ से अवश्यमेव श्रीगुसांईजी की प्राप्ति होगी और इसीलिए अब अंतिम श्लोक में श्रीरघुनाथजी स्वकृति का विजय प्रदर्शित करते हैं।

श्रीविठ्ठलपदाम्भोजमकरन्दजुषोऽनिशम्।
इयं श्रीरघुनाथस्य कृतिर्विजयतेतमाम्॥३०॥

अर्थ :

श्री विठ्ठलेश प्रभु चरण के चरणकमल के पराग को सेवन करने वाले श्रीरघुनाथजी की आकृति सदा सर्वदा विजय प्राप्त करती है।

विवरण :

श्रीविट्ठलेति । श्रीविट्ठलस्य पदाम्भोजस्य चरणकमलस्य-मरकन्दः परागस्तज्जुष स्तत्सेवकस्य तत्र प्रीतिमतो वा श्री रघुनाथस्य इयं पूर्वोक्ता कृतिरनिशं सदा विजयतेतमामिति सर्वोत्कर्षेण वर्तते, सफलत्वादित्यर्थः ।

विवृतं यत्प्रसादेन नामरत्नमिदं मया ।
स साधु मन्यतां स्वीयपुत्रवात्सल्यता मयि ॥१॥
यस्मिन्नाविर्भवति जगति श्रीमदाचार्यसूनौ
सर्वगोपीवरपदयुगे भक्तिभाजो भवन्ति ।
भूयादेकस्वपदशरणस्यानिशं विट्ठलेशः
सोयं भक्ताभयकरभुजो दैवतं मत्कुलस्य ॥२॥

श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण के चरण कमल के पराग को सेवन करने वाले अर्थात् आपके चरण कमल में प्रीति रखने वाले श्री रघुनाथजी की आकृति हमेशा विजय प्राप्त करती है अर्थात् सबसे उत्तम है, फल देने वाली है, अर्थात् सफल है ।

जिनकी कृपा से इस नामरत्नस्तोत्र का विवरण किया, वे प्रभु मुझ में पुत्र-वात्सल्य प्रकट करो, श्रीप्रभुचरण के जगत में होने वाले प्रादुर्भाव से भक्त श्रीगोपीजनों में भक्ति भाव वाले होते हैं। ऐसे श्रीविट्ठलेश प्रभु ही मेरे हमेशा अनन्यता पूर्वक शरण हो जाएं भक्तों को अभयदान देने वाले श्रीहस्त वाले श्रीविट्ठलेश प्रभु हमारे कुल के दैवता हैं ।

इति श्रीमद्रघुनाथचरणविरचितं नामरत्न सम्पूर्णम् ।

इति श्रीमत्पितृचरणसरोजशरणैकतानतत्सेवकीकृतदेवकी-नन्दनकृतं नामरत्नविवरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमद् रघुनाथचरण विरचित 'नामरत्न' सम्पूर्ण हुआ तथा पितृचरण के चरणकमल में अनन्य सेवक ऐसे देवकीनंदनजी कृत *'नामरत्नविवरण'* समाप्त हुआ ।

नामरत्नाख्यस्तोत्रस्य नामावली

१. श्री विट्ठलाय नमः
२. कृपासिन्धवे नमः
३. भक्तवश्याय नमः
४. अतिसुन्दराय नमः
५. कृष्णलीलारसाविष्टाय नमः
६. श्रीमते नमः
७. वल्लभनन्दाय नमः
८. दुर्दृश्याय नमः
९. भक्तसंदृश्याय नमः
१०. भक्तिगम्याय नमः
११. भयापहाय नमः
१२. अनन्य भक्तहृदयाय नमः
१३. दीनानाथैकसंश्रयाय नमः
१४. राजीवलोचनाय नमः
१५. रासलीलारसमहोदधये नमः
१६. धर्मसेवते नमः
१७. भक्तिसेतवे नमः
१८. सुखसेव्याय नमः
१९. ब्रजेश्वराय नमः
२०. भक्तशोकापहाय नमः
२१. शांताय नमः
२२. सर्वज्ञाय नमः
२३. सर्वकामदाय नमः
२४. रुक्मिणिरमणाय नमः
२५. श्रीशाय नमः
२६. भक्तरत्न परीक्षकाय नमः
२७. भक्तरक्षैकदक्षाय नमः
२८. श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकाय नमः
२९. महासुरतिरस्कर्त्रे नमः
३०. सर्वशास्त्रविदग्रण्ये नमः
३१. कर्मजाड्यभिदुष्णांशवे नमः
३२. भक्त नेत्रसुधाकराय नमः
३३. महालक्ष्मीगर्भरत्नाय नमः
३४. कृष्णवर्त्मसमुद्भवाय नमः
३५. भक्तचिंतामण्ये नमः
३६. भक्तिकल्पद्रुमनवांकुराय नमः
३७. श्रीगोकुलकृतावासाय नमः
३८. कालिंदीपुलिनप्रियाय नमः
३९. गोवर्धनागमरताय नमः
४०. प्रियवृन्दावनांचलाय नमः
४१. गोवर्धनाद्रिमखकृते नमः
४२. महेन्द्रमदभित्प्रियाय नमः
४३. कृष्णलीलैकसर्वस्याय नमः
४४. श्रीभागवतभावविदे नमः
४५. पितृप्रवर्तित पथप्रचारसुविचार-काय नमः
४६. व्रजेश्वर प्रीतिकर्त्रे नमः
४७. तन्निमन्त्रणभोजकाय नमः
४८. बाललीलादिसुप्रीताय नमः
४९. गोपीसंबंधिसत्कथाय नमः
५०. अतिगंभीरतात्पर्याय नमः
५१. कथनीयगुणाकराय नमः
५२. पितृवंशोदधिविधवे नमः
५३. स्वानुरूपसुतप्रसवे नमः
५४. दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तये नमः
५५. महोज्ज्वलचरित्रवते नमः
५६. अनेकक्षितिपश्रेणीमूर्धसक्त पदांबुजाय नमः

५७. विप्र दारिद्र्यदावाग्नये नमः
५८. भूदेवाग्निपूजकाय नमः
५९. गोब्राह्मणप्राणरक्षापराय नमः
६०. सत्यपरायणाय नमः
६१. प्रियश्रुतिपथाय नमः
६२. शश्वन्महामखकराय नमः
६३. प्रभवे नमः
६४. कृष्णानुग्रहसंलभ्याय नमः
६५. महापतितपावनाय नमः
६६. अनेकमार्गसंक्लिष्टजीव - स्वास्थ्यप्रदाय महते नमः
६७. नानाभ्रमनिरासकृते नमः
६८. भक्ताज्ञानभिदुत्तमाय नमः
६९. महापुरुषसत्ख्यातये नमः
७०. महापुरुष विग्रहाय नमः
७१. दर्शनीयतमाय नमः
७२. वाग्मिने नमः
७३. मायावादनिरासकृते नमः
७४. सदाप्रसन्नवदनाय नमः
७५. मुग्धस्मितमुखांबुजाय नमः
७६. प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षाय नमः
७७. क्षितिमंडलमंडनाय नमः
७८. त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिधवली-कृतमेचकाय नमः
७९. वाकसुधाकृष्टभक्तांतःकरणाय नमः
८०. शत्रुतापनाय नमः
८१. भक्तसंप्रार्थितकराय नमः
८२. दासदासीप्सितप्रदाय नमः
८३. अचिन्त्यमहिमामेयाय नमः
८४. विस्मयास्पदविग्रहाय नमः
८५. भक्तक्लेशासहाय नमः
८६. सर्वसहाय नमः
८७. भक्तकृतेवशाय नमः
८८. आचार्यरत्नाय नमः
८९. सर्वानुग्रहकृन्मंत्रवित्तमाय नमः
९०. सर्वस्वदानकुशलाय नमः
९१. गीतसंगीतसागराय नमः
९२. गोवर्धनाचलसखाय नमः
९३. गोपगोपिकाप्रियाय नमः
९४. चिंततज्ञाय नमः
९५. महाबुद्धये नमः
९६. जगद्वंद्यपदांबुजाय नमः
९७. जगदाश्चर्यरसकृते नमः
९८. सदाकृष्णकथाप्रियाय नमः
९९. सुखोदर्ककृतये नमः
१००. सर्वसंदेहच्छेददक्षिणाय नमः
१०१. स्वपक्षरक्षणे दक्षाय नमः
१०२. प्रतिपक्षक्षयंकराय नमः
१०३. गोपिकाविरहाविष्टाय नमः
१०४. कृष्णात्मने नमः
१०५. स्वसमर्पकाय नमः
१०६. विनिवेदिभक्तसर्वस्वाय नमः
१०७. शरणाध्वप्रदर्शकाय नमः
१०८. श्रीकृष्णानुगृहीतैकप्रार्थनीय-पदाम्बुजाय नमः ॥